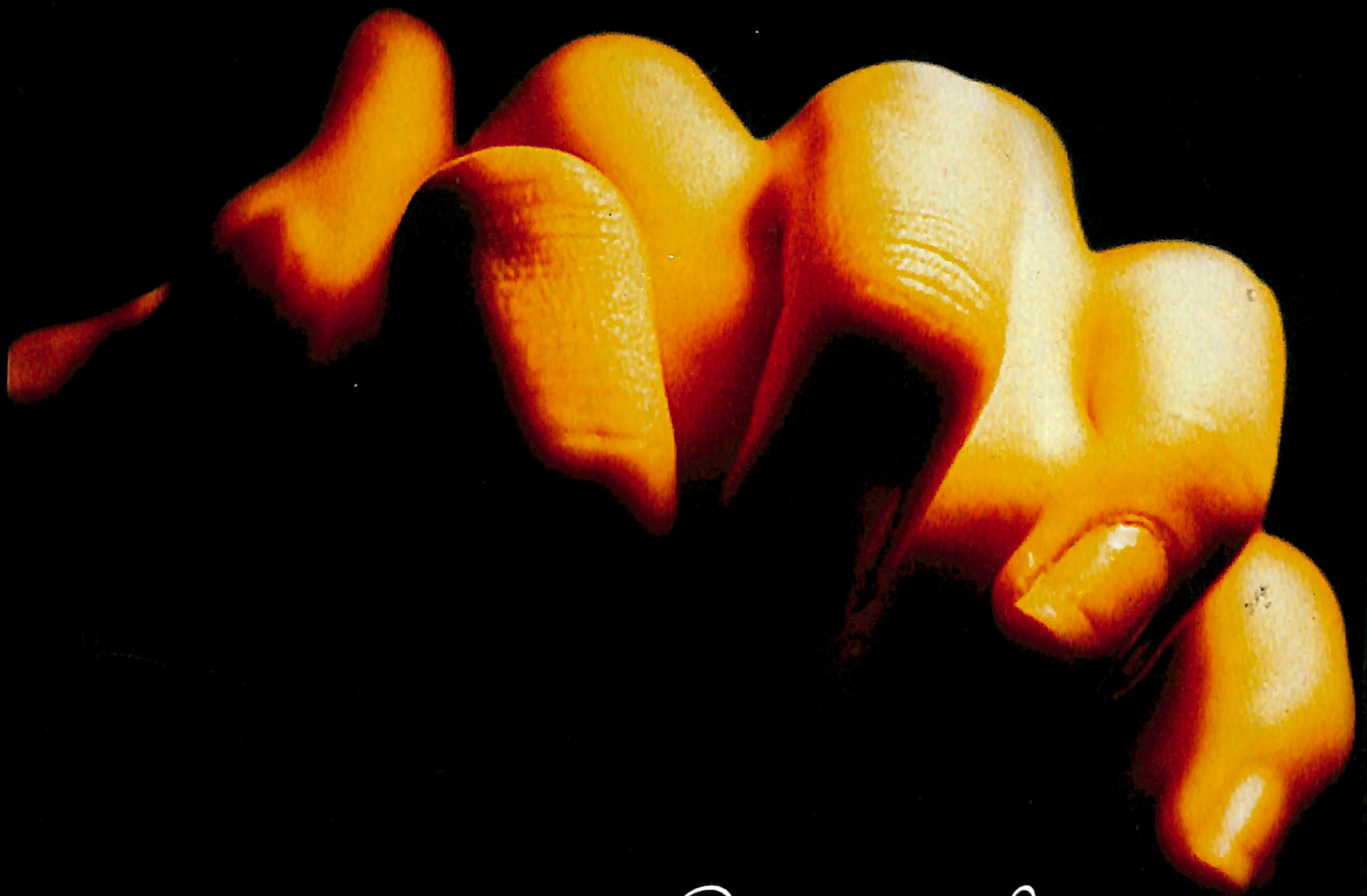
# प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रायश्चित विधान



शिखा शर्मा

# प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रायश्चित्त विधान

डॉ० शिखा शर्मा




2007

न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन

दिल्ली भारत

Published under the Publication Grant of U.G. C. providing by Gurkul Kangri Vishwavidhalay, Haridwar.



प्रकाशकः

**न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन**

५८२४ न्यू चन्द्रावल

नजदीक शिव मंदिर

जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७

फोन : 23851294, 65195809

E-mail newbbc@indiatimes.com



प्रथम संस्करण : २००७

**ISBN. No. 81-8315-053-5**

मुद्रकः

अमर जैन प्रिंटिंग प्रेस

दिल्ली–११०००७

# पुरोवाक

सृष्टि का नियम है कि संसार के समस्त प्राणी अधिक से अधिक सुख पाना चाहते हैं, उनमें प्रायः मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसमें उत्पन्न होकर प्राणी पुण्य कर्मों के द्वारा सुख साधन उपार्जन तथा मोक्ष लाभ भी कर सकता है। शेष समस्त योनियों में प्राणियों के कर्मों का क्षय मात्र होता है। सुख-दुःख का साधन भूत क्रमशः पुण्यापुण्य कर्मों का उपार्जन प्रायः नहीं होता। इनका उपार्जन तो एक मात्र मनुष्य योनि में होता है। इसी कारण महर्षियों ने इस योनि को सर्वश्रेष्ठ माना है। प्राणी के सुख दुःख का पूर्वकृत पुण्य-पाप अर्थात् धर्माधर्म ही, यही कारण है कि एक समान व्यापारादि करने वाले प्राणियों में से कोई सफल कोई असफल होता हुआ देखा जाता है। सौभाग्य से संस्कृत विषय से एम.ए. करने के पश्चात् स्मृति एवं धर्मसूत्र आदि ग्रन्थ पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है। इनमें पाप पुण्य सम्बन्धी विस्तृत विवेचन किया गया है तथा पाप कर्मों को दूर करने के उपाय बताये गये हैं।

वेदांगो, धर्मसूत्र एवं स्मृति ग्रन्थों में वर्णित धर्माधर्म, पाप-पुण्य आदि विषय के प्रति आज समाज में अनेक विकृत विचार धारा जन्म ले चुकी हैं अतः उसके वास्तविक स्वरूप को जानने की इच्छा से मैंने 'प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रायश्चित्त विधान' इस विषय को अपनी पी.एच.डी. उपाधि हेतु चयन किया है।

मनुष्य अपनी दैनिक जीवनचर्या तथा सामाजिक कार्यों में अपनी अज्ञानता एवं कुसंस्कारवश अनेक पाप कर्म करता है। उन पाप कर्मों से मुक्ति के लिए धर्मसूत्रों एवं स्मृतिशास्त्र में प्रायश्चित्त विधान किया गया है। प्रायश्चित्त का अनुष्ठान कर मनुष्य अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर अपने कुसंस्कारों से मुक्त होकर सर्वविध सुख शांति प्राप्त कर सकता है। इसलिए ऋषियों ने धर्मशास्त्रों में त्याज्य पाप कर्मों एवं प्रायश्चित्त विधान का विशेष रूप से महत्व दिया है।

आज जब समाज में पाप पुण्य, त्याज्य, अत्याज्य, कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म के विषय में लोगों की कोई आस्था ही नहीं तथा ऐसे विषय के शुभाशुभ परिणाम को लोग सर्वथा हेय समझ बैठे हैं, ऐसी परिस्थिति में धर्मशास्त्रों में वर्णित पाप, पुण्य-प्रायश्चित्त आदि विषय के रहस्य एवं महत्व की विवेचना कर ऋषियों के सार्वभौम एवं शाश्वत ज्ञान राशि को उजागर करना अत्यन्त आवश्यक है। जिसमें लोग अधर्माचरणों के दुष्परिणामों को समझकर सन्मार्गगामी हो सकें।

प्रमुख धर्मसूत्रों आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ और प्रमुख स्मृति ग्रंन्थ मनु, याज्ञवल्क्य एवं पाराशर में मानव जीवन के सभी पक्षों का विवेचन हुआ है। इन ग्रन्थों में पाप कर्मों एवं प्रायश्चित्त विधान का विशद वर्णन उपलब्ध होता है।

ब्राह्मण परिवार में जन्म तथा माता-पिता के द्वारा प्रदत्त सुसंस्कारों के कारण श्रुति, स्मृति के अध्ययन के प्रति मेरी एक सहज रूचि है। मेरी जानकारी में आज तक इस विषय में कोई भी समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक कार्य नहीं हुआ है। इस विषय में कुछ संग्रहात्मक कार्य हुए हैं जो इस प्रकार है, "प्रायश्चित्त कादम्ब", "प्रायश्चित्तादर्श", "प्रायश्चित्तेन्दु शेखर" आदि। ये ग्रन्थ प्रायश्चित्त विधानात्मक ही है। अतः धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रायश्चित्त विधान का एक सर्वांगीण समीक्षात्मक अध्ययन की महती आवश्यकता प्रतीत हुई है। जिससें की इन ग्रन्थों में विहित प्रायश्चित्त विधानों की वास्तविकता एवं महत्ता सर्वविदित हो सके।

प्रस्तुत शोध में जहाँ एक ओर मेरा प्रयास समाज में होने वाले शाश्वतिक पापों का वर्णन, उनके विकास क्रम एवं परिवर्तन तथा प्रायश्चित्त विधान का तुलनात्मक वर्णन करने को है।, वहीं दूसरी ओर समाज में होने वाले पापों की जानकारी तथा उनके प्रायश्चित्त विधान से मानव समाज को अवगत कराने का प्रयास हैं इस विषय में प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के आधार पर प्रायश्चित्त से सम्बन्धित विधान एवं पातकों का विवेचन उनका तुलनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य में विशेष रूप से धर्मसूत्र ग्रन्तों में आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एव वसिष्ठ तथा स्मृति ग्रन्थों में मनु, याज्ञवल्क्य एवं पाराशर को अध्ययन क्षेत्र बनाया है।

यह शोध प्रबन्ध पाँच अध्याय में विभक्त है। इसके प्रथम अध्याय में

वैदिक साहित्य में, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, धर्मसूत्र एवं स्मृतियों में प्रायश्चित्त में स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन एवं प्रायश्चित्त साधन का वर्णन हैं प्रायश्चित्त के प्रयोजन का वर्णन भी प्रथम अध्याय में वर्णित है। द्वितीय अध्याय में पापों का वर्गीकरण, पञ्च महापातक के प्रथम दो महापातक ब्रह्महत्या एवं समस्त संसार में प्राणी की हत्या सम्बन्धी प्रायश्चित्त विधान का वर्णन एवं समस्त सुरापान सम्बन्धित पापों के प्रायश्चित्तों का वर्णन है।

तृतीय अध्याय में स्तेय कर्म नामक महापातक में ब्राह्मण सुवर्ण स्तेय नामक पाप एवं समस्त स्तेय कर्म से सम्बन्धित पापों के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन है तथा शास्त्र निषिद्ध संभोग कर्म में एवं महापातक 'गुरु अंगनागमन' नामक पाप के प्रायश्चित्त का वर्णन विस्तार पूर्वक है। महापाकियों से संसर्ग जन्य पाप के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन भी अध्याय में किया है।

चतुर्थ अध्याय में उपपातकों के प्रायश्चित्त के परिणामों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। पंचम अध्याय में प्रकीर्ण पापों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से प्रायश्चित्त के परिणामों से मानव को उनके पापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण साधन को बताना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे इस शोध कार्य से प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित प्रायश्चित्त विधान विषयक रहस्य एवं महत्व उजागर हो सकेगा तथा समस्त मनुष्य मात्र अधर्म तथा पाप के दष्परिणामों को समझकर धर्म को आत्मसात् कर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्राप्त कर अपना जीवन सफल कर सकेगा एवं विश्व में **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना का विस्तार हो सकेगा।

इस शोध कार्य की पूर्णता में महत्पूर्ण रूप से सहायक मेरे निर्देशक डा. सोमदेव शतांशु का मैं हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करती हुई **"किं किं नात्र परोपकारजनितं दोषास्तु ये ते मम"**।

अपने निर्देशक के परिवार के सदस्यों को भी मैं अपना हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करती हूँ।

अन्त में इस शोध कार्य के पूर्णता में सहायक संस्कृत विभागाध्यक्ष आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री तथा संस्कृत विभाग के डा. महावीर अग्रवाल, डा. रामप्रकाश, डा. ब्रह्मदेव एवं वेद विभाग के डा. रूपकिशोद शास्त्री का भी मैं बीच-बीच में सहयोग प्राप्त करती रही हूँ। इनके एक अप्रकाशित "वैदिक

वाङ्मय प्रायश्चित्त धर्म विवेचन एवं द्वन्द प्रक्रिया" एक विश्लेषण से भी मुझे काफी सहायता मिली है। अतः मैं इनका धन्यवाद करती हूँ।" इन सभी गुरुजनों का भी मैं धन्यवाद करती हूँ।

महिला पी.जी. कॉलेज की प्राचार्या सुश्री वीणा शास्त्री, सहायक डा. मनजीत कौर एवं कन्या गुरुकुल की प्राचार्या श्रीमति सुनृता चौहान एवं सहायक डा. वीना विश्नोई व विनेश अग्रवाल ने भी मेरे शोध कार्य में मेरा बीच-बीच उत्साह वर्धन किया है तथा सहयोग प्रदान किया है। इन सभी गुरुजनों की मैं आभारी हूँ। नेहरू इण्टर कॉलेज के प्रधानाचार्य भी बाबूराम राठौर जिन्होंने मेरे शोध कार्य में मुझे योगदान दिया हैं। उनकी मैं आभारी हूँ और उनको धन्यवाद करती हूँ। इस शोध कार्य में मेरे दादा स्व. पं. मुरलीधर शर्मा का मैं हार्दिक धन्यवाद करती हूँ। मेरे माता-पिता श्री शिवनारायण शर्मा एवं श्रीमती कृष्ण लता शर्मा, मौसी श्रीमति कृष्णा शर्मा, भाभी रजनीश शर्मा, बडी बहन श्रीमती ऋतु शर्मा एवं मेरे बड़े भाई स्वरूप भी शिवकुमार शर्मा, अनुज दर्पण शर्मा, गंगा कोठारी, नीरज त्यागी, भास्कर पाराशर, कपिला बजाज, इन सब का मैं हार्दिक धन्यवाद प्रकट करती हूँ।

शोध कार्य को टंकण के द्वारा अंतिम रूप देने वाले श्री अनिल कुमार गुप्ता, श्री गगन कुमार मनोचा एवं श्री के.एस. अरोड़ा इन सभी का मेरे शोध कार्य में योगदान रहा। इन सबकों मैं अपना हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

इन शब्दों से एक बार पुनः उन सभी को स्मरण करती हूँ जिनके मार्गदर्शन एवं सहयोग से यह शोध कार्य पूरा हो सका। उन महनीय गुरुजनों के प्रति मैं विनम्र भाव से कृतज्ञता करती हूँ।

**"किं किं नात्र परोपकारजनितं दोषास्तु ये ते मम"।**

# प्राकथन

वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत धर्मसूत्रों एवं स्मृतिग्रन्थों का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। आचार मीमांसा का सुस्पष्ट विवेचन इन ग्रन्थों में हुआ है। प्राचीन काल में अपराधों अथवा दोषों को दूर करने के लिए एक ओर न्याय एवं दण्डव्यवस्था प्रचलित थी तो दूसरी ओर प्रायश्चित्त का भी विधान था। न्यायिक प्रक्रिया से दण्ड प्राप्त करने की अपेक्षा स्वयं प्रायश्चित्त करके मन और बुद्धि को पवित्र करना अधिक श्रेयस्कर है।

विदुषी लेखिका डॉ. शिखा शर्मा ने अपने ग्रन्थ में चार सूत्र ग्रन्थों– आपस्तम्ब, बोधायन, गौतम एवं वशिष्ठ तथा मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं पाराशर स्मृति के आधार पर उस समय प्रचलित प्रायश्चित्त विधान का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है।

ग्रन्थ की भाषा प्रवाहपूर्ण, सरस, सरल एवं विषयानुकूल है। डॉ. शिखा ने श्रद्धा, निष्ठा एवं योग्यतापूर्वक इस कार्य को सम्पन्न किया है। धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं न्यायप्रणाली के आलोक में इस ग्रन्थ की महत्ता स्वतः सिद्ध है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर सूत्र ग्रन्थों एवं स्मृति ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले जिज्ञासु निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे।

मैं डॉ. शिखा को हृदय से बधाई, शुभकामनाएं और साधुवाद प्रदान करते हुए मंगलमय जीवन की कामना करता हूँ।

मंगलाभिलाषी

(प्रो. महावीर अग्रवाल)
अध्यक्ष– संस्कृत विभाग

# विषयानुक्रमणिका



ओ३म्

प्रथम अध्याय

# प्रायश्चित्त का स्वरूप

- ❑ प्रायश्चित्त का अर्थ
- ❑ प्रायश्चित्त के प्रमुख साधन
- ❑ प्रायश्चित्त का प्रयोजन
- ❑ प्रायश्चित्त न करने का परिणाम

## प्रथम अध्याय

# प्रायश्चित्त का स्वरूप

भारतीय संस्कृति में प्रायश्चित्त का बहुत महत्व है। जाने अनजाने किये अपराधों या दुष्कर्मों के दोष परिमार्जन सामान्यतः प्रायश्चित्त कहलाता है। समस्त अपराधों से सम्बन्धित प्रायश्चित्तों के विषय में स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि इन प्रायश्चित्तों का विधान राज्य या न्याय परिषद् से संचालित था या अपने समाज की व्यवस्था द्वारा अथवा व्यक्तिगत कर्त्तव्य था, और राज्य परिषद या न्याय परिषद् का क्या अस्तित्व था। वस्तुतः समस्त धर्मशास्त्रों, स्मृतिग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि प्रायश्चित्त का स्वरूप तीन प्रकार का ही था– व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राज्य या न्याय परिषद् सम्बन्धी। कुछ ऐसे अपराध, जिनकी जानकारी न तो समाज को होती थी और न ही राज्य व्यवस्था को। इस अपराध से सम्बन्धित व्यक्ति ही शास्त्र मर्यादानुसार उसका प्रायश्चित्त ईमानदारी से करके उस अपराध या पातक से उपरति प्राप्त करने में अपना कर्तव्य समझता था। दूसरी सामाजिक व्यवस्था की। इस व्यवस्था के अन्तर्गत पातकी समाज द्वारा निर्दिष्ट प्रायश्चित्त का आचरण करता था और तीसरी व्यवस्था रही थी राज्य की या न्याय की। इस व्यवस्थानुसार पातकी को राजदण्ड अथवा राजदण्ड एवं समाजदण्ड का प्रायश्चित्त दोनों ही मिल सकते थे। अध्ययन से यह भी देखने में आया है कि यह प्रायश्चित्त व्यवस्था राज्य की ओर से ही संचालित थी। आगे चलकर यह प्रायश्चित्त दण्ड के रूप में विकसित हुआ है।

विविध प्रकार के करने योग्य कर्मों के छोड़ने से मलीनता जिनको प्राप्त हुई उन मनुष्य की शुद्धि के लिए कुछ प्रायश्चित्त होते हैं। जो पुरूष श्रुति स्मृतियों में बताये हुए कर्मों को नहीं करता है निन्दित कर्मों को करता है इन्द्रियों को वश में न रखकर उनके विषय में फंसता है वह मनुष्य

प्रायश्चित्त के योग्य होता है।[१]

भविष्य में पाप कर्म न करने की प्रतिज्ञा रूप कर्म की निवृत्ति में जो चित्त ग्लानि से उत्पन्न हुआ न कहने योग्य अर्थात् अकथनीय मानसिक दुःख उसके अच्छे प्रकार सहन करने के अर्थात् रात दिन चित्त को संताप होने से भी पापियों को प्रायश्चित्त करना सम्भव है। धर्मशास्त्र में बृहस्पति आदि ने पापों को दो प्रकार का बताया है कामकृत तथा अकामकृत। कामकृत प्रायश्चित्तों द्वारा नष्ट किया जा सकता है या नहीं इस विषय में प्राचीन काल से ही प्रभूत मतभेद रहा है।

वैदिक साहित्य से लेकर स्मृति, सूत्र तथा परवर्ती संस्कृत साहित्य में प्रायश्चित्त के स्वरूप एवं सुविस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। प्रायश्चित्त शब्द के विविध अर्थ हमें भिन्न-भिन्न धर्मसूत्रों, स्मृतियों एवं अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। प्रायश्चित्त के स्वरूप का वर्णन वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, धर्मसूत्र एवं प्रमुख स्मृति के अनुसार संक्षिप्त प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम किया जा रहा है।

## १. वैदिक संहिता में प्रायश्चित्त धर्म विधान का स्वरूप

वैदिक चिन्तन में पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धान्त का प्राधन्य रहा है। प्रत्येक मनुष्य के कर्मों के वैविध्य भी सर्वविदित है, कर्म के सन्दर्भ में जब विविक्षा होती है, तब उसकी विविधता के फलस्वरूप नैसर्गिक और अनैसर्गिक जीवन पद्धति के विभिन्न आयामों का दर्शन एवं प्रदर्शन उपलब्ध होता है। उक्त नैसर्गिकानैसर्गिक जीवन पद्धति के परिणाम स्वरूप उपेक्षात्वानपेक्षत्व भाव तथा कर्म की धारा प्रवाहमान हो जाती है। चिन्तन की अपेक्षा भाव व कर्म की धारा अजस्र भी इस सृष्टिचक्र में अविरम प्रवाह की ओर प्रतीत होती हैं—चूँकि अनेकानेक कर्मों तथा भावो का नित्यशः गुणानुगुणीकरण होकर जीव के पुनः पुनः आवागमन का तारतम्य ही बन जाता है। वैदिक सिद्धान्त में कर्मों के परिणामों को भोगने के उपरान्त ही उपरति कही है। मानव समुदाय स्वभाव के अल्पज्ञ भी है, अल्पज्ञता के कारण वह इसी अन्तराल में अनेक त्रुटियाँ भी कर बैठता है, फलतः अनेक कर्मों तथा कर्मज भावों अर्थात्

---

१. अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दित्तं न समाचरन्।
प्रसक्तश्र्वेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तयिते नरः।। (*प्रायश्चित्ततादर्श प्रथम भाग पृ. २*)

संस्कारों का प्रवाह अनन्तकालिक होता है। मानव चिन्तनशील होने के कारण इसका अन्त अथवा विराम लगाने के उपायों का अन्वेषण करता पाया गया है।

ऋग्वेद में इसका मूल उत्स उपलब्ध है, वहाँ सत्य धर्म से पतित मनुष्य को पुनः अभ्युदय एवं निःश्रेयस् मार्ग का अनुसरण करने अर्थात् पाप तथा अपराध करने वाले को पुनः विशुद्ध नवजीवन प्रदान करने का उल्लेख है।[१] यजुर्वेद में अशुद्धाचरण से विरत होने के लिए शुद्धि का व्यवहार आवश्यक बताया है।[२] अथर्ववेद में 'अशस्ता' अर्थात् निन्दित कर्मों के विषयों से परे रहने के लिए मन पर लगाम को लगाना आवश्यक कहा है।[३] यजुर्वेद में वर्णित दुरित, पापदि अशुद्धाचरण को दूर करते हुए मन को शिव संकल्पशील बनाने का संकेत इसी दिशा में प्रयास है।[४] वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध उक्त प्रक्रिया एक पारिभाषिक पद 'प्रायश्चित्त' के रूप में स्वीकार्य रही है।

वैदिक साहित्य में प्रायशः दो पदों का व्यवहार हुआ है 'प्रायश्चित्ति' तथा 'प्रायश्चित्त' लेकिन दोनों का अभिप्राय एवं अर्थ एक ही है। अथर्ववेद में प्रायश्चित्ति प्रयुक्त है,[५] वस्तुतः यह प्रायश्चित्ति अपेक्षाकृत प्रायश्चित्त से अत्यधिक प्राचीन है, वैदिक भाषा एवं भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी यही माना जा सकता है। तैत्तिरीय संहिता के जैमनीय ब्राह्मण के ११५१ से ११६५ तक के सभी उद्धरणो में प्रायश्चित्ति या 'प्रायश्चित्तयः' (बहुवचन में), षड़्विंश ब्राह्मण के ९/९१/२, ९/९१/५ शतपथ ब्राह्मण के 'अग्नि प्रायश्चित्ति'

**'असावादित्यों न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्ति मेच्छन्'**
**"यदि मिथेव तेरैव कपालैः संसृजेत्सैव ततः प्रायश्चित्ति"**
**ऐष वै प्रजापतिं सर्व करोति योऽश्वमेथेन यजते सर्व एव भवति सर्वस्य वा एषा प्रायश्चितिः सर्वस्य भेषजम्"**

---

१. उतदेवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चकृषं देवा देवा जीवयथा पुनः।। *(ऋग्वेद १०/१३६/१)*

२. देव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै।
यद्धो शुद्धाः पराजहनुरिदं वस्तच्छुन्धामि।। *(यजुर्वेद १/३)*

३. अथर्ववेद ६/४५/१

४. यजुर्वेद ३०/३, ४०/१६, ३४१/६

५. स इत् तत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम्।
प्रायश्चितिं यो अध्येति येन जाया न रिष्पति।। *अथर्ववेद* (१४/१/३१)

६/६/४/१४, ६/६/४/११ इत्यादि स्थलों पर प्रायः कर प्रायश्चित्ति का ही प्रयोग देखने को मिलता है। पारस्कर गृहसूत्र के १/१०; ऐतरेय ब्राह्मण ५/२७, शतपथ ब्राह्मण में ९/५/७/१, ७/१/४/९, ९/५/३/८ तथा १२/५/१/६ कौषीतकि ब्राह्मण ५/९/६/१२, आश्वलायन श्रौतसूत्र ३/१०/३८, सामविधान ब्राह्मण १/५/३, शांखायन श्रौतसूत्र ३/१९/१ तथा मनस्मृति ११/४४, ११/४६ इत्यादि अन्यायन्य ग्रन्थों के उद्धरणों में प्रायश्चित्ति एवं दोनों पदों का व्यवहार समान रूप से विद्यमान है।

वेद में पापों से बचकर भद्र मार्ग प्राप्ति की प्रार्थनाएँ प्रायः उपलब्ध है। पातकों के लिए वेद में कुछ पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग देखनें को मिलता है यथा 'दुरित',[१] 'श्पस',[२] 'पाप',[३] 'अवद्य',[४] 'अनृत',[५] 'दुष्कृत'[६] 'एनस्',[७] 'अद्य',[८] 'अहंस्',[९] 'आगस्',[१०]

मनुष्य के जीवन में या मन में पातक होते क्यों एवं कैसे है। यद्यपि अनेक बार पातकों के मूल के प्रति सचेत होने पर भी पातकी हों जाते हैं। ऋग्वेद में इस समस्या की और ध्यान आकृष्ट किया गया है कि पाठक जाग्रतावस्था में किये जाने वाले कार्यों से ही नहीं वरन् स्वप्नावस्था में दुष्कृत्य

---

१. विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परसुव (यजुर्वेद ३०/३)
पातामवद्यादुरितात्। (ऋग्वेद १/८५/१०)
इदमापः प्रवहत यत्किञ्च दुरितं मयि। (ऋग्वेद १/२३/२२)
२. विष्वग्वि बृहता रपः। (ऋग्वेद ८/६७/२१)
३. ऋग्वेद ८/६१/११, १०/१०/१२, ४/५/५
४. ऋग्वेद १/१८५/१०
५. ऋग्वेद १/२३/२२
६. ऋग्वेद ८/४७/१३, १०/१६४/३
७. मा व एनों अन्यकृतं भुजेम। (ऋग्वेद ६/५/१७)
कृतं चिदेनो नमसा विवासे। (ऋग्वेद ६/५/१८)
न इन्द्र एनसो महश्चित् (ऋग्वेद ७/२०/१)
(ऋग्वेद ६/७४/३, १/१८९/१, २/२८/७, ७/५२/२ तथा १/९७/३-८)
८. आरे पाशा आरे अद्यानि। (ऋग्वेद २/२९/५)
केवलाघो भवति केवलादी। (वही १०/११७/६)
९. न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत्। (ऋग्वेद ८/२९/६)
ऋतावरी रक्षतामंहसो रिपः। (वही १०/३६/२, १०/३६/३ तथा २/२८/६)
१०. वयं चक्रमा कच्चिदागः। (ऋग्वेद २/२७/७५)
आरे मत्कर्त रहसूरिवागः। (ऋग्वेद २/२८/१ तथा २/२८/५, १/११५/८, १२/६/८५/७)

होते रहते हैं।[१] इसलिये वेद मन को शिव संकल्पशील बनाने की प्रेरणा देता है, क्योंकि इसका स्वाव ही है जाग्रत और स्वप्नावस्था में दूर दूर जाने का।[२]

वैदिक सांहिताओं में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ने माना है कि प्रायश्चित्त न करने से पापी को भविष्य में दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। वैदिक संहिताओं में उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि महापातक, उपपातक एवं अन्य पातकों के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

## २. ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायश्चित्त विधान

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायश्चित्त का स्वरूप वर्णित है। अनेक ब्राह्मण ग्रन्थों में पापों से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित्त शब्द का वर्णन किया गया है इन ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायश्चित्त के स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

षडविंश ब्राह्मणकार ने एक विशेष सिद्धांत की ओर संकेत किया है कि चाहे अवगत पाप है या अनवगत। उनका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना पड़ेगा।[३] सायण ने अवगत (जाने में) अनवगत (अनजाने में) इन दो शब्दों के लिए क्रमशः ज्ञात एवं अपरिज्ञात का प्रयोग अपने भाष्य में किया है।[४]

सामविधान ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार ब्राह्मण के गवादि द्रव्य की चोरी पर, चतुर्थ काल में जल के पास एक मास पर्यन्त रहने, ब्राह्मणेतर वर्ण के पुरूष की चोरी का प्रायश्चित्त 'कृच्छव्रत' का पालन करते हुये **'अयं सहस्त्र मानवः'** सामवेद ४८५ मन्त्र द्वारा पाठ करें। ब्राह्मण द्वारा गमन पाप का प्रायश्चित्त तीन कृष्छ्रव्रत और **'ब्रह्म जज्ञानं'** सामवेद ३२१ मन्त्र का उच्चारण लिखा है। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र दारागमन प्रायश्चित्त का उल्लेख किया गया है।[५]

षड्विंश ब्राह्मण के अनुसार इन सभी प्रायश्चित्तों का उद्देश्य ही था कि समस्त वर्णों की स्त्रियों की पवित्रता एवं प्रतिष्ठा बनी रहे और समाज में

---

१. न स स्वो दक्षा वरूण....स्वप्नश्चनेवनृतस्य प्रयोता। (*ऋग्वेद ७/८६/६*)

२. यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवंतदुसुप्तस्यतथैवैति।
दूरङ्गगमं ज्योतिषां ज्योतिरेंक तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। (*यजुर्वेद ३४/१*)

३. यच्चावगतं यच्चानवगतं सर्वस्यैषैव प्रायश्चित्तिरिति।
(षडविंश ब्राह्मण १/२/१३, १/६/१८)

४. यच्च यदपि अवगतं अन्यथा। यच्चं अनवगतं परिज्ञातम्। (*वही*)

५. सामविधान ब्राह्मण १/६ (*सम्पूर्ण खण्ड*)

आदरणीया हों। सामविधान ब्राह्मण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्रादि के गौ आदि पशुपक्षियों की हत्या सम्बन्धित पातक अथवा सामाजिक पातकों के प्रायश्चित्तों का सविस्तार उल्लेख उपलब्ध वित्तहरण, परिजन है।[१] लगभग ऐसा ही वर्णन षडविंश ब्राह्मण में मिलता है।[२]

षडविंश् ब्राह्मण में ब्राह्मणकार ने यज्ञ में त्रुटि या न्यूनता को 'यज्ञविभ्रष्ट' कहा है। यज्ञविभ्रष्टता हो जाने पर उसका प्रायश्चित्त पुनः यज्ञ करके ही होना बताया है।[३] ताण्डय ब्राह्मण ने यज्ञ में मन्त्रका उच्चारण कर प्रायश्चित्त कर प्रायश्चित्त कर्म करणीय है।[४] यज्ञ में सप्रमाद अग्न्याद्यानजन्य दोष शमनार्थ पुनः यज्ञानुष्ठान ही प्रायश्चित्त है। इसके अतिरिक्त यज्ञोपरान्त समुचित दक्षिणा देकर पुनः यज्ञ सम्बन्धी दीक्षा ग्रहण भी सम्मिलित है।[५]

छान्दोग्य ब्राह्मण में प्रायश्चित्त निमित्त यज्ञ करने का एक मात्र अभिप्राय व्यक्ति अपने दुष्कृत्यों द्वारा खोई हुई सामाजिक प्रतिष्ठा एवं भगवत्कृपा को पुनः प्राप्त करना ही था। गृहस्थ में पुत्री, पत्नी व पशु आदि के साथ साथ निवास करते हुए किसी प्रकार का पाप होने पर 'अग्नि प्रायश्चित्त,' 'चन्द्र प्रायश्चित्त', 'वायु प्रायश्चित्त', और सूर्य प्रायश्चित्त' का उल्लेख छान्दोग्य ब्राह्मण में हुआ है।[६]

जैमनीय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञकर्म में आद्योपान्त विधि विधान के अन्तर्गत अमेध्यत्व होने पर प्रायश्चित्त का विधान तदनुरूप ही है। दीर्घ सात्रिक यज्ञों में अग्नि का तारतम्य विस्रड्खलित होने या अग्निरहित होने पर प्रसिद्धं अग्नित्रयं (गार्हपत्य, अन्वाहार्य पच और आहवनीय) जो लोकत्रय के रूप में है, इनको धारण कर विस्तार करें।[७]

---

१. सा.वि. ब्रा. १/७-८

२. ष.वि. ब्रा. ६/२-१२

३. अथ यदाह यज्ञों वाव यज्ञस्य प्रायश्चित्तिरिति पुनर्यज्ञ एव स ऐत उहत्वोवेवाहुती यज्ञविभ्रष्टस्य प्रायश्चित्तिरित। (ष.वि.ब्रा. ३/२/४)

४. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यातुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम— (*यजु. १३/४, ता. ब्राह्मण ९/९/१२*)

५. ता. ब्रा. ९/९/१५

६. छान्दोग्य ब्रा. १/४/१-५

७. इमान् वा एष लोकान् अनुवितनुते योऽग्नीन् आधृते। तस्यायं एव लोको गार्हपत्यो भवत्यन्तरिक्षलाकोऽन्वाहार्यप्तनोऽसाव एव लोक आहवनीयः। (*जैमिनीय ब्राह्मण १/५१*)

जैमनीय ब्राह्मण के अनुसार दीर्घसत्र यज्ञों में अग्निहोत्र करते हुए सर्पिष शाकल्यादि गिर जायें तो प्रश्न उपस्थित हुआ है **"किं तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिः"**। प्रायश्चित्त इसका यही है कि **"यदि एव तत्र स्थाल्यां परिशिष्टं स्यात तेन जुहुयात"**।[१] अस्थिर हुआ स्थाली शाकल्य पात्र टूट जाय उसका क्या प्रायश्चित्त हो ? समाधान में कहा है कि **"अथ यद् अन्यद् निन्देव तेन जुहुयातः।"** ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार याज्ञिक क्रिया करने से पूर्व, मध्य या पश्चात में मुख्य, गौण अथवा न्यूनाधिक्य दोष त्रुटि भय से विराम कर देने अथवा परिवर्तन कर देने की बात को जैमिनीय ब्राह्मण कदापि स्वीकार नहीं करता है।[२] यह ब्राह्मण प्रायश्चित्त का विधान तो अवश्य करता है परन्तु जटिल एवं कठिन नहीं। यह उदारवादी दृष्टिकोण का प्रबल पोषक है, यह विधि के अवरुद्ध हो जाने का विघ्नमय से विराम कर देना ही पाप मानता है यथा सम्भव प्रायश्चित्त करके पूर्ण कर लेना श्रेयस्कर है, यही इसका वैशिष्ट्य है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ की उदारता तब और मुखरित हो उठती है जब किसी भी प्रकार के व्यवधान, पाप या दोष को 'भूः' 'भुवः', 'स्वः' इन व्याहृतियों द्वारा सर्वप्रायश्चित्त का अनेक स्थानों पर विधान करता है।[३]

सामविधान ब्राह्मण पापों पुरूष के लिए **"आपन्नः प्रायश्चित्तं चरेत्"** का उल्लेख कर प्रायश्चित्त सम्बन्धित आचार संहिता को आवश्यक कहा है।[४] पापक्षयार्थ अनेक बार प्रायश्चित्त आवृति भी विहित बताई है।[५]

सामविधान ब्राह्मण के अनुसार अश्लील गुह्य भाषणादि वाक्दोष के शुद्धि करणार्थ 'मंन्त्रों' का गायन करें। "सुरभि नो मुखाकरत" की पूर्ण भावना से सहित मुख से अश्लील तत्व निवारण के लिए प्रायश्चित्त कहा है।[६] निष्ठुर वाक् प्रयोग में "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" सामवेद का तथा माता, पिता, भ्राता, गुरु, उपाध्यायादि के प्रति हुए वाक् पुरूष के शमनार्थ सामवेद

---

१. जैमिनीय ब्राह्मण १/५३।

२. जैमिनीय ब्राह्मण १/५४/६५, १/३५८ तथा १/२६४।

३. भूर्भुवः स्वरित्येताभिव्याहृतिभिः। एता वै व्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तयः।
(*जै.ब्रा.* १/५३, १/६० *जै.उ.ब्रा.* ३/४/३/२-३)

४. सामविधान ब्रा. १/५/३

५. अभ्यासः साम्नां शतं दशावारम्। (*वही* १/५/४)

६. सा.वि. ब्रा. १/५/५

की उक्त ऋचा के द्वारा गायन कर प्रायश्चित्त का विधान किया है।[१] अमेध्य दर्शन, जिघ्रण, अखाद्य, अपवित्रकाप्राशन आदि के लिए भी सामन्त्रों का गायन कर प्रायश्चित्त का विधान है।[२] सुरापान के महापातक से छुटकारा प्राप्त करने के लिए कठोर प्रायश्चित्त का उल्लेख सामविधान ब्राह्मण ग्रन्थ में मिलता है। इसके प्रायश्चित्त प्रकरण में कहा है कि एक वर्ष तक अष्टम् प्रहर पर क्षार लवणादि रहित भोजन करता हुआ पद्मासन लगाकर गोपनीय स्थान पर रहे, शीतादि निवारणार्थ उत्तरीय आदि वस्त्र धारण न करे त्रिवसन स्नान कर "पवित्र ते विततं ब्रह्मणस्पेत" सामवेद के इस मन्त्र का संध्या में जाप करे। ग्राम से बाहर कुटी बनाकर निवासादि इन सभी का अनुष्ठान करने के उपरान्त, केश, श्मश्रु, नख को काटकर नवीन वस्त्र धारण कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति का उच्चारण करवाकर सुरापान के महापातक से मुक्त होना बताया है।[३] सामविधान ब्राह्मणों ने समस्त महापातकों के लिए सुरापान महापातक की तरह के प्रायश्चित्त करने का विधान बताया है।[४]

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में भी प्रायश्चित्त की एक सुव्यवस्थित परम्परा दृष्टिगत होती है।

## ३. आरण्यकों में प्रायश्चित्त का स्वरूप

प्रायश्चित्त स्वरूप के वर्णन में आरण्यकों में प्रायश्चित्त के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है। तैत्तिरीयारण्यक के कथनानुसार मनुष्य द्वारा किये हुए कर्म तब तक नष्ट नहीं होते जब तक कि उनका (अर्थात् उनके फलों का) उपभोग नहीं हो जाता। कर्म (अर्थात् उनके फल) अच्छे हो या बुरे शुभाशुभ अवश्य ही भोगे जाने चाहिए।[५] तैत्तिरीयारण्यक के अनुसार जो व्यक्ति अपने

---

१. पुरूषमुक्तवेंद विष्णुविर्चक्रम इति। ब्राह्मणमुक्त्बा त्रिः भ्रातरं मातुलं पितृव्यमिति गुरुजातीयान्। उपाध्यायं मातरं पितरमित्येतेष् त्रिरात्रमुपवासन्नेतस्यैवान्त्यम्। (*सा.वि. ब्रा.* १/५/६-९)

२. वही १/५/१०-१३

३. सा.वि. ब्रा. १/५/१५

४. (क) एतेन भ्रूणहा पूर्वमेतेन ब्रह्महा शुद्धा शुद्धोपमुत्तरमेतेन सुवर्णस्तेनोऽभित्रिपृष्ठामित्यभि-त्रिपृष्ठमिति। (*सा.वि. ब्रा.* १/५/१६)
(ख) गुरुदारान् गत्वा सुराकल्पेनाक्रानिप्येतद् गायेत्। (वही १/६/३)

५. नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।। (*तैतिरीयारण्यक ८/२, प्राय.वि.पृ. १३*)

को अपवित्र समझता है कूष्माण्ड मन्त्रों से होम करना चाहिए।[१] तौत्तिरीयारण्यक ने कूष्माण्ड एवं दीक्षा का वर्णन किया है। आरण्यक के अनुसार जो किसी स्त्री से संभोग कर लेता है वह अवकीर्ण कहा जाता है। ऐसे अवकीर्णी के लिए प्रथम बार सुदेव-काश्यप द्वारा प्रतिपादित प्रायश्चित्त करना चाहिए।[२]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि आरण्यकों में भी दुष्कर्म जन्य पाप से छुटकारा पाने के प्रायश्चित्त विधान विहित है। आरण्यकों के मतानुसार मनुष्य तब तक पाप से मुक्त नहीं होता जब तक कि वह प्रायश्चित्त न कर ले।

## ४. उपनिषदों में प्रायश्चित्त का स्वरूप

उपनिषद् साहित्य में भी प्रायश्चित्त विधान एवं उसका महत्व प्रतिपादित है।

जैमनीय उपनिषद् ब्राह्मण में प्रायश्चित्त का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्राह्मण प्रायश्चित्त काविधान तो अवश्य करता है परन्तु जटिल एवं कठिन नहीं। यह उदारवादी दृष्टिकोण का प्रबल पोषक है, वह विधि के अवरूद्ध हो जाने या विघ्नमय से विराम कर देना ही पाप मानता है, यथा सम्भव प्रायश्चित्त करके पूर्ण कर लेना श्रेयस्कर है, यही इसका वैशिष्ट्य है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ की उदारता तब और मुखरित हो उठती है, जब किसी भी प्रकार के व्यवधान, पाप या दोष को 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' 'इन व्यहृतियों' द्वारा सर्व प्रायश्चित्त का अनेक स्थानों पर विधान करता है।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि उपनिषदों में भी प्रायश्चित्त के स्वरूप का वर्णन किया है। उपनिषदों के कथानुसार व्यक्ति पाप कर्म से मुक्त होंने के लिए प्रायश्चित्त करता है। उपनिषद् के अनुसार प्रायश्चित्त वही है जो नियमानुसार, विधानमय, दृढ़निश्चय होकर किया जाए।

## ५. धर्मसूत्रों में प्रायश्चित्त का स्वरूप

सूत्र ग्रन्थों में प्रायश्चित्त विधान का व्यवस्थित रूप हमें दृष्टिगत होता है। धर्मसूत्रों में प्रायश्चित्त के सभी पक्षों का सर्वांगीण विवेचन प्राप्त होता है।

---

१. 'यद्देवा देवहेडनम्'।। (तै.आ. २/७-८)

२. तै.आ. २/१८।

३. भूर्भुवः स्वरित्येताभिव्याहतिभिः। एता वै व्याहतयः सर्वप्रायश्चितः।
*(जैमनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३/४/३/२-३)*

प्रमुख धर्मसूत्रों के अनुसार प्रायश्चित्त स्वरूप का विवेचन इस प्रकार है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार वे पाप कर्म जो पतनीय है और जान बूझ कर किये गये है, ऐसे पापों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति को मृत्युपर्यन्त तक चलने वाले प्रायश्चित्तों से दूर कर सकता है। पतनीय पाप तथा मृत्युपर्यन्त चलने वाले प्रायश्चित्तों का वर्णन 'अध्याय दो' में विस्तार से किया जा रहा है। गौतम एवं वशिष्ठ ने दो मत दिये हैं; जिनमें से एक में कहा गया है कि दुष्कृत्यों के लिए प्रायश्चित्त नहीं किये जाने चाहिए, क्योंकि उनका नाश होता है अर्थात् उनके फलों के भोग से ही उनका नाश सम्भव है। दूसरे मतानुसार पाप के प्रभावों को दूर करने के लिए प्रायश्चित्त का सम्पादन होना चाहिए।[१] दूसरे मत के आधार चार वैदिक उक्तियों में पाया जाता है। प्रथम वह व्यक्ति सामान्य वैदिक कृत्य कर सकता है दूसरी व्यक्ति वैदिक यज्ञों के सम्पादन के योग्य हो जाता है। तीसरी जो व्यक्ति अश्वमेघ यज्ञ करता है वह सब पापों को पार कर जाता है और ब्रह्महत्या से मुक्त हो पाता है। (चौथी उक्ति में वर्णित है जो दूसरों पर महापातक मढ़ता है वह अग्निष्टुत् करता है) वसिष्ठ प्रायश्चित्तों के सामर्थ्य विषय में उपर्युक्त दो मतों से सहमत है।[२]

आपस्तम्ब के कथनानुसार यदि कोई व्यक्ति गुरू पिता, वेदशिक्षक आदि को या उस ब्राह्मण को जो वेदज्ञ है और जिसने सोमयज्ञ समाप्त कर लिया है, मार डालता है तो उसे मृत्यु पर्यन्त तक प्रायश्चित्त करना पड़ता है, वह इस जीवन में अपने पाप से मुक्ति नहीं पा सकता किन्तु पाप उसकी मृत्यु पर कट जाता है। इससे प्रकट होता है कि मृत्यु पर्यन्त चलता हुआ प्रायश्चित्त पाप को नष्ट कर देता है।[३]

धर्मसूत्रकारों के अनुसार ''जो लोग इन्द्रिय दौर्बल्य के कारण शास्त्र विहित जाति सम्बन्धी सुविधाओं एवं कर्त्तव्यों के पालन से पथ भ्रष्ट हो गये हों, उन्हे आचार्य उनके पापमय कृत्यों के अनुरूप शास्त्रानुमोदित प्रायश्चित्त करने की आज्ञा दे।

---

१. तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसन्ते।। न कुर्यादित्याहुः।।
न हि कर्म क्षीयते इति।। कुर्यादित्यपरम्।।

(*गौ.ध.सू.* १९/३-६ *वसिष्ठ ध.सू.* २२/२-५)

२. अनभिसांधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे।। अभिसंधिकृतेप्येक।। (*वसिष्ठ* २०/१-२)

३. आप. ध.सू. १/१०/२८/१८, एवं १/९/२४/२४-२५।

सूत्रकारों के अनुसार पृथक पृथक श्रेणी के पापों के लिये पृथक पृथक प्रकार के प्रायश्चित्त विधानों का वर्णन किया गया है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र के कथनानुसार क्षत्रिय या वैश्य की हत्या करने वाले को बैर मिटाने के लिए क्रम से एक सहस्र, एक शत एवं दस गायें देनी चाहिए और इनमें से प्रत्येक दुष्कृत्य के प्रायश्चित्त के लिएं बैल देना चाहिए।[१] लेकिन ये गायें किसको दी जायें इस विषय में कोई उक्ति स्पष्ट नहीं है। बौधानय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि गायें राजा को दी जानी चाहिए।[२]

गौतम एवं वसिष्ठ ने कुछ दूसरे पापकर्म के लिए प्रायश्चित्त का वर्णन इस प्रकार बताया है। यदि कोई व्यक्ति माता, बहन, पुत्र वधू आदि के साथ व्यभिचार करे तो ऐसे पापी के अण्डकोश एवं लिङ्ग काट लिए जाये एवं दक्षिण-पश्चिम दिशा में तब तक चलते जाने के प्रायश्चित्त की व्यवस्था दी है जब कि पापी का शरीर गिर न पड़े।[३]

धर्मसूत्रकारों ने प्रायश्चित्त सम्बन्धी विधान का वर्णन पाप कर्मों के वर्गीकरण के अनुसार किया है। सूत्रकारों कथनानुसार पाप कर्म में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन विस्तार पूर्वक द्वितीय अध्याय में किया जा रहा है।

धर्मसूत्रों में विहित प्रायश्चित्त विधान के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यदि कोई इन्द्रिय दौर्बल्य के कारण शास्त्रविहित स्ववर्णागत एवं कर्तव्यों के पालन से पथ भ्रष्ट हो गये हों, उन्हे पाप कृत्यों के अनुरूप प्रायश्चित्त करके पाप से मुक्ति मिल सकती है। कुछ सूत्रकारों का यह कथन था कि यदि कोई व्यक्ति पाप करने के बाद एक वर्ष में प्रायश्चित्त नहीं करता ता उसे दुगना प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्राचीन समय में प्रायश्चित्तों की जन साधारण में बड़ी महत्ता थी। गौतम धर्मसूत्र के अठ्ठाइस अध्यायों में दस अध्याय प्रायश्चित्त विधान पर ही है। वसिष्ठ धर्मसूत्र के मुद्रित तीस अध्यायों में से नौ अध्याय से बीस से अठ्ठाइस प्रायश्चित्त सम्बन्धी है। यदि शिष्ट उचित पापों में विहित प्रायश्चित्त को जानते हुए उचित निर्णय नहीं देते थे तो पापी के प्रायश्चित्त के उपरान्त बचा हुआ पाप उन्हें भोगना पड़ता था।

---

१. आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१/९/२४/१-४)

२. शतं वैश्ये दश शूद्र ऋषभाश्चाऽत्राधिकः।। (*बौ.ध.सू.* १/१०/२२)

३. गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुद्धत्याञ्जलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छ द्यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयम्।।

(*वसिष्ठ ध.सू.* २०/१३ गो.ध.सू. २३/१०-११)

## ६. प्रमुख स्मृतियों में प्रायश्चित्त का स्वरूप

मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर इन प्रमुख स्मृतिकारों ने पापों के अनुसार प्रायश्चित्त विधान का वर्णन किया है। धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्धारण में स्मृतियों का महत्पूर्ण स्थान है। स्मृतिकारों ने प्रायश्चित्त के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि जैसे मनुष्य दृष्कृत कर्म की निन्दा करता है वैसे वैसे वह अधर्म से छूटता है। पापान्तर सन्तानयुक्त होने से पाप से बचता है और फिर ऐसा न करूं, इस प्रकार निवृत्त होने से पवित्र होता है। 'तप' को भी मनु ने मुख्य ने प्रायश्चित्त स्वरुप माना है। इससे अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति पाप से बच जाता है। मन, वाणी, शरीर से कृत पापों को तप से दग्ध करने का पक्ष प्रस्तुत किया गया है।[१]

याज्ञवल्क्य के अनुसार शुद्र पापी या अन्य वर्ण का व्यक्ति जो मन्त्रोंच्चारण या यज्ञ क्रिया से न तो अवगत है और न ही सम्पादित करा सकता है वह भी अनेक प्रकार की प्रायश्चित्त विधि कर सकता है, अथवा वह प्रयास करके याज्ञिकों से यज्ञ करा प्रायश्चित्त कर सकता है।[२]

प्रायश्चित्त शब्द का सम्बन्ध नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों कर्मों से है, और प्रायश्चित्त स्वयं में भी नित्य नैमित्तिक व काम्य कर्म का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। जब इसका उपयोग उक्त कर्मोपरान्त, अपराध से उपरति प्राप्त करने में किया जाता है। तब इसका कर्मत्रय से सम्बन्ध होने तथा इन्हीं के निमित्त प्रायश्चित्त का उपयोग होने के कारण उसे 'त्रिवृत' भी कहा जा सकता है। नित्य कर्मों के करने में किसी पुण्य की प्राप्ति नहीं होती, अपितु न करने से पाप वृद्धि अवश्यम्भावी है, इसलिये नित्य कर्म अवश्य करणीय होते हैं। प्रतिदिन जाने अनजाने में होने वाले अपराधों का शमन करने के लिए नित्य कर्मों का विधान है। महर्षि मनु ने नित्य कर्म सम्बन्धित व्यवस्था देते हुए कहा है कि गृहस्थों से चूल्हा, चक्की, झाडू, बुहारी, ओखली, मूसल और जलकलश इन पाँचों स्थानों में हिंसात्मक अपराध होता रहता है। मानव अपने लिए वस्तुओं के दैनिक प्रयोग में लाने के कारण पाप से सम्बन्ध होता

---

१. यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं क्तेनाधर्मेण मच्युते।। (*मनु* ११/२२९-२३०)

२. चान्द्रायणं चरेत्सर्वानवकृष्टान्निहत्य तु। शुद्रोऽधिकारहीनोऽपि कालेनानेन शुद्धयति। (*यज्ञ.* ३/२६२)

रहता है। क्रमशः उक्त पंच वध स्थानों में होने वाले पापों से छुटकारा पाने के लिए, गृहस्थ को प्रतिदिन पंचयज्ञ का कर्तव्य सर्वथा अपेक्षित बताया है। अध्ययन, अध्यापन, चिन्तन, सन्ध्यादि को ब्रह्मयज्ञ वृद्धों की सेवा तर्पण को 'पितृयज्ञ', अग्नि को दी जाने वाली हवि को 'अग्निहोत्र' या देवयज्ञ, प्राणियों को दी जाने वाली भोज्य सामग्री या बलि को बलिवैश्यदेव यज्ञ या भूतयज्ञ और अतिथि सत्कार के लिए अतिथि यज्ञ कहा जाता है। इस प्रकार इन पंच महायज्ञों को यथाशक्ति परित्याग न करें तों गृहस्थ उक्त पंचस्थानीय अपराधों से लिप्त नहीं होता।[१]

प्रायश्चित्त उस कर्मविशेष में रूढ़ है।[२] जो नैमित्तिक कहा जाता है अर्थात् विशेष अवसर पर कृत्य है। फल प्राप्ति की कामना के लिए किये जाने वाले कर्म को 'काम्य' कर्म भी कहा जाता है। ज्योतिष्टोम, पुत्रेष्टि आदि कर्म काम्य है अतः काम्यगत कर्म की सफलता के लिए प्रायश्चित्त का सहयोग होने के कारण इसको काम्य भी कहा जाता है सर्वथा उचित है। इन नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों में अपराध, दोष या त्रुटि हो जाने पर उसके शमनार्थ प्रायश्चित्त सम्पादनीय है। महर्षि मनु का विचार है कि विहित कर्म को न  करने वाला और चिन्तन कर्म को करता हुआ इन्द्रियों के विषय में आसक्त मनुष्य 'प्रायश्चित्त' का अधिकारी है।[३] मनुस्मृति में महर्षि मनु वेदाभ्यास को अकामकृत अपराधों के लिए पर्याप्त मानते है, यह उनकी दृष्टि में सुलभ एवं ऋजु उपाय है और कामकृत पापों के शमनार्थ यथायोग्य विधि वाले विभिन्न प्रायश्चित्तों को स्वीकार करते हैं।[४] मनु ने प्रायश्चित्त न करने वाले पापियों

---

१. (क) पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्।।
(ख) तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च कल्पता महायज्ञाः गृहमेधिनाम्।।
(ग) अध्यापन ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।
(घ) पञ्चैतान्यो महायज्ञहापयति शक्तितः।
सः गृहेऽपि वसन्नित्यं सूना दोषैर्नलिप्यते। (*मनु.* ३/६८/-७१)

२. प्रायश्चित्त शब्दचार्य पापक्षमार्थें नैमितिके कर्मविशेषे रूढ़ः। (*मिताक्षरा* ३/२२०)

३. अकुर्वन्हितं कर्म निन्दितं न समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चितीयते नरः।। (*मनुस्मृति* ११/४४)

४. अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्ते पृथग्विधै।। (*मनुस्मृति* ११/४६)

से सामाजिक सम्बन्ध तोड़ने अथवा समाज से बहिष्कार करने की व्यवस्था दी है।[१] अन्य शास्त्रकारों ने भी, अपनी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए, इससे उसका व्यक्तित्व पूर्ववत् स्थिति को प्राप्त कर लेता है तथा समाज भी प्रसन्न हो जाता है। अतः प्रायश्चित्त जान बूझकर किये गये पापों को नष्ट नहीं करते, किन्तु प्रायश्चित्त कर लेने पर पापी व्यक्ति समाज को स्वीकार्य हो जाता है।[२]

याज्ञवल्क्य ने इन्द्रिय और रजोगुणक्षय के कारण कामकृत अर्थात् अवगत दुष्कृत्यों की सम्भावना प्रायः नहीं होती। विहित कर्म न करने से, वर्जित को करने से असंयमेन्द्रिय मनुष्य पातकी हो जाता है।[३]

मनु के अनुसारः—दुष्कृत्य पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। महापाप '(प्राणहारी पाप)' अतिपाप, '(सबसे बड़ा पाप)' पातक '(बड़े पाप)' उपपातक, '(साधारण पाप)' और सांसर्गिक पाप '(संग या संसर्गजन्य)' वृद्ध हरीतकार में भी यही माने है, परन्तु पातकों के नाम कुछ भिन्न हैं।

यथा महापाप, पातक, अनुपात, उपपातक और प्रकीर्णक। मनु ने मनु स्मृति के ग्यारहवें अध्याय में पातकों एवं प्रायश्चित्तों पर प्रकाश डालते हुए पातकों, उपपातकों, महापातकों का विस्तृत उल्लेख किया है। यहाँ पर वे ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुपत्नी से व्यभिचार तथा इन पापों के करने वालों के साथ संसर्ग को महापतक मानते हैं।[४] इसी अध्याय में महापातकों की कोटि में आये पापों का उल्लेख मिलता है। आत्मप्रशंसा के लिए असत्य बोलना, राजा से चुगली करना, गुरु की झूठा समाचार सुनाना ये ब्रह्महत्या के सदृश है। वेद को त्यागना, वेदनिन्दा झूठ गवाही, मित्र का वध, अभक्ष्य भक्षण ये सुरापान सदृश हैं। धरोहर, मनुष्य, घोड़ा, चांदी, भूमि, हीरा, मणि आरि का हरणा, चोरी के सदृश है, सहोदरा भगिनी, कुमारी चाण्डाली, सखा या पुत्र

---

१. एनस्विरनिर्णिक्तेनार्थं किञ्चित्सहाचरेत्।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित्।। (*मनुस्मृति* ११/१८९)

२. प्रायश्चित्तैरपैत्येना यदज्ञानकृतं भवेत्।
कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादि जायते।। (*याज्ञ.* ३/२२६)

३ विहित स्वननुष्ठानान्निदतस्य च सेवनात्।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति। (*याज्ञ. स्मृति* ३/२१९)

४. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ् गनागमः।
महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह।। (*मनुस्मृति* ११/५४)

की पत्नी इससे व्यभिचार करना गुरुपत्नी गमन सदृश महापातक बताए हैं।[१]

मनु महाराज ने मनु स्मृति में सुरापान के महापातक से बचने के लिए कठोर प्रायश्चित्त का विधान किया है।[२] यद्यपि सुरापान आज एक साधारण सी बात मानी जाती है तो फिर शास्त्रकारों ने इसे महापातक क्यों माना हैं? इसका समाधान महर्षि मनु ने बताया है कि सुरापान किया ब्राह्मण भी उन्मत हुआ अपवित्र स्थानों में गिरेगा वेद की निन्दा करेगा तथा कोई भी समाज घातक प्राणघातक या अन्य निषिद्ध कर्म करेगा। अतः महापातक कहा है।[३] महर्षि मनु ने कठोर एवं उदार दृष्टिकोण रखते हुए कहा है कि ऐसा महापातकी मृत्यु को प्राप्त करे अथवा यति होकर निर्जन वन में 'प्राजापत्य' प्रायश्चित्त करे।[४]

मनु याज्ञवल्क्य एवं पाराशर के कथनानुसार ज्ञात होता है कि प्रायश्चित्त न करने से पापी को भविष्य में दुष्परिणामों का भुगतना पड़ता है। पापकृत्य के फलस्वरूप सम्यक् प्रायश्चित्त न करने से परम भयावह कष्टकारक यातनाएं भोगनी पड़ती है चाहे किसी भी समय, जन्म या योनि में। अपराध, पातक, त्रुटि या दोष के लिए स्वीकार उक्ति भी अपेक्षणीय है। अपने प्राच्य स्मृतियों के अनुसार महापातक उपपातक एवं अन्य पातकों के लिए प्रायश्चित्त का विधान आवश्यक है। अनुष्ठान आवश्यक है। इसके आचरण से व्यक्ति का अन्तःकरण शुद्ध होकर पुनः सन्मार्गोन्मुख होता है। एवं पाप जन्य कष्टों से मुक्त होता है।

---

१. अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया।। (मनु. ११/५५-५८)

२. (क) सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णे सुरां पिबेत्।
तया स कामे निर्दग्धे मुच्यते किल्विषाततः ।।९०।। मनु. ११/९०

(ख) गोमूत्रमग्निवर्णें वा पिबेदुदकमेव वा।
पयो घृतं वाऽऽमरणाद्कोशकृद्रसमेव वा।।९१।। वहीं ११/९१

(ग) कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि।
सुरापानानुत्यर्थे वालवासा जटी ध्वजी।।९२।। वहीं ११/९२

३. अमेध्येवापतेन्मत्रो वेदिकं वाप्युदाहरेत्।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मद मोहितः।। (मनु. ११/९६)

४. खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेंक समाहितः।। (मनु. ११/१०३-१०५)

## ७. श्रुति एवं स्मृतियों में विहित प्रायश्चित्त विधानों का परस्पर सम्बन्ध

विश्व के सर्व विहित ज्ञान का आदि स्रोत वेद है उसमें मानव जीवन से सम्बन्धित सभी उपयोगी ज्ञान का बीज सन्निहित है। संहिता से लेकर उपनिषद् तथा सूत्रग्रन्थों 'में मानव जीवन के कर्त्तव्याकर्त्तव्य पक्ष पर विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है मानव की सहज प्रवृति सांसारिक विषयों के प्रति होती है समय समय पर काम क्रोधादि भावनाओं से प्रेरित होकर वह अनेक विषिद्ध कर्म भी कर बैठता है। उनके प्रायश्चित्त के लिए उन पाप कर्मों से मनोवृत्ति को हटाने के लिए और अन्तःकरण की शुद्धि के लिए अनेक प्रायश्चित्तों का विधान वैदिक साहित्य में दृष्टिगत होता है। जिनका पिछले पृष्ठों में संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

स्मृतिग्रन्थ श्रुति के अर्थ का ही सरल एवं विषद भाव से प्रतिपादन करते हैं स्मृति ग्रन्थः विशेषतः मानव जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर विधि निषिद्धात्मक रूप से निम्न अकृत्य का वर्णन करते हैं। श्रुति एवं स्मृति में प्रतिपादित प्रायश्चित्त व्यवस्था में कोई भिन्नता नहीं है। स्मृति प्रतिपादित प्रायश्चित्त व्यवस्था को हम श्रुति विहित प्रायश्चित्त व्यवस्था श्रुति का विस्तृत व्याख्यान मात्र कहे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस प्रकार श्रुति स्मृति प्रतिपादित प्रायश्चित्त विधान एक ही विषय के पूरक हैं या प्रतिपादक है। वैदिक साहित्य में जो प्रायश्चित्त विधान किये गये है स्मृतियों में उनसे भिन्न भी प्रायश्चित्त के साधन दृष्टिगत होते हैं किन्तु उनके लक्ष्य व्यक्ति के अन्तःकरण को शुद्ध करना ही है इस श्रुति से भिन्न होते हुए भी उनसे अभिन्न है।

## ८. प्रायश्चित्त शब्द के विविध अर्थ

वैदिक साहित्य में दो प्रयुक्त हुए है प्रायश्चित्ति एवं प्रायश्चित्त और दोनों का अर्थ भी वहाँ एक ही है, यद्यपि प्रायश्चित्ति अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है। तैत्तिरीय संहिता में प्रायश्चित्ति शब्द बार-बार आया है। यहाँ पाप का प्रश्न नहीं उठाया गया है।[१] इस शब्द का अर्थ है "कोई ऐसा कार्य करना जिससे

१. असावादित्यों न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चितिमैच्छन;।

*(तैतिरीय संहिता २/४/२/४ एवं २/१/४/१)*

यदि भिद्येत तैरेव कपालैः संसृजेत्सैव ततः प्रायश्चित्तिः। *(तै.स. ५/१/९/३)*

एष वै प्रजापतिं सर्व करोति योऽश्वमेधेन यजते एवं एव भवति सर्वस्य वा एषा प्रायश्चित्तिः सर्वस्य भेषजम्। *(तै.स. ५/३/१२/१)*

किसी अचानक घटित घटना या अनर्थ (अनिष्ट) का मार्जन हो जाय, यथा उखा (उबालने या पकाने के पात्र) का टूट जाना सूर्य की दीप्ति का घट जाना।" तैत्तिरीय संहिता में यह शब्द पाप के प्रायश्चित्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। स्पष्ट होता है कि अति प्राचीन ग्रन्थों में इस शब्द के अर्थ के दो रूप थे। कौषतकि ब्राह्मण में बताया है "लोगों का कथन की जो कुछ यज्ञ में त्रुटि या अतिरेक घटित होता है उसका प्रभाव ब्रह्मा पुरोहित पर पड़ता है और वह तीन वेदों से उसका मार्जन करता है या ठीक करता है।"[१] यह शब्द अथर्ववेद, वाजसंहिता, ऐतरेय-ब्राह्मण, शतपथ-ब्राह्मण में आदि में भी आया है। प्रायश्चित्त शब्द कौषीतकि ब्राह्मण में और अन्यत्र भी आया है।[२]

प्रायश्चित्त विवेक एवं प्रायश्चित्त तत्व ने हारीत को उद्धृत कर एक अन्य व्युत्पति दी है। प्रयत (पवित्र) + चित संग्रहीत जिसके अनुसार 'प्रायश्चित्त' का अर्थ है ऐसे कर्म यथा, तप, दान एवं यज्ञ जिनसे व्यक्ति प्रयत (पवित्र) हो जाता है और अपने एकत्र पापों (चित = उपचित) का नाश कर देता है।[३] जिस प्रकार वस्त्र नमक (क्षार) उपस्वेद सामवेदीय ब्राह्मण के 'अथावः प्रायश्चित्तानां'[४] इस सूत्र की टीका में आचार्य सायण ने इसकी व्युत्पत्ति में प्रायः प्र+आयः प्र (प्रकर्षेण) उपसर्ग पूर्वक आयः = प्रायः = प्राप्ति, तथा चित्तं ज्ञानं (चिति संज्ञाने) = प्रायश्चित्तं अर्थात् किसी विहित कर्म को ज्ञात या अज्ञात अवस्था में सम्पादन न होने के फलस्वरूप अन्त में विहित कृत्यों को परिपूर्ण करने की विधि या प्रक्रिया को प्रायश्चित्त कहा है।[५] लेकिन ताण्ड्य ब्राह्मण के भाष्य में सायण में 'प्रायः' का सर्वथा भिन्न अर्थ किया है। कि

---

१. यद्वै यज्ञस्य स्खलितं वोल्वण वा भवति ब्रह्मण एव तत्प्राहुस्तस्य त्रम्या विद्यायाः भिषन्यति।
(*कौषीतकि ब्राह्मण ६/१२*)

२. अथर्ववेद १४/१/३० वाज. सं. ३९/१२, ऐत. ब्रा. ५/२७, शत. ब्रा. ४/५/७/१, ७/१/४/९, ९/५/३/८ एवं १२/५/१/६

३. तत्र हारीतः। प्रयतत्वादौपचितशुां कर्म नाशयतीति प्रायश्चित्तमिति। यत्तपः प्रभृतिकं कर्म उपचितं संचितशुभं पापं नाशयतीति। कृततत्कर्मभिः कर्तुः प्रयत्वाद्वा। शुद्धत्वादेव तत्प्रायश्चित्तम। तथा च पुनर्हारीतः। यथा क्षारोपस्वेदचण्डनिर्णोदनप्रक्षालनादिभिवासांसि शुद्धयन्ति एवं तपोदानयज्ञैः पापकृतः शुद्धिमुपयन्ति।
(*प्रायश्चित्त तत्व पृ. ४६७, प्राय. विवेक पृ. ३*)

४. सामविधान ७/५/१

५. आयः प्राप्तिः प्रकर्षेणायः प्रायः। विहित कर्माकरणस्य प्राप्तिरित्यर्थः। तत्प्रतीकार विषयं चित्त चित्तिज्ञानं, तत्पूर्वानुष्ठानानि प्रायश्चित्तानि। (*सामविधान १/५१/१*)

विनाश तथा विनाश का समाधन करना यही सायण का अभिप्राय रहा होगा।[१] आङगरस स्मृति में प्रायश्चित्त के व्युष्पत्ति सन्दर्भ में 'प्रायः' को तप तथा चित्तको निश्चय, दृढ आस्था या संकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए यहाँ तप और निश्चय से संयोग को प्रायश्चित्त कहा है।[२] एक अन्य व्युत्पत्तिकार बालमभट्टी ने 'प्रायः **पापं विनिर्दिष्टं चित्तं तस्य विशोधनं,** इस वाक्य के द्वारा स्पष्ट करना चाहा है कि प्रायः पाप है और चित्त'-शोधन या शुद्धिकरण।[३] 'प्रायश्चित्त विवेक' में उक्त व्युत्पत्ति एवं अर्थ की पुष्टि की है।[४] निष्कर्षः इन व्युत्पत्तिमूलक अर्थों से स्पष्ट होता है कि 'प्रायश्चित्त' को मूलतः नित्य, नैमित्तिक व काम्य कार्यों के अन्तर्गत ज्ञानाज्ञान से यदि कोई अपराध त्रुटि या दोष हो जाया करता था उसके निवारणार्थ किसी उपायवश उस अपराध को शमन या अवरूद्ध करने वाली विधि या कर्त्तव्य को निस्सन्देह 'प्रायश्चित्त' कहा जाता था। इस सम्बन्ध में यह धारणा अद्यावधि प्रचलित है। **'यत्तपः प्रभृतिकं कर्म उपचित्तं संचित मशुभं पापं नाशयतीति। नाशयतीति। कृततत्त्कर्मभिः कर्तुः प्रयतत्वाद्वा। शुद्धत्वादेव सत्प्रायश्चित्तम्'।**[५]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि प्रायश्चित्त का अर्थ मन की शुद्धि।

## ९. प्रायश्चित्त विधान सम्बन्धी साधनों का विवेचन

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार महापातकों, उपपातकों एवं अन्य प्रकार के दुष्कृत्यों के विभिन्न प्रकारों के लिए प्रायश्चित्त साधनों का वर्णन किया है। स्मृतिकारों ने एक ही प्रकार के पाप के लिए कई प्रायश्चित्त साधनों का वर्णन किया है। आधुनिक युग में प्रायश्चित्तसाधनों को अधिक महत्व नहीं दिया गया है। पापों के अनुसार उनके लिए उचित प्रायश्चित्त साधनों का वर्णन इस प्रकार है।

---

१. प्रायश्चित्तं प्रायो विनाशस्तस्य समाधानं ज्ञानं चित्ति नाशशंसोपशोषण जनित दोषस्योपशमनं करोति। (*ताण्ड्य ब्राह्मण ९/९/७ सायण भाष्य*)

२. प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्त निश्चय उच्यते।
तपो निश्चय संयोगात् प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।। (*अङ्गिरस स्मृति २१४*)

३. याज्ञवल्क्य स्मृति ३/२०६

४. प्रायो विनाशः चितं संधानं विनष्टस्य संधानमिति विभागयोगेन प्रायश्चित्त शब्दः पापक्षमार्थे नैमित्तिक कर्मविशेष वर्तते। (*प्रायश्चित्त विवेक पृ. ९८९*)

५. प्रायश्चित्त विवेक पृ. ३

## (क) अनुताप (पश्चात्तप) :–

**अर्थः**–अनुताप का सामान्य अर्थ चिर समोह या शयन जन्य अपने दुष्कर्मों की समृति सम्बोध अनुपात कहलाता है।

प्रमुख स्मृतियों एवं धर्मसूत्र में पापों के प्रायश्त्ति साधनों का वर्णन इस प्रकार किया गया है। मनु का कथन है–"व्यक्ति का मन जितना ही अपने दुष्कर्मों को घृणित समझता है उतना ही उसका शरीर उसके द्वारा किये गये पाप से मुक्त हो जाता है। यदि पाप कृत्य के उपरान्त उसके लिए अनुपात (पश्चात्ताप) करता है तो वह उस पाप से मुक्त हो जाता है। उस पाप का त्याग करने के संकल्प में वह यह सोचने से कि यह पुनः नहीं करुंगा, व्यक्ति पवित्र हो उठता है।[१] व्यक्ति अपने पाप को सर्वधारण कहने से, पश्चात्ताप ऐसे कुकर्म में प्रवृत्त होने वाले मुझ पापी को धिक्कार है इत्यादि प्रकार से निरन्तर पछतावा करने से कठिन तपश्चरण से (वेद आदि के) अध्ययन (पाठ, जल आदि) से और (इन सब कार्यों को शक्ति नहीं रहने पर) दान करने से पापी मनुष्य पाप से छूट जाता है।[२] मनु के कथनानुसार ही पापी मनुष्य पाप करके जैसे-जैसे अपने पाप को लोगों से कहता है, वैसे-वैसे कांचली से साँप के समान वह मनुष्य उस पाप से छूटता है।[३] अर्थात् अलग हो जाता है और पापी का मन जैसे जैसे उस दुषित कर्म की निन्दा करता है वैसे वैसे उस पाप से छूट जाता है।[४] प्रायश्चित्त विवेक ने अंगिरा की उक्ति दी है पापों को करने के उपरान्त यदि व्यक्ति अनुताप में डूबा हुआ हो और रात दिन पश्चाताप करे तो वह प्राणायाम से पवित्र हो जाता है।[५]

'प्रायश्चित्तप्रकाश' जैसे ग्रन्थ का मत है कि केवल पश्चात्ताप पाप को दूर करने के लिए पर्याप्त नहीं है, प्रत्युत पापी प्रायश्चित्त करने के योग्य भी

---

१. कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यो पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः।।२३०।। (*मनु.* ११/२३०)

२. ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि।।२२७।। (*मनु.* ११/२२७)

३. यथा यथा नरोऽधर्मे स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते।।२२८।। (*वही* ११/२२८)

४. यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ।।२२९।। (*वही* ११/२२९)

५. प्रायश्चित्त विवेक पृ. ३०

हो जाता है, यह उसी प्रकार है जैसे कि वैदिक यज्ञार्थी नख आदि कटा लेने के उपरान्त यज्ञ में दीक्षित होने के योग्य हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि राग दोषात्मक भावना से कृत चित्त को दूषित करते हुए कर्मवासना या बन्धन का कारण बनते है। अनुत्तापादि प्रायश्चित्त साधनों से उन संस्कारों को दूर करना ही, मन की परिष्कृति करना ही उनका लक्ष्य है।

**(ख) प्राणायामः—**

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार पाप से छुटकारा पाने के लिए 'प्राणायाम' का विशेष महत्व है। प्राणायाम का सामान्य अर्थ 'प्राणों का विस्तार' है। यौगिक साहित्य में इस विषय पर विस्तार से विवेचन किया गया है। प्राणायाम के पूरक, रेचक, कुम्भक आदि भेद से अनेक भेद हैं।[१]

यौगिक प्रक्रिया से प्राण का अवरोध प्राणायाम कहलाता है। महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में प्राणायाम का अर्थ श्वासन, प्रश्वास की मति विच्छेद का नाम प्राणायाम है।[२]

बौधायन, गौतम, वसिष्ठ धर्मसूत्रकारों एवं स्मृति कारों मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर ने 'प्राणायाम' को भी प्रायश्चित्त का साधन माना है। बौधायन का कथन है कि योग से तत्वज्ञान, धर्मज्ञान तथा सभी गुणों की प्राप्ति होती है। अतः योगाभ्यास में लगकर सदैव प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम से व्यक्ति केशों के अन्त तक और नाखूनों के अग्रभाग तक तपश्चरण से युक्त हो जाता है। प्राणवायु के निरोध से वायु उत्पन्न होती है और वायु से अग्नि उत्पन्न होती है, अग्नि से जल उत्पन्न होता है तब इन तीनों से सूक्ष्म शरीर या अन्तरात्मा शुद्ध हो जाती है।[३]

बौधायन ने प्राणायाम के प्रमाण के बारे में बताया है कि प्राणवायु को रोक कर व्याहतियों, ओंकार तथा 'शिरस्' के साथ गायत्री मन्त्र का तीन बार जप करे तो एक प्राणायाम होता है।[४]

---

१. योगदर्शन द्वितीय पाद।

२. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्।। गतिविच्छेदः प्राणायाम।। *(योगसूत्र द्वितीयपाद)*

३. आवर्तयेत्सदा युक्तः प्राणायामान् पुनः पुनः।
आकेशान्तान्नखाग्राच्च तपस्तप्यत उत्तमम्।।
निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निश्च जायते।
तापेनाऽऽपोऽधिजायन्ते ततोऽन्तश्शुद्ध्यते त्रिभिः।। *(बौ.ध.सू. ४/१/२५)*

४. सव्याहतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामस्स उच्यते।। *(वसि.ध.सू. २५/१२, बौ.ध.सू. ४/१/२८)*

बौधायन के अनुसार शुद्रा के साथ मैथुन अथवा उसका अन्न ग्रहण करने पर सात दिनों तक सात-सात प्राणायाम करने पर शुद्धि होती है।[१]

अभक्ष्य अन्न खाने या अपेय का सेवन करने, मधु, मांस, घृत, तेल, मसाला, नमक निम्न कोटि के अन्न तथा जिंन वस्तु का क्रय विक्रय निषिद्ध हे उनके बेचने वाला तथा इसी प्रकार के अन्य अपराधों के लिए बाहर दिनों तक बारह बारह प्राणायाम करने का विधान है।[२]

बौधायान के कथनानुसार जो व्यक्ति जनेनन्द्रिय पैरों, बाहों, मन, वाणी, कानों, त्वचा, नासिका या नेत्रों से पाप कर्म करते हैं। उन्हें शास्त्र विधि के अनुसार अथवा तीन प्राणायाम करने चाहिए।[३] पातक वर्ण का लोप करने वाले पतनीय और उपपातक को छोड़कर अन्य अपराधों के लिए छः मास तक प्रतिदिन बारह-बारह प्राणायाम करने का विधान है। पातक के लिए एक वर्ष तक प्रतिदिन बारह बारह प्राणायाम करने का विधान है।[४]

व्याहतियों एवं ओंकार के साथ सोलह प्राणायाम एक वर्ष तक करने पर ब्रह्महत्या के पाप से पवित्र हो जाता है।[५]

गौतम के अनुसार ब्रह्मचारी को पन्द्रह मात्रा का प्राणायाम करना चाहिए। घुटनों को बगल से सटाकर एक बार चुटकी बजाने के समय लगता है। वह एक मात्रा का काल होता है।[६]

वसिष्ठ ने प्राणायाम का महत्व बताते हुए कहा हे कि विधि पूर्वक निरालस्य होकर जो तीन प्राणायाम करे, दिन रात किये गये पाप को उसी

---

१. शूद्रान्नस्त्रीगमनभोजनेषु केवलेषु पृथक्पृथक् सप्ताहं सप्त सप्त प्राणायामान् धारयेत्।। (*वही* ४/१/६)

२. अभक्ष्याभोज्यापेयानाद्यप्राशनेषु तथाऽपण्यविक्रयेषु मधुमांसघृत तैलक्षारलवणावरान्नवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादशाह द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत्।। (*बौ.ध.सू* ४/१/७)

३. अथ वाचा चक्षुश्श्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यक्तिक्रमेषु त्रिभिः प्राणायामैश्शुद्ध्यति।। (*बौ.ध.सू* ४/१/५)

४. पातक पतनीयोपपातक वर्जेषु यच्चाऽन्यदप्येवंयुक्तमधर्ममासं द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत्।। (*वही* ४/११/८)

५. सव्याहृतिकास्सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुन्त्यहरहः कृताः। (*वही* ४/१/२९)

६. प्राणायामस्त्रयः पञ्चदशमात्राः (*गौतम ध.सू.* १/१/५० *मनु.* ११/२४८)

समय नष्ट कर देता है।[१] कर्म, मन, वाणी से जो पाप दिन में किया गया है पश्चिम सन्ध्या एवं प्राणायाम करने से पाप से मुक्त हो जाता है।[२] मन, कर्म, वचन से जो पाप रात्री में किये गये हो। उसे पूर्व सन्ध्या में खड़े होकर प्राणायाम करने से पाप से मुक्ति मिलती है।[३] बौधायन के अनुसार वसिष्ठ ने भी भ्रूणहत्या में सोलह प्राणायाम प्रायश्चित्त साधन को बतलाया है।[४]

मनु ने बौधायन, गौतम, बसिष्ठ का समर्थन करते हुए कहा है कि ब्रह्मघाती को भी सोलह प्राणायाम शुद्ध कर देते हैं।[५]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार उपपातकों और अन्य सभी पापों की जिनका विधान नहीं किया है शुद्धि के लिये सौ बार प्राणायाम करते शुद्धि मिल सकती है।[६]

पाराशर के कथनानुसार जो गृहस्थी जान बूझकर अपने वीर्य का स्खलन करता है तो वह एक हजार गायत्री मन्त्र का जप करे तथा तीन प्राणायाम करे।[७]

बौधायन ने प्राणायाम को सबसे उत्तम तप माना है। यही धर्म का श्रेष्ठ लक्षण है। सभी पापों को नष्ट करने के लिए यह प्राणायाम ही विशिष्ट रूप से पवित्र करने वाला है।[८]

उपयुर्क्त विवेचन से ज्ञात होता है कि प्राणायाम से व्यक्ति ब्रह्महत्या जैसे महापातक के पाप से लेकर उपपातक पतनीय आदि सभी पापों से मुक्त

---

१. प्राणायामान्धारयेत्त्रीन्यो यथाविध्यतन्द्रितः।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।। (*वसि.ध.सू.* २६/१)

२. कर्मणा मनसा वाचा यदह्न कृत मैनसम्।
आसीनः पश्चिमां सन्ध्या प्राणायामैर्व्यपोहति।। (*परा.* ३/४३ *ध.सू.* २६/२)

३. कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्र्या कृतमैनसम्।
उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यां तु प्राणायामैर्व्यपोहति।। (*वही* २६/३)

४. सव्याहतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुन्त्यहरहः कृताः।। (*वही* २६/४)

५. मनु. ११/२४८

६. प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापनुत्तये।
उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि।। (*याज्ञ.* ३/३०५)

७. गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्खलनं यदि।
सहस्रन्तु जपेद्देव्याः प्राणायामस्त्रिभिः सह।। (*पारा.* १२/६)

८. एतदाघं तपश्श्रेष्ठमेतद्धर्मस्य लक्षणम्।
सर्वदोषोपघातार्थमेतदेव विशिष्यते एतदेव विशिष्यत इति।। (*बौ.ध.सू.* ४/२/३०)

हो सकता है। क्योंकि जब व्यक्ति प्राणवायु को रोककर व्याहृतियों एवं ओंकार के साथ मन से गायत्री आदि मंत्रों का जप करेगा तो उसकी अन्तरात्मा शुद्ध हो जायगी। कर्म भी अच्छा ही करेगा और वाणी से भी किसी को बुरा नहीं कहेगा। कर्म से अर्थ बह्महत्या आदि से लिया गया है।

मन सभी इन्द्रियों का स्वामी कहा गया है तथा प्राण को मन का स्वामी कहा गया है। प्राण के नियन्त्रित होने से मन भी नियन्त्रित एवं संयमित होता है। दुष्कर्म जन्य जो दुस्संस्कार मन में दृढ़ हो गये होते हैं प्राणायाम के अनुष्ठान से वे सब क्षीण हो जाते हैं एवं व्यक्ति शुद्धान्तःकरण हो जाता है।

प्राणायाम चितवृति को शान्त करने में श्रेष्ठ साधन है। इसके अनुष्ठान से दूषित वृत्तियां शान्त होकर चित निर्भय होता है। इस प्रकार प्राणायाम अन्तःकरण के पापकर्म जन्य दुस्संस्कारों को दूर करने में निश्चित रूप से सहायक है।

**(ग) तप :**

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार 'तप' नामक प्रायश्चित्त साधन का वर्णन किया गया है। तप का सामान्य अर्थ ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, तीन सवनो में स्नान, स्नान के बाद निचोड़े गये वस्त्र पहनना, नग्न भूमि पर सोना, भोजन का त्याग आदि तप है।[१]

अंहिसा, चोरी न करना, गुरू सेवा, केवल एक वस्त्र धारण करने को भी तप माना गया है।

योगदर्शन में तप की परिभाषा करते हुए लिखा है सुख दुख, मान अपमान, ग्रीष्म शीत इत्यादि द्वन्दो का सहन तप कहलाता है।

कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों का अनुष्ठान भी तप कहलाता है।

वेदों के अनुसार तप स्वर्ग ले जाने वाला एवं अनाक्रमणीय माना गया है। तप को यज्ञ से उत्तम माना है। बौधायन का कथन है ब्रह्मचर्य, सत्यवचन, प्रतिदिन तीन बार (प्रातः मध्य एवं सायं) स्नान, गीले वस्त्र का धारण (जब तक शरीर पर ही वस्त्र सूख न जाय) अहिंसा, अस्तैन्य (किसी को उसकी सम्पति से वंचित न करना) एवं गुरूशुश्रूषा एवं उपवास तप में सम्मिलित है।[२]

---

१. बह्मचर्य सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताऽधाशयिताऽनाशक इत तपांसि।।
(*गौ.ध.सू.* ३/१/१५)

२. अहिंसा सत्यमस्तैन्यं सवनेषूदकोपर्स्शनं गुरूशुश्रूषा ब्रह्मचर्यमधश्शयनमेकवस्त्रताऽनाशक इति तपांसि।।
(*बौ.ध.सू.* ३/१०/१४)

गौतम ने अहिंसा, अस्तैन्य, गुरूशुश्रूषा इन को छोड़कर बौधायन के अनुसार तप बताये हैं।[१]

बौधायन, गौतम ने पाप के स्वरूप के अनुसार तप की निम्न विधियाँ बतायी है एक वर्ष, छः मास, चार मास, दो मास, एक मास, चौबीस दिन, बारह दिन, छः दिन, तीन दिन, एक दिन एवं रात।[२] बौधायन, गौतम दोनों सूत्रकारों का कथन है कि किसी विशेष तप का निर्देश न किया गया हो तो इन्हीं तपों को करना चाहिए। बड़े पाप होने पर बड़े तप और छोटे पाप वाले कर्मों के लिए तप करने चाहिए।[३]

मनु के कथनानुसार देवों तथा मनुष्यो के सुख की जड़ तप है, वह सुख तप से स्थिर रहता है और उस सुख का अन्तिम लक्ष्य तप ही है ऐसा महार्षियों का कथन है।[४] ब्राह्मण का तप ज्ञान (ब्रह्मचर्य वेदान्त ज्ञान) क्षत्रिय का तप प्रजा तथा आर्त का रक्षण वैश्य का तप वार्ता (खेती, व्यापार और पशुपालनादि) और शूद्र का तप ब्राह्मण की सेवा करना है।[५]

मनु ने तप के महत्व के बारे में कहा है कि सम्यक् रूप से तप करके पापी महापातक एवं दुष्कर्मों के अपराध से मुक्त हो सकता है क्योंकि (काय, वचन और मन से संयम रखने वाले तथा फल मूल एवं वायु का भक्षण करने वाले महर्षि लोग तप से चराचर सहित त्रैलोक्य को दखते हैं[६] औषध, निरोगता, विद्या देवों की (स्वर्ग आदि) अनेक लोकों में स्थिति ये सब तप से ही प्राप्त होते हैं। अतः तप की इनकी प्राप्ति का कारण है।[७] इसी कारण से

---

१. ब्रह्मचर्य सत्यवचनं सवनेषदूकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताऽधःशयिताऽनाशकइतितपांसि।।
(*गौ.ध. सू.* ३/१/१५)

२. संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहष्षऽहस्त्रऽहोरात्रमकाह इति कालाः।। (*बौ.ध. सू.* ३/१०/१६ *गौ.ध. सू.* ३/१/१७)

३. एतान्यनादेशे क्रियेरन्नेनस्सु गुरूष गुरूणि लघुषु लघूनि।।
(*बौ.ध. सू.* ३/१०/१७ *गौ.ध. सू.* ३/१/१८)

४. तपोमूलमिंद सर्वे दैवमानुषकं सुखम्।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोन्ऽंत वेददार्शिभिः।। (*मनु.* ११/२३४)

५. ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्।। (*मनु.* ११/२३५)

६. ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्।। (*मनु.* ११/२३६)

७. औषधान्यगदो विद्या देवी च विविधा स्थितिः।
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम्।। (*मनु.* ११/२३७)

से महापातकी तथा अन्य दुष्कर्मी अच्छी तरह किये गये तप के द्वारा ही पाप से छूट जाते है।[१] कीट, सर्प, पतङ्ग पशु, पक्षी तथा सम्पूर्ण चराचर जीव तप के बल से ही स्वर्ग को जातें हैं।[२]

मनु के अनुसार जो व्यक्ति मन, वचन तथा काय से जो कुछ पाप करते हैं, उन सब पापों को वे तपस्वी लोग तप से ही भस्म कर देते हैं।[३]

आपस्तम्ब, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, पाराशर ने 'तप' नामक प्रायश्चित्त साधन के विषय में पृथक रूप से वर्णन नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञान होता है कि जब व्यक्ति ब्रह्मचर्य, सत्यवचन, अहिंसा, अस्तैन्य गुरू की सेवा जैसे नियमों का पालन करेगा तो वह मनुष्य अपने आप ही किसी भी दुष्कर्म करने के बाद उपर्युक्त नियम का पालन करने से पाप से मुक्त हो सकता है। जो व्यक्ति सदैव सत्य बोलेगा वह अगर किसी को वाणी से कुछ अभद्र कहता है तो वह उस पाप से सत्य भाषण मुक्त हो जाता है। कीट पतंङ्ग - पक्षी अनेक प्रकार की जीव की हत्या करने पर अहिंसा नामक तप करने से पाप से मुक्त हो जाता है क्योंकि वह भविष्य में किसी जीव की हत्या नहीं करता उससे वह व्यक्ति तथा जीवन दोनों की रक्षा होती है।

गुरु की सेवा जैसा महान तप करने से तो मनुष्य अपने आपसे ही धन्य हो जाता है क्योंकि गुरु का पद शास्त्रों में सबसे उच्च माना है और गुरु देवतुल्य होता है। इस प्रकार तपसाधनों के अनुष्ठान से व्यक्ति मनसा वाचा कर्मणा पवित्र होकर पाप मुक्त हो जाता है।

**(घ) होम :**

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में होम को भी प्रायश्चित्त साधन माना है। जिसका वर्णन इस प्रकार है। होम का सामान्य अर्थ स्वार्थ त्यागपूर्वक देवताओं के निमित्त अग्नि में द्रव्य होम या यज्ञ कहलाता है।

---

१. महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्विषात्ततः।। (*वही* ११/२३९)

२. कीटश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयासि च।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात्।। (*मनु.* ११/२४०)

३. यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः।
तत्सर्व निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः।। (*मनु.* ११/२४१)

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ सभी धर्मसूत्रकारों ने अपवित्र को पवित्र करने के लिये एक साधन होम को भी माना है। होम कर्ता को होम करने के लिए कुछ नियमों का पालन करते हुए होम करना चाहिए। आपस्तम्ब के कथनानुसार जो अन्न, गृहस्थ और उसकी पत्नी को खाना होता है उसका होम स्वर्ग का सुख तथा समृद्धि प्रदान करने के लिए किया जाता है।[१] होम तथा बलि कर्मों के लिए प्रयुक्त वैदिक मन्त्रों को सीखते समय गृहस्थ बारह दिन तक भूमि शयन करे, मैथुन न करे, मसालेदार तथा नमकीन भोजन न करे।[२]

आपस्तम्ब के कथनानुसार होम के समय (जो भोजन कराने के ठीक पहले किया जाता है) **उद्रिघ्रयतामग्नो च क्रियताम्** मन्त्र से ब्राह्मण को अभिमंत्रित किया जाता है। (मन्त्र का अर्थ इस सिद्ध अन्न से अंश निकालने को तथा अग्नि में हवन करने को आप लोग अनुमति प्रदान करें।) बौधायन ने होम मन्त्रों का भी वर्णन किया है **'प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्धयन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम्'** (मेरे प्राण, अपान व्यान, समान पवित्र होवे) **वाङ्मनश्चचक्षुश्लोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुध्याकूतिसङ्कल्पा में शुद्धयन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम् स्वाहा शिरः पाणिपादपार्श्वपृष्ठोदर-जङ्घशिश्नोपस्थपायवो में शुध्यन्तां'' त्वक्चर्ममांसरूधिरमेदोस्थिमज्जा में शद्धयन्तां' 'शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम्.... पृथिव्याप्तेजोवाय्वाकाश में शुध्यन्ताम्.... 'अन्नमयप्राणमयमनोवयविज्ञानमयानन्दमय मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम् स्वाहा।'** इन सात अनुवाकों से प्रत्येक अनुवाक के उच्चारण के साथ हवन करते हुए सात आहुति करे।[३]

गणहोम का वर्णन करते हुए बौधायन ने गणहोम का वर्णन इस प्रकार किया है । क्षापवित्र (क्षा से युक्त पवित्र मन्त्र, क्षां विश्वेभिः आदि तैत्तिरीय ब्राह्मण) सहस्त्रशीर्षा (अर्थात् पुरूषसूक्त), मृगा (अग्नेर्मन्वे आदि अनुवाक), अंहोमुच नाम के दो गण (या **वायिन्द्रावरूणा यतव्या** आदि चार मन्त्र तथा **यो वामिन्द्रावरूणावग्नौ स्त्रामस्तं वामतेनाऽवयजे** आदि आठ मन्त्र),

---

१. गृहमेधिनो यदशनीयं तस्य होमा बलयश्चस्वर्गपुष्टिसंयुक्ता।। (*आप.ध.सू.* २/२/१२)

२. तेषां मन्त्राणमपुयोगे द्वादशाहमधश्शय्या ब्रह्मचर्य क्षारलवणवर्जनं च।
(*आप.ध.सू.* २/२/१३)

३. प्राणापानव्यानोदानसमाना में शुद्धयन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासॅ स्वाहा। वाङ् मनः शिरः पाणि त्वक् चर्म शब्दस्पर्श पृथिवी अन्नमयप्राणमय इत्येतैस्सप्तभिरनुवाकैः।
(*बौ.ध.सू.* ३/८/१८)

यहाँ तक कि पूर्वजन्म में भी अज्ञानवश किये गये पापों का जितना संचय होता है उन सबसे वह मुक्त हो जाता है।[१]

बौधायन के अनुसार गणहोम करने वाला व्यक्ति सात दिनों के अन्त में ब्राह्मणों को भली भाँति घृत से युक्त पायस (खीर) का भोजन कराकर तथा भोजन करने वालों ब्राह्मणों को गाय, भूमि, तिल और स्वर्ण दान देकर ब्राह्मण पाप रूपी ईन्धन के जल या भस्म हो जाने से पवित्र हो जाता है वह मन की इच्छाओं की प्राप्ति के योग्य हो जाता है तथा अग्नि का आधान आदि याज्ञिक कर्मों के लिए भी योग्य बन जाता है।[२] जो व्यक्ति अत्यंत लोभ से या प्रमाद से दूसरे व्यक्ति के लिए इस "गणहोम" क्रिया को करता है। पाप से आविष्ट होकर विषभक्षण करने वाले व्यक्ति के समान कष्ट पाता है।[३] किन्तु जो ब्राह्मण अपने आचार्य के लिए, पिता के लिए, माता के लिए, और स्वयं अपने लिए इस क्रिया को करता है वह सूर्य के समान तेजयुक्त हो प्रकाशित होता है।[४] ब्राह्मण व्यक्ति वैदिक मन्त्रों के जप एवं होम से सभी विपत्तियों से छुटकारा पा सकता है। क्षत्रिय अपने बाहुबल से अपनी आपत्ति को पार करे। वैश्य और शूद्र धन देकर अपनी विपत्ति एवं पाप से छुटकारा पा सकता है।[५]

याज्ञवल्क्य ने इस प्रायश्चित्त साधन में तिल से होम करने को कहा है।[६] गौतम एवं पराशर ने प्रायश्चित्त साधन होम का वर्णन पृथक रूप से नहीं किया है।

---

१. वृद्धत्वे यौवने बाल्ये यः कृतः पापञ्चयः।
पूर्वजन्मसु वाऽज्ञानात्तस्मादति विमुच्यते।। *(बौ.ध.सू. ४/७/८)*

२. भोजयित्वा द्विजानन्ते पायसेन सुसर्पिषा।
गोभूमितिलहेमानि भुक्तवद्भ्यः प्रदाय च।।
विप्रो भवति पूतात्मा निर्दग्धवृजिनेन्धनः।
काम्यानां कर्मणां योग्यः तथाऽऽधानादिकर्मणाम्।। *(बौ.ध.सू. ४/७/९-१०)*

३. अतिलोभात्प्रमादाद्वा यः करोति क्रियामिमाम्।
अन्यस्य सोंऽहसाऽऽविष्टो गरगीरिव सीदति।। *(वही ४/८/१)*

४. आचार्यस्य पितुर्मातुरातमनश्च क्रियामिमाम्।
कुर्वन्भात्यर्कवद्विप्रस्सा कार्येषामतः क्रिया।। *(वही ४/८/२)*

५. क्षत्रिय बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः।
धनेन वैश्यशूद्रौं तु जपैर्होमैर्द्विजोत्तमः।। *(वसि.धू.सू. २६/१६ मनु. ११/३४)*

६. यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः।
तत्र तंत्र तिलैर्होमों गायत्र्या वाचनं तथा।। *(याज्ञ. ३/३०९)*

उपर्युक्त सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के विवेचन से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण, वर्णों में उत्तम होम करने से ही सभी पाप से मुक्त हो जाता है क्योंकि हवन करते समय व्यक्ति इस तरह अग्नि से तप्त व्यक्ति स्वयं ही शुद्ध हो जाता है। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों में अलग अलग हवन सामग्री से हवन करने मात्र से ब्रह्म हत्या जैसे महापातक से छुटकारा पाया जाता है। जबकि सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने ब्रह्महत्या जैसे पाप के लिए कठिन से कठिन प्रायश्चित्त की व्यवस्था की है। यज्ञकर्म से व्यक्ति का चित शान्त तथा एकाग्र होता है। सृष्टि के सभी देवताओं, शक्तियों का तर्पण होता है।

**(ङ) जप :**

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में जप को भी प्रायश्चित्त साधन स्वीकार किया है। जप का सामान्य अर्थ जिह्वा ओष्ठ आदि व्यापार को त्यागकर शब्दार्थ का चिंतन पूर्वक मन में जो किसी मंत्र का उच्चारण किया जाता है वह जप कहलाता है। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार जप की विधि, प्रकार, महत्व आदि का वर्णन इस प्रकार है–

**प्रकार** :—गौतम, बौधायन धर्मसूत्र, वसिष्ठ ने निम्न वैदिक रचनाओं को शुचिकर (पवित्र करने वाली) कहा है– उपनिषद, वेदान्त, संहितायें (सभी वेदों की, किन्तु पदपाठ या क्रमपाठ को छोड़कर, यजुर्वेद का मधुसूक्त, एवं रोहिणी नामक दो साम, बृहत्साम एवं रथन्तर, पुरूषसंगति साम, महानाम्नी ऋचा, महावैराज साम, ज्येष्ठ सामों में कोई एक वहिष्पवमान साम, कूष्माण्ड, पावमानी, एवं सावित्री। जप सम्बन्धी मौलिक भावना अत्यंत आध्यात्मिकतावर्धक थी।[१]

**महत्व** :—जप उच्चभूमि पर परमात्मा का ध्यान है और उसकी एकता का प्रयत्न है। पवित्र वचनों के पाठ का अभ्यास परमात्मा की उपस्थिति एवं तत्सम्बन्धी विचार में आत्मा की व्यवस्था या नियमन है। जप के लिये तीन बातें आवश्यक है; हृदय (मन) की शुचित; असंगता (निष्कायता या मोहरहितता) एवं परमात्मा में आत्म समर्पण। मनु ने व्यवस्था दी है कि बिना जाने किये गये पापों का मार्जन प्रार्थना के रूप में वैदिक वचनों के जप करने से मनु,

---

१. उपनिषदों वेदादयो वेदान्ताः सर्वच्छन्दस्सु संहिता मधून्यधमर्षणमथर्वशिरो रूद्राः पुरूषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी वृहद्रथन्तरे पुरूषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीत्य[२] ज्येष्ठसाम्नामन्यतमं बहिष्पवमानं कूश्माण्डयः पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि।।
(*बौ.ध.सू.* ३/१०) (*गौतम ध.सू.* ३/१)

वसिष्ठ एवं अंगिरा आदि का कथन है कि जिस प्रकार अधिक वेगवती अग्नि हरीघास को भी जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार वेदाध्ययन की अग्नि दुष्कर्मों से प्राप्त अपराध को जला देती है। वसिष्ठ ने सावधान किया है कि वेद की सामर्थ्य का सहारा लेकर पापकर्म का लाभ नहीं उठाना चाहिए केवल अज्ञान एवं प्रमाद से किये गये दुष्कर्म ही वेदाध्ययन से नष्ट होते हैं न कि अन्य दुष्कर्म।[१] ऐसी व्यवस्था से कुछ स्मृतियाँ भी सहमत है। ऋग्वेद के मन्त्रों को इतनी रहस्यात्मक महत्ता प्रदान की गयी है कि शौनक के ऋग्विधान (जो मनुस्मृति के उपरान्त प्रणीत हुआ) ने बहुत से रोगो, पापों एवं शुत्र विजय के लिए कतिपय ऋङमन्त्रों के जप की व्यवस्था बतलायी है अभीष्ट उद्देश्य के प्रायश्चित्त के लिए सामो का जप कम से कम दस से लेकर सौ बार करना चाहिए। गौतम एवं बौधायन ने जप के समय भोजन की व्यवस्था इस प्रकार दी है केवल दूध पर रहना, केवल शाकभाजी खाना, एक मुट्ठी जौ का सत्तु या लपसी खाना, केवल सोना खाना (घृत से कुछ सोना घिसकर खाना) केवल घृत पीना आदि।[२] गौतम एवं बौधायन धर्म सूत्र में कहा है कि सभी पर्वत सदी नदियाँ, पवित्र सरोवर, तीर्थ, ऋषियों के आश्रम, गौशालाएं, देवमन्दिर पाप के नाशक है।[३]

सूत्रकाल में या उसके उपरान्त केवल तीन उच्च वर्णों का पुरूष ही वेदाध्ययन कर सकता है अतः शूद्रो द्वारापाप-मोचन के लिए वैदिक वचनों का जप सम्भव नहीं था। इसलिए मिताक्षरा का कथन है कि यद्यपि शूद्र को गायत्री जप आदि अन्य वैदिक मन्त्रों के जप का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ।[४] तथापि शूद्र एवं स्त्रियां देवता के नाम को सम्प्रदान (चतुर्थी) कारक में रखकर उसका मानस जप कर सकते हैं। शूद्र केवल 'नमो नमः' कह सकता है 'ओम्'

---

१. न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरतिर्भवेत्। अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्म नेतरम।।
(*वसिष्ठ* २७/४)

२. पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति मेघ्यानि ।।१३।।
(*गौतम ध.सू. तृतीयप्रश्न, प्रथमोऽयायः*) (*बोघायन धू.सू.* दशमोऽयायः बारहवां)

३. सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्त्रवन्त्यः पुणया हदास्तीर्थान्यृषिनिवासा गोष्ठपरिस्कन्धा इति देशाः।।१४।। (*गौतम ध.सू.* ३/१,) (*बोघायन धू.सू.* १०/१३)

४. चान्द्रायणं चरेत्सर्वानवकृष्टान्निर्हतय तु।
शूद्रोऽधिकारहीनोऽपि कालेनानेन शुद्धयति।।२६२।। (*याज्ञ.* ३/२६२)

आदि नहीं।[१] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के मत से आम यह रहस्यात्मक शब्द स्वर्ग द्वार है और प्रत्येक वैदिक वचन के जप के पूर्व उसका उच्चारण होना चाहिए।[२] बौधायन ध.सू. के अनुसार मधुच्छन्दा नाम के ऋषि द्वारा दृष्ट सूत्रों के साथ 'नमस्ते रूद्र' आदि ग्यारह, अनुवाको, ओंकार से युक्त गायत्री मन्त्रों, तथा सातव्याहतियों का जप करने से पाप नष्ट हो जाते हैं।[३]

**महत्त्वः**—वसिष्ठ ने जप के महत्त्व बारे में लिखा है जप का सम्पादन वैदिक रीति से सम्पन्न दशपूर्ण मास आदि धार्मिक अनुष्ठानों से दस गुणा अधिक लाभकारी होता है। उपांशु विधि से किया जाने वाला जप यज्ञों से सौ गुणा तथा मानस सहस्र गुणा श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मण जप से परमोच्च पद प्राप्त कर सकता है।[४]

ओंकार जप का फल समस्त आधिभौतिक आधिदैविक एवम् आध्यात्मिक कष्टों को दूर करने वाला होता है।

### (च) दान :

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार दान का सामान्य अर्थ निस्वार्थ भाव से त्याग दान कहलाता है। अर्थों का उचित पात्र में श्रद्धापूर्वक दिया जाना दान कहलाता है। प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार प्रायश्चित्त साधन एवं दान का वर्णन इस प्रकार किया जा रहा है।[५] गौतम धर्मसूत्र के अनुसार दान देने की विधि इस प्रकार है—धर्मानुसार दिये जाने वाले दान में पहले हाथ पर जल लेकर दान किया जाता है। बौधायन ध.सू. ने व्यवस्था दी है कि जो दान अंगूठे से स्पर्श किये बिना दिया जाता है और जो दान अंगूठे से स्पर्श

---

१. अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः ।।६६।। (*गौ.ध.सू.* १०/६६-६७)

२. ओङ्कारस्स्वर्गद्वार तस्माद्ब्रह्माऽध्येष्यमाण एतदादि प्रतिद्येत।। (*आप. ध.सू.* १/४/१३/६)

३. समाधुच्छन्दसा रूद्रा गायत्री प्रणवान्विता।
सप्तव्याहतयश्चैव जाप्याः पापविनाशनाः ।।१।। (*बौ.ध.सू.* ४/६/१)

४. (क) आरम्भयज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्ठों दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतग्नेगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।।९।। (*वसिष्ठ ध.सू.* २६/९)
(ख) ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।१०।। (*वही* २६/१०)
(ग) जाप्येनैव तु संसिध्येब्राह्मणों नाम संशमः।
कुर्यादन्यं न वा कुर्यान्मैत्रों ब्राह्मण उच्यते।।११।। (*वसिष्ठ ध.सू.* २६/११)

५. ददातिषु चैवं धर्म्येषु ।।१७।। (*गौ.ध.सू.* १/५/१७)

के बिना ग्रहण किया जाता है और जो आचमन खड़े होकर किया जाता है उससे कर्त्ता को कोई फल प्राप्त नहीं होता है वह लाभान्वित नहीं होता है।[१] दान में आरम्भ और अन्त में सर्वत्र जलदान करना चाहिए।[२]

**दान की वस्तुएंः**—याज्ञवल्क्य के मत से दान में दी जाने वाली वस्तुएँ इस प्रकार हैः—"गाय, भूमि, तिल, सोना आदि पात्र व्यक्ति को विधिपूर्वक अर्चना के साथ देना चाहिए। अपने सम्पूर्ण फल की इच्छा करने वाले विद्वान को अपात्र को अल्प भी दान नहीं देना चाहिए।[३] गौतम के अनुसार सोना, गाय, वस्त्र, अन्न, तिल, घी और अश्व इत्यादि दान में दिये जाते हैं।[४]

**दान के पात्रः**—याज्ञवल्क्य के अनुसार जो व्यक्ति विद्यासम्पन्न और तपस्वी न हो उसे दान नहीं लेना चाहिए। यदि ऐस व्यक्ति दान लेता है तो वह अपने और दाता को भी नरक में डालता है। प्रतिदिन (गौ आदि) पात्र को दान देना चाहिए। किसी अवसर पर विशेष रूप से दान देना चाहिए। मांगने पर भी श्रद्धा के साथ यथाशक्ति दान देना चाहिए।[५] बौधायन ध.सू. के अनुसार सदाचारी ब्राह्मण वेदों के ज्ञान और अनुष्ठान से युक्त श्रौत्रिय, वेद विद्या में पुरूष यदि यज्ञवेदी से भिन्न स्थान पर गुरु की दक्षिणार्थ देने के लिए, विवाह के लिए, औषध के लिए, यात्रा के लिए या विश्वजित यज्ञ करने पर धन की याचना करे, तो उन्हें यथा शक्ति धन दान में देना चाहिए। मनु भी बौधायन के कथन से सहमत हैं।[६]

गौतम का कथन है कि सोना, गौ, परिधान, घोड़ा, भूमि, तिल, घृत एवम् अन्न ऐसे दान है जो पाप का क्षय करते हैं। विकल्प से इनका उपयोग

---

१. यञ्च दत्तमनङ्गुष्ठ यच्चैव प्रतिग्रहयते।
आचामति च यस्तिष्ठन् न स समृध्यत इति ॥६॥ (*बो.ध.सू.*)

२. आद्यन्तयोरपां प्रदानं सर्वत्र।।७।। (*बौ.ध.सू. १/५/६-७*)

३. गोभूतिलाहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता।।२०।। (*याज्ञ. १/२०*)

४. हिरण्यं गौर्वासोऽश्वों भूमिस्तिला घृतमन्नमिति देयानीति।।१६।। (*गौतम ३/१/१६*)

५. दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः।
याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतं स्वशक्तितः।।२०३।। (*याज्ञ. १/२०३*)

६. सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम्।
गुर्वर्थे पितृमात्रर्थे स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः।।१।। (*मनु. ११/१*)

करना चाहिए। यदि कोई स्पष्ट उल्लेख न हो।[१] वसिष्ठ ने दान के विषय में कई वचन उद्घृत किये हैं। जिनमें एक ऐसा है—"जीविकावृत्ति को लेकर अर्थात वृत्ति या भरण पोषण से परेशान होकर जब मनुष्य कोई पाप कर बैठता है" तो वह गोचर्म के बराबर भूमि भी देकर पवित्र हो सकता है।[२] यही बात विष्णु ने भी कही है। संवर्त में आया है कि सोने, गाय, भूमि, का दान इस जन्म एवं अन्य जन्मों के किये गये पापों को काट देता है।[३] मेघातिथि ने कहा है कि हिंसा करने से जो पाप होते हैं उनके प्रायश्चित्तों के लिए व्यवस्थित उपायों में दान प्रमुख हैं।[४]

याज्ञवल्क्य के अनुसार जिस किसी प्रकार हो दूध देने वाली या अवन्ध्या, रोगहीन और दुर्बल गाय का दान करने वाला व्यक्ति स्वर्ग में पूजा जाता है। भूमि, दीपक, अन्न, वस्त्र, जल, तिल, घी परदेशी को आश्रयस्थान, कन्या, सोना और भार ढोने वाले बैल का दान देकर स्वर्ग में सम्माननीय स्थान पाता है। घर और धान्य का दान, अभयदान, जूता, छाता, कुकुमचन्दन, आदि लेपन, रथ इत्यादि सवारी वृक्ष अभीष्ट वस्तु तथा शय्या का दान देकर दाता अत्यन्त सुखी होता है।

याज्ञवल्क्य के मत से सब धर्मों के ज्ञान से युक्त होने के कारण वेद का दान सभी दानों से बढ़कर होता है। इसका दान करने वाला ब्रह्मलोक में अचल होकर सतत् निवास करता है।[५]

'दान' नामक 'प्रायश्चित्त' पाप का क्षय करने वाला होता है। जीविकावृत्ति के लिये या वृत्ति कर भरण पोषण से परेशान व्यक्ति जब कोई पाप कर बैठता है तो वह भूमि आदि के दान से पवित्र हो जाता है क्योंकि जब मनुष्य परिश्रम

---

१. हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिला घृतमन्नमिति देयानि।
एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्। (*गौ.ध.सू.* ११/१६ *एवं* १८)

२. यत्किंचित्कुरूते पापं पुरूषों वृत्तिकर्शितः।
अपि गौचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति।। (*वसिष्ठ* २९/१६)

३. सुवर्णदानं गोदानं भूमिदांन तथैव च।
नाशयन्त्याशु पापनि अन्यजन्मकृतान्यपि।। (*संवर्त* २०४, *प्राय. तत्व पृ.* ४८३)

४. हिंसायां दानमेव मुख्यमित्युक्तं भविष्ये। हिंसात्मकानां सर्वेषां कीर्तितानां मनीषिभिः।
प्रायश्चित्तकदम्बानां दानं प्रथममुच्यते। (*प्राय. प्रकरण*)

५. सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम्।।२१२।। (*याज्ञ.* १/२१२)

के किसी भी वस्तु, भूमि, रत्न आदि की प्राप्ति करता है तो उसका मन प्रसन्न होता है और इसके बाद यदि वह किसी भी प्रकार का पाप स्तेय, हिंसा आदि दुष्कर्म करता है तो उसे उस दुष्कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। उस फल से छुटकारा पाने के लिए वह पापी व्यक्ति रत्न, भूमि, गाय, अन्न घृत आदि को कर्म के अनुसार दान करके अपने पाप से मुक्त हो सकता है क्योंकि वह दान की गई वस्तु उस व्यक्ति के पास नहीं रहती। भविष्य में वह किसी भी प्रकार के पाप करने से कतराता है। स्वपरिश्रमोपार्जित धन को दान करने से व्यक्ति का चित्त स्वच्छ एवं शांत एवं सत्वगुण सम्पन्न होता है। दान जन्य सेवा से दूसरी की आत्मा प्रसन्न होती है। भागवत में प्राणी मात्र की सेवा को ही परमात्मा की सेवा एवं श्रेष्ठ पूजा कहा है। इस प्रकार दान चित्तशुद्धि या पापों की क्षीण करने में साहयक है। 'दान' तभी दुष्कर्म के फल से मुक्त करता है जब दान कर्त्ता व दान को प्राप्त करने वाले दोनों ही व्यक्ति उचित हो। दान देने वाले को श्रद्धापूर्वक दान करना चाहिए।

**(छ) व्रत का सामान्य परिचय :**

व्रत का सामान्य अर्थ 'नियम' है।

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार व्रतों को प्रायश्चित्त का साधन माना गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार पति-पत्नी के लिए पर्व के दिन व्रत की व्यवस्था है और कथन है कि यदि बिना खाये न रह सकें तो दिन में केवल एक बार व्रत के योग्य पदार्थ ग्रहण कर सकते हैं।[१]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार व्रत करने का वास्तविक अर्थ अन्न जल का पूर्ण त्याग, किन्तु साधारणतः इसका अर्थ थोड़ी मात्रा में भोजन करना है। गौतम ने एक स्थान पर व्रत को पाप मोचन की विधियों में रखा है।[२]

बौधायन, वसिष्ठ भी दोनों सूत्रकारों के कथन से सहमत है।

मनु का कथन है कि एक दिन का व्रत, वेदव्यवस्थित कृत्यों को छोड़ देने एवं स्नातक के विशिष्ट कर्मों को प्रमाद से छोड़ देने पर प्रायश्चित्त रूप में किया है।[३]

---

१. पर्वसु योभयोरूपवासः ।।४।।
औपवस्तमेव कालान्तरे भोजनम्।।५।। (*आपस्तम्ब ध.सू. २/१/४-५*)

२. तस्य निष्क्रयणनि जपस्तपो होम उपवास दानम्।। (*गौतम ध.सू. ३/१/११*)

३. वेदादितानां नित्यानां कर्मणां समातिक्रमे।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्।। (*मनु. ११/२०३*)

अन्य स्मृतिकार याज्ञवल्क्य एवं पराशर भी मनु के कथन से सहमत हैं।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार प्रायश्चित्त विधान में विहित व्रतों का वर्णन विस्तार पूर्वक आगे प्रस्तुत है।

**१. चान्द्रायण व्रत :–**

बौधायन एवं गौतम ने चन्द्रायण के बारे में कहा है–चन्द्रमा के बढ़ने घटने के अनुसार भोजन की मात्रा बढ़ा घटाकर जो व्रत किया जाता है वह चन्द्रायण व्रत कहलाता है। यदि शुक्ल पक्ष में एक एक ग्रास आहार बढ़ता जाय तब कृष्ण पक्ष में एक एक ग्रास आहार कम करता जाए और दोनों पक्षों में दो दिन उपवास करे तो वह "चन्द्रायण व्रत" होता है (१) चन्द्रायाण व्रत दो प्रकार किया जाता है।

**(क) पिपीलिका मध्य चान्द्रायण :–**

बौधायन एवं गौतम के अनुसार पिपीलिका मध्य चान्द्रायण कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ किया जाता है। पौर्णमासी के दिन पन्द्रह ग्रास भोजन करके कृष्ण पक्ष की प्रथमा तिथि में एक-एक ग्रास कम करता जाए।[२] इस प्रकार अमावस्या तक एक-एक ग्रास कम करता जाए और अमावस्या को उपवास करें। शुक्ल पक्ष की प्रथमा से एक एक ग्रास बढ़ता जाए और पूर्णिमा को प्रन्द्रह ग्रास भोजन करे।[३] पिलीलिका मध्य चान्द्रायण इस प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रथमा से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा को पूर्ण होता है। प्रारम्भ में भोजन की मात्रा कम होती है। अमावस्या को उपवास तथा फिर बढ़ती हुई पूर्णिमा को पूरे पन्द्रह ग्रास भोजन होता है। जिस प्रकार चीटी बीच में पतली होती है उसी प्रकार इस व्रत के मध्य में अमावस्या के दिन एक भी ग्रास भोजन नहीं होता। अतः इस व्रत को पिपीलिका मध्य चान्द्रायण कहते हैं।[४]

---

१. एकवृद्धया सिते पिण्डे एकहान्याऽसिते ततः।
पक्ष्योरूपवासौ द्वौ तद्धि चांद्रायणं स्मृतम्। *(गौ.ध.सू. ३/९/१-२, बौ.ध.सू. ४/५/१७)*

२. यथाकथंचित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम्।
मासेनैकेन भुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम्।। *(गौ.ध.सू. ३/९/१२, बौ.ध.सू. ३/८/८/२४)*

३. अमावास्यायामुपोष्यैकोपचयेन पूर्णपक्षम्।। *(गौ.ध.सू. ३/९/१३, बौ.ध.सू. ३/८/८/२५-२९)*

४. तदेतच्चान्द्रायणं पिपीलिकामध्यम्। *(बौ.ध.सू. ३/८/८/३४)*

**(ख) यव मध्य चान्द्रायणः–**

यव मध्य चान्द्रायण शुक्ल पक्ष की प्रथमा को एक ग्रास भोजन करके प्रारम्भ किया जाता है। प्रतिदिन एक एक ग्रास बढ़ाकर पूर्णिमा को पूरे प्रन्द्रह ग्रास भोजन किया जाता है। इसके बाद कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को एक ग्रास कम अर्थात् चादह ग्रास भोजन ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार प्रतिदिन एक एक ग्रास कम करते हुए अमावस्या को उपवास रखा जाता है। अमावस्या के दिन ही इस व्रत की समाप्ति होती है।[१]

यह व्रत अमावस्या से आरम्भ होकर अमावस्या को ही समाप्त होता है। जिस प्रकार यव का मध्य भाग मोटा होता है। उसी प्रकार इस व्रत के मध्य में पूर्णिमा को अधिकतम ग्रास का आहार ग्रहण किया जाता है। इसलिए इसका नाम यव मध्य चान्द्रायण है। बौधायन ने चन्द्रायण के दो भेदों का वर्णन किया हैः–

**(क) शिशु चान्द्रायणः–**

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार यदि कोई विप्र पूर्णतः चित्त को लगातार प्रातः चार ग्रास भोजन करता है और सांयकाल सूर्यास्त होने पर चार ग्रास भोजन करता है तो वह व्रत 'शिशु चान्द्रायण' कहा जाता है।[२]

**(ख) यति चान्द्रायणः–**

बौधायन के अनुसार यदि एक मास तक प्रतिदिन केवल मध्यान्ह में आठ-आठ ग्रास हविष्यान्न का सेवन करे तथा इन्द्रियों पर संयम रखें, तो वह यति चान्द्रायण व्रत होता है।[३]

**चान्द्रायण विधिः–**

बौधायन एवं गौतम ने चान्द्रायण व्रत करने की विधि का वर्णन भी किया है। गौतम के अनुसार कृच्छ व्रत के लिए विहित सामान्य निमय चान्द्रायण व्रत में भी होती है। यदि प्रायश्चित्त के लिए चान्द्रायण व्रत किया

---

१. विपरीतं यवध्यम्।। *(बो.ध.सू. ३/८/८/३५, गौ.ध.सू. ३/९/१४-१५)*

२. चतुरः प्रातश्नीयात्पिन्डान्विप्रस्समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणम्।।१८।। *(वि.ध.सू. ४७/९, बौ.ध.सू. ४/५/५/१८)*

३. अष्टावष्टौ मासमेकं पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते।
नियात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत्।। *(वि.ध.सू. ४७/९, बौ.ध.सू. ४/५/५/१९)*

जा रहा है, तो केश मुण्डवाने का विधान है।[१] बौधायन के केश वपन का अनिवार्य विधान करते हुए कहा है कि सिर के केश, दाढ़ी, मूँछ, शरीर के राम और नखों को कटवाकर नये वस्त्र पहनकर सत्य भाषण करते हुए उस स्थान में प्रवेश करे जहाँ यज्ञिय अग्नि रखी गई हो है।[२] गौतम ने पौर्णमासी तथा बौधायन ने शुक्लपक्ष की चतुदर्शी को उपवास करने का निर्देश किया है।[३]

बौधायन एवं गौतम के अनुसार तत्पश्चात् कर्त्ता **"आप्यायस्व सं ते पयांसि नवोनव"** मन्त्र से जल का तर्पण करे, घृत का हवन करे, हवि का अनुमन्त्रण करे एवं चन्द्रमा की पूजा करे। **"यद् देवाः देवहेऽनम्"** आदि चार ऋचाओं का उच्चारण करता हुआ आज्य की आहुति करे। आज्य होम के उपरान्त **"देवस्कृत"** आदि मन्त्रों से समिधाओं होम करे।[४] स्विष्टकृत अग्नि के लिए हवन करके अवशिष्ट हविष्य को कंस या चमस से निकाल कर साधारण मात्रा के पन्द्रह ग्रास भक्षण करे।[५] बौधायन के अनुसार **"प्राणाय त्वा"** कहकर प्रथम पिण्ड का भक्षण करे। **"अपानाय त्वा"** कहकर दूसरे **"व्यानाय त्वा"** से तीसरे **"उदानाय त्वा"** से चौथे तथा **"समानाय त्वा"** कहकर पाँचवे पिण्ड का भक्षण करे। यदि केवल तीन ग्रास हों तो पहले दो ग्रासों का दो मन्त्रों से भक्षण करें। दो ग्रास होने पर दो मन्त्र से पहले ग्रास

---

१. वपनं व्रतं चरेत् ।।३।।
श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् ।।४।। *(गौ.ध. ३/९/१-३)*

२. केशश्मश्रुलोमनखानि वापायित्वा अपि वा श्मश्रुण्येव ।।३।।
अहत वासो वसानः सत्यं ब्रुवन्नावसधमभ्युपेयात्।।४।। *(बौ.ध.सू. ३/८/८/३-४)*

३. शुक्लचतुर्दशीमुपवसेत् ।।२।। *(बौ.ध.सू. ३/८/८/२)*
श्वोभृतां पौर्णमासीमुपवसेत।।४।। *(गौ.ध.सू. ३/९/४)*

४. आप्यामस्व सं ते पयांसि नवों नव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हविषश्चानुमन्त्रणामु-पस्थानं चन्द्रमसः।।५।।
यद्देवा देवहेडनमिति पतसृभिर्जुहुयात्।।६।।
देवकृतस्येति चान्ते समिद्धिः।।७।।
ओं भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीरूर्गिंडौजस्तेजो *(बौ.ध.सू. ३/८/८/८-१०)*
वचः पुरूषो धमः शिवइत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रं प्रतिमन्त्रं मनसा।।८।। *(गौ.ध.सू. ३/९/५-८)*

५. सौविष्टकृतीं हुत्वाऽथैत द्वविरूच्छिष्टं कँसे वा चमसे वा व्युद्धृत्य
हविष्यैर्व्यञ्जनैरूपस्चिय पञ्चदश पिण्डान् प्रकृतिस्थान् प्राश्नाति।।११।।
*(बौ.ध.सू. ३/८/८/११)*

का तथा तीन मन्त्रों से दूसरे ग्रास का भक्षण करें। एक ही ग्रास होने पर सभी मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उसका भक्षण करें।[१]

गौतम ने प्रत्येक ग्रास को इन मन्त्रों से जप करते अभिमन्त्रण करने का निर्देश किया है "ओं भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीरूर्गिऽैजस्तेजो वचः पुरूषो धर्मः इति"[२] अथवा "नमः स्वाहा" कहकर सभी ग्रासों को अभिमन्त्रित करे।[३] जितना ग्रास ग्रहण करने से मुख विकृत न हो उतने प्रमाण का ग्रास होना चाहिए।[४]

बौधायन के अनुसार व्रत आचारण करने वालो के लिए यज्ञ की हवि ही मुख्य भक्ष्य होता है किन्तु गौतम का विचार है कि चरू भिक्षा में प्राप्त अन्न, शाक्तु कण, यावक, शाक, दूध, दही, घृत, मूल, फल और उदक ये हवियां है। इनमें भी पहले वाले से बाद वाला अधिक उत्तम होता है।[५]

**चान्द्रायण का महत्वः**—बौधायन एवं गौतम का कथन है कि जो व्यक्ति इस व्रत को पूरा कर लेता है वह सभी पापों से मुक्त और सभी दोषों से शुद्ध हो जाता है।[६] बौधायन का विचार है कि सभी इच्छाओं की पूर्ति चान्द्रायण व्रत से हो जाती है। प्राचीन काल में ऋषियों ने चान्द्रायण व्रत से ही अपने आप को पवित्र करके सभी कर्मो को पूरा किया।[७] यह व्रत धन

---

१. प्राणाय त्वेति प्रथमम्। अपानाय त्वेति द्वितीयम्।। व्यानाय त्वेति तृतीयम्।
उदानाय त्वेति चतुर्थम्। समानाय त्वेति पञ्चमम्।।१२।।
यदा चत्वारो द्वाभ्यां पूर्वम् ।।३।। यदात्रयो द्वाभ्यां पूर्वौ ।।४।।
यदा द्वौ द्वाभ्यां पूर्व त्रिभिरूत्तरम् ।।५।। एकं सर्वैः ।।६।। (*बौ.ध.सू. ३/८/८/१२-१६*)

२. ओं भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीरूगिऽैजस्तेजों वचः पुरूषों धर्मः शिव इत्यैग्रौसामन्त्रं मनसा ।।९।। (*गौ.ध.सू. ३/९/८*)

३. नमः स्वाहेति वा सर्वान् ।।९।। (*वही ३/९/९*)

४. ग्रास प्रमाणमास्यतिकारेण ।।१०।। (*वही ३/९/१०*)

५. हविष्यं चव्रतोपायनम्।।७।। (*बौ.ध.सू. ३/८/८/७, गौ.ध.सू. ३/९/१२*)

६. अतोऽन्यतरच्चरित्वा सर्वेभ्यः पातकेभ्यः पापकृेभ्यः पापकृच्छुद्धो भवति।।३६।।
एवमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हन्ति ।।१६।।
(*बौ.ध.सू. ३/८/८/३६, गौ.ध.सू. ३/९/१६*)

७. कामाय कामयैतदाहार्यमित्याचक्षते।।३७।।
यं कामं कामयते तमेतोनाऽऽप्नोति ।।३८।।
एतेन वा ऋषय आत्मानं शोधयित्वा पुरा कर्माण्यसाधयन्।।३९।।
(*बौ.ध.सू. ३/८/८/३७-३९*)

धन देने वाला, पुण्य दायक, पुत्र पौत्र, दीर्घ जीवन, स्वर्ग और यश देने वाला है जो व्यक्ति इस व्रत का पालन करता है। वह नक्षत्रों की ज्योति तथा सूर्य तथा चन्द्रमा का सायुज्य प्राप्त करता है।[१] एक वर्ष तक इस व्रत का पालन करने वाला व्यक्ति चन्द्रलोक में निवास करता है। गौतम के अनुसार जो दो मास तक इस व्रत को करता है व स्वयं को, अपने पहले और बाद की दस दस पीढ़ियों को पवित्र कर देता है।[२]

धर्मसूत्रों एवं स्मृति के कथनानुसार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है चान्द्रायण व्रत करने वाला व्यक्ति पाप से होने वाले भय को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार उगता चन्द्रमा संसार के अन्धकार के भय को दूर करता है। जो चान्द्रायण व्रत विधिपूर्वक पूरा कर लेता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। और सभी दोषों से शुद्ध हो जाता है उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। विवेचन से ज्ञान प्राप्त होता है कि जिन पापों के प्रायश्चित्त का विधान वर्णित नहीं है, उनकी शुद्धि चान्द्रायण व्रत से होती है। जो धर्म के लिए यह व्रत करता है वह चन्द्रलोक को प्राप्त होता है। चान्द्रायण का विधान मुख्यतः आहार नियन्त्रण पर है। निराहार से चित्त शुद्धि एवं विषय निवृति होती है। इस प्रकार यह व्रत प्रायश्चित्त में परम सहायक है।

**(२) देवकृच्छ्रः**—धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में पाराशर माधवीय को छोड़कर किसी में भी देवकृच्छ्र नामक व्रत का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया है। पाराशर माधवीय एवं प्रायश्चित्त सार के अनुसार इसका वर्णन इस प्रकार किया जा रहा है इस व्रत में लगातार तीन तीन दिन तक यवागू (माँड) यावक (जौ की लपसी) शाक, दूध, दही एवं घी ग्रहण करना चाहिए और आगे के तीन दिनों तक पूर्ण उपवास करना चाहिए यह देवकृत (देवो द्वारा सम्पादित) प्रायश्चित्त कहा जाता है जो सभी कल्मषो नाशक है। यह मरूतो, वसुओ, रूद्रो एवं आदित्य आदि द्वारा सम्पादित हुआ है। इस व्रत के प्रभाव से वे विरज

---

१. तदेतद्धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पौत्रयं पशव्यमायुष्यं स्वर्ग्यं यशस्यं सार्वकामिकम्।।४०।।
नक्षत्राणां द्युतिं सूर्याचन्द्रमसोस्सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।।४१।।
संवत्सरं चाऽऽप्त्वा चन्द्रमसः सलोकतामाप्नोति सलोकतामाप्नोति ।।१८।।
(*बौ.ध.सू.* ३/८/८/४०-४१ *गौ.ध.सू.* ३/९/१८)

२. द्वितीयमाप्त्वा दश पूर्वान्दश वरानात्मानं चैकविशं पंक्ति च पुनाति। (*गौ.ध.सू.* ३/९/१७)

(अपवित्रता से मुक्त) हो गये।[१] यह व्रत इक्कीस दिनों तक चलता है क्योंकि उपर्युक्त सात वस्तुएं तीन दिनों तक खायी जाती है।

**(३) तप्तकृच्छ्रः**—धर्मसूत्रो एवं स्मृतियों के अनुसार तप्तकृच्छ्रव्रत के विषय में कई मत है। प्रमुख स्मृतियों एवं धर्मसूत्रों के अनुसार इसका वर्णन इस प्रकार किया जा रहा है। मनु, वसिष्ठ, विष्णु, बौधायन धर्मसूत्र, शंख स्मृति, अग्नि, अत्रि एवं पाराशर ने इसे बारह दिनों का माना है और तीन-तीन दिनों की चार अवधियाँ निर्धारित की हैं। इसमें तीन अवधियों के अन्तर्गत एक अवधि में गर्म जल, दूसरी में गर्म दूध एवं तीसरी में गर्म घी पीया जाता है और आगे तीन दिन तक पूर्ण उपवास रखा जाता है और कर्म वायु का पान मात्र किया जाता है।[२] मनु ने इतना और जोड़ दिया है कि तीन बार के स्थान पर केवल एक बार स्नान होता और इन्द्रिय निग्रह किया जाता है।

याज्ञवल्क्य ने केवल इसे चार दिनों का माना है, जिसमें तीन दिनों में क्रम से गर्म दूध, घी एवं गर्म जल लिया जाता है और चौथे दिन पूर्ण उपवास किया जाता है। मिताक्षरा ने इसे महातप्तकृच्छ्र कहा है और दो दिनों के तप्तकृच्छ्र की व्यवस्था दी है, जिसमें प्रथम दिन पापी तीनों, अर्थात् गर्म जल, दूध घी ग्रहण करता है और दूसरे दिन उपवास करता है।[३] पाराशर ने गर्म जल, गर्म दूध एवं घी की मात्रा क्रम से छः पल, तीन पल एवं एक पल दी है।[४]

**४. तुलापुरूष-कृच्छ्रः**—धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में केवल याज्ञवल्क्य स्मृति को छोड़कर किसी ने इसका वर्णन स्पष्ट नहीं किया है। याज्ञवल्क्य के मतानुसार तुलापुरूष कृच्छ्रव्रत में पन्द्रह दिनों के व्रत का उल्लेख किया

---

१. यवागूं यावकं शाकं क्षीरं दधि घृतं तथा। त्र्यहं त्र्यहं तु प्राश्नीयाद् वायुभक्षस्त्रयहं परम्।।
मरूद्भिर्वसुभी रूदैरादित्यैश्चरितं व्रतम। व्रतस्यास्य प्रभावेण विरजस्का हि तेऽभवन।।
कृच्छ्रं देवकृतं नाम सर्वकल्मषनाशनम्। *(यम, परा. मा. २/२, पृ. १९१-१९२)*
*(प्राय. सार पृ. १८३-१८४)*

२. त्र्यहं त्र्यहं पिबेदुष्णं पयस्सर्पिः कुशोदकर्म।
वायुभक्षस्त्र्यहं चाडन्यत् तप्तकृच्छ्रस्स उच्यते।। *(बौधा.ध.सू. ४/५/१०)*
तप्तकृच्छ्र चरन्विप्रो जलक्षीरधृतानिलान्।
पतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समहितः।। *(मनु. ११/२१४)*

३. तप्तक्षीरधृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्।
एकरात्रोपवासञ्च तप्तकृच्छ्र उदाहतः।। *(याज्ञ. ३/३१७)*

४. षट् पलं तु पिबेदभ्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्।
पलमेकं पिबेत्सर्पिषस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते।। *(पराशर ४/८)*

गया है जिसमें पाँच पदार्थ पिण्याक, आचार्य, कान्जी भात का उफनाव या माँड, तक्र, जल एवं सत्तू प्रति तीन दिनों पर खाये जाते हैं। यम ने तुलापुरूष कृच्छ्र को इक्कीस दिनों का प्रायश्चित्त माना है जिसमें पाँच पदार्थ क्रम से तीन-तीन दिनों पर खाये जाते हैं।[१] अपरार्क, पाराशरमाधवीय, मदन परिजात एवं प्रायश्चित्त सार ने इस प्रायश्चित्त के सम्पादन की विधि का पूरा वर्णन किया है। इसमें उशीर (खस) से बनी कर्त्ता की दो आकृतियाँ सोने या चाँदी या चन्दन की बनी तराजू (तुला) के एक पलड़े पर रखी जाती है और दूसरे पलड़े पर कंकड़ पत्थर रखे जाता है या महादेव एवं अन्य देवो यथा अग्नि, वायु, सूर्य की स्थापना और पूजा की जाती है।[२]

जाबालि ने इसके लिए आठ दिनों की अवधि दी है। शंख एवं विष्णु ने इन दिनों की अवधि वाले तुला-पुरूष का उल्लेख किया है जिसमें खली या पिण्याक, भात का माँड, तक्र जल, सत्तू अलग-अलग दिन में खाया जाता है एक दिन के खाने के उपरान्त उपवास किया जाता है।[३]

इन पाप मोचन साधनों के अतिरिक्त गौतम और बौधायन ने चान्द्रायण आदि विधि का प्रायश्चित्त के रूप में वर्णन किया है।

**५. कृच्छ्रव्रतः**—कृच्छ्र व्रत का उल्लेख सभी धर्मसूत्रों में किया गया है। गौतम ने कुछ विस्तार से वर्णन किया है। आपस्तम्ब एवं गौतम ने इस व्रत में तीन दिन तक प्रातः काल के समय हविष्य का भक्षण करके सन्ध्या को उपवास रखा जाता है। फिर अगले तीन दिनों में केवल सन्ध्या को हविष्य का भक्षण करना होता है। फिर तीन दिन तक बिना मांगे अन्न खाकर (अयाचित प्राप्तान्न) रहना होता है। अगले तीन दिन तक कुछ भी भक्षण नहीं किया जाता।[४] आपस्तम्ब के अनुसार यदि इस व्रत की आवृत्ति वर्ष भर तक

---

१. एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम्।
तुलापुरूष इत्येष ज्ञेषः पञ्चदशाहिकः।। (*याज्ञ.* ३/३२२)

२. परा. मा. २, भाग २, पृ. १८४-१८९, प्राय. सा. पृ. १७९-१८१

३. तत्र जाबालः। पिण्याकं च तथाचायं तक्रं चोदकसक्तवः।
त्रिरात्रपवासश्च तुला पुरूष उच्यते। (*प्राय. सार पृ. १७८, परा.मा. २, भाग २ पृ. १८३*)

४. (क) अथातः कृच्छ्रान्व्याख्यास्यामः।।१।। (*गौ.ध.सू. ३/८*)
(ख) हविष्यान्प्रातशशान्भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयात् ।।२।। (वही)
(ग) अथापरं त्र्यहं नक्तं भुञ्जीत।।३।। (वही)
(घ) अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेत।।४।। (वही)
(ङ) अथापरं त्र्यहमुपवसेत्।।५।।
(*गौ. ३/८/१-५ पृ. ३६२-६३, आप. १/९/२७/७ पृ. १९५*)

करे तो वह कृच्छ्र व्रत/कृच्छ्र सवंत्सर होता है[१] बौधायन ने इसे बारह दिन का "प्राजापत्य कृच्छ्र" कहा है।[२]

गौतम ने कृच्छ्र व्रत की विधि का वर्णन करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति शीघ्र शुद्ध होना चाहे वह दिन में खड़ा रहे और रात्री को बैठा रहे, वह सत्य भाषण करे, आर्यों के अतिरिक्त किसी अन्य से भाषण न करें।[३] प्रतिदिन 'रौरव' और योधजपः नाम से साम का गान करें। 'आपोहिष्ठा' आदि तीन मन्त्रों का उच्चारित करते हुए प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्या को स्नान करें और "हिरण्यवर्णाः" स 'शुचयः' पावकाः आदि आठ पवित्र करने वाल मन्त्रों से शरीर को सुखावें।[४] तत्पश्चात् मन्त्रोंच्चारण पूर्वक जल से तर्पण करें।[५] इसके बाद मन्त्रोंचारण पूर्वक सूर्य पूजा तथा आज्य प्रदान करने का विधान है।[६]

इसके बारह दिन बाद चरू बनाकर अग्नि, सोम, अग्निष्टोम, इन्द्र और अग्नि, इन्द्र सभी देवता, ब्रह्मा, प्रजापत्य तथा अग्निस्विष्टकृत के साथ स्वाहा उच्चारण करते हुए इन देवताओं को बलि प्रदान करने तथा ब्राह्मण भोजन कराने का विधान किया गया है।[७]

**कृच्छ्र व्रत के भेदः—**

कृच्छ्र के निम्नलिखित भेदों का उल्लेख किया गया है।

**(क) बाल कृच्छ्रः**—बौधायन के अनुसार यदि एक दिन केवल दिन में भोजन करें, दूसरे दिन केवल रात्रि में भोजन करें, तीसरे दिन बिना मांगे,

---

१. आप. १/९/२७/८ पृ. १९६

२. प्राजापत्यो भर्वेत्कृच्छ्रो दिवा रात्रावयाचितम्।
क्रमशो वायुभक्षश्च द्वादशाहं त्र्यहं त्र्यहं त्र्यहम्।।६।। (*बौ.ध.सू. ४/५/५/६ पृ. ३८३*)

३. तिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः।।६।। सत्यं वदेत्।।७।। अनार्यैर्न संभाषेत।।८।।
(*गौ.ध.सू. ३/८/६-८ पृ. २६३-६४*)

४. रौरवयौधाजपै नित्यं प्रयुञ्जीत।।९।। अनुसवनमुदकोपस्पर्शननापो हि ष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयीत हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः।।१०।।
(*गौ.ध.सू. ३/८/९-१० पृ. २६४*)

५. अथोदकतर्पणाम्।।११।। नमोऽहमाय। य..............कृत्तिवाससे नमः।।१२।।
(*गौ.ध.सू. ३/८/११-१२*)

६. एतदेवाऽऽदित्योपस्थानम्।।१३।। एता एवाऽऽज्याहुतयः।।१४।। (*वही ३/८/१३-१४*)

७. द्वादशरात्रस्यान्ते चरूं श्रपयित्वैताभ्यो जुहुयात्।।१५।।
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा.........स्विष्टकृत इति ।।१६।। (*गौ.ध.सू. ३/८/१५-१६*)

मिले आहार का भोजन करे और चौथे दिन केवल वायु का भक्षण करे। इस कर्म में तीन बार यह व्रत दोहराने पर बारह दिन का बालकों का "बाल कृच्छ्र व्रत" होता है।[1]

**(ख) अतिकृच्छ्रः**—अतिकृष्छ्र व्रत प्रायश्चित्त में तीन तीन दिन क्रमशः दिन में और रात्री में बिना मांगे मिले हुए भोजन का केवल एक ग्रास खाकर रहे। अन्त में तीन दिन वायु का आहार करके रहे तो वह "अति कृच्छ्र व्रत" है।[2] विष्णु ने यह अति कृच्छ्र का प्रायश्चित्त उन लोगों के लिए बताया है जो किसी ब्राह्मण को लाठी या अन्य शास्त्र से आहत करता है।[3]

**कच्छ्रातिकृच्छ्रः**—बौधायन गौतम वसिष्ठ के अनुसार इस वृत में जल का सेवन ही करना होता है किन्तु बौधायन के अनुसार यदि तीन तीन दिन प्रथम तीन कालों में केवल जल पीकर रहे और उसके तीन दिन बाद केवल वायु भक्षण करते हुए बिताए तो वह "कृच्छ्रातिकृच्छ्र" नामक अत्यन्त पावन व्रत होता है।[4]

याज्ञवल्क्य के अनुसार इस व्रत में इकत्तीस दिनों तक जल के सेवन का विधान है।[5]

**महत्वः**—गौतम ने इन कृच्छ्र व्रतों के महत्व के बारे में कहा है कि इनमें से प्रथम कृच्छ्र करने वाला पतित व्यक्ति पवित्र एवं अपने वर्ण का कर्म करने के लिए योग्य बन जाता है।[6] अति कृच्छ्र व्रत से महा पातकों के अतिरिक्त अन्य सभी पापों से शुद्ध हो जाता है। कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत के पालन

---

१. अहरेकं तथा नक्तमज्ञातं वायुभक्षणम्।
त्रिवृदेष परावृत्तों बालानां कृष्छ्र उच्यते।।७।। *(बौ.ध.सू. ४/५/५ पृ. २६७)*

२. एकैकं ग्रासमश्नीयात्पूर्वाक्तेन त्र्यहं त्र्यहम्।
वायुभक्षस्त्र्यहं चाऽन्यदतिकृच्छ्रस्स उच्यते।।८।।

३. वि.वि.सू. ५४/३०

४. अम्बुभक्षस्त्रयहानेतान्वायुभक्षस्ततः परम्।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्तृतीयो विज्ञेयस्सोऽतिपावनः।
*(गौ.धू.सू. ३/८/२० वसिष्ठ २४/३ बौ.ध.सू. ४/५/५/९)*

५. कृच्छ्रतिकृच्छ्र पयसा दिवसानेकविंशतिम्।
द्वादशहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः।।३२०।। *(याज्ञ. ३ अध्याय)*

६. प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति।।२।। *(बौ.ध.सू. ३/८/२१)*

से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।[१] इन सभी तीनों कृच्छ्र व्रतों को जानने वाला एवं करने वाला व्यक्ति सभी वेदों में पूर्ण तथा देवों में प्रसिद्ध हो जाता है।

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ एवं स्मृतिकार मनु, याज्ञवल्क्य ने कृच्छ्र के अन्य भेदों का भी वर्णन किया है।

**(ख) सान्तपन कुच्छ्रः**—बौधायन एवं याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि एक-एक दिन क्रमशः गोमूत्र गाय का गोबर, दूध, दही, घृत कुशादक ग्रहण करे तथा एक दिन रात्री का उपवास करे तो वह "सान्तपन कृच्छ्र" व्रत होता है।[२] गोबिन्द स्वामी के अनुसार यह सात दिन का होता है। बौधायन के मन्त्रांच्चारण पूर्वक दूध, दही, गोबर आदि ग्रहण करने का निर्देश किया है।[३] इस प्रायश्चित्त में गोमूत्र आदि की मात्रा के बारे में लिखा है गोमूत्र में आधा अंश गोबर, तीन भाग दूध, दो भाग दही, एक भाग घृत और एक भाग कुशोदक मिलाना चाहिए। इस प्रकार सान्तपन नामक कृच्छ्र व्रत चाण्डाल तक को शुद्ध कर देता है।[४]

**(ग) पराकः**—बौधायन के अनुसार इन्द्रियों पर संयम रखते हुए सावधान होकर बारह दिन तक भोजन न करे तो यह "पराक नाम" का कृच्छ्र व्रत होता है।[५]

**(घ) महासात्तपन कृच्छ्रः**—बौधायन एवं याज्ञवल्क्य के अनुसार गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत आदि पदार्थों में से एक प्रतिदिन ग्रहण करे और इस प्रकार सात-सात दिन की तीन अवधि तक प्रायश्चित्त व्रत करे तो उसे ब्रह्मयज्ञ लोग "महासान्तपन कृच्छ्र" व्रत कहते हैं।[६]

---

१. द्वितीय चरित्वा यत्किंचिदन्यन्महापातकेभ्य पाप कुरूते।
तस्मात्प्रमुच्यते।। तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते।।२३।। *(बौ.ध.सू. ३/८/२३)*

२. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्र सान्तपनं स्मृतम्।।११।। *(बौ.ध.सू. ४/५/५/११ याज्ञ. ३/३१८)*

३. गायत्र्या[१] गृह्य गोमूत्रं[२] गन्धद्वरेति गोमयम्।
[३]आप्यायस्वेति च क्षीरं [४]दधिक्राव्णेति वैदधि।।
[५]शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं [६]देवस्य त्वा कुशोदकमिति।।१२।। *(वही)*

४. गोमूत्रभागस्तस्याऽर्ध शकृत्क्षीरस्य तयम्।
द्वयं दध्नो घृतस्यैकः एकश्च कुशवारिणः।
एवं सान्तपनः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोचयेत्।।१३।। *(वही)*

५. गोमूत्रादिभिरभ्यस्तमेकैकं तं त्रिसप्तकम्।
महासान्तपनं कृच्छ्र वदन्ति ब्राह्मवादिनः।।१६।। *(बौ.ध.सू. १६, याज्ञ. ३/३२०)*

६. गोमूत्रं..................शुद्धयति। *(बौ. ४/५/५/११,१६ पृ. ३८७-८८, याज्ञ. ३/३/८)*

**प्रसृत यावक व्रतः**—बौधायन ने लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति अपने किये हुए कर्मों से अनुताप के कारण बोझ जैसा अनुभव करे, तो नक्षत्रों के उगने पर एक मुट्ठी जौ का यवागू पकाये उस यावक में से निकालकर अग्नि में हवन करें और उससे वैश्वदेव बलि कर्म भी करे।[1] जौ पकने से पहले तथा पकाये जाते समय **"यवोऽसि धान्यराजोऽपि वरूणो मधुसयुंतः"** इत्यादि मन्त्रों से अभिमन्त्रण करे।[2] जिस समय जौ पकाये जा रहें हो उस समय **"नमोरूद्राय भूताधिपतये द्यौइशान्ता"** इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उनकी रक्षा करें।[3] जौं पक जाने पर उसके थोड़े से अंश को दूसरे पात्र में डालकर स्वयं शुद्ध होकर तथा आचमन करे उसे खाये। मेधा की कामना करने वाला तीन रात्रि पर्यन्त इसी प्रकार यावक का भक्षण करें।[4]

**महत्वः**—बौधायन के अनुसार छः रात्रियों में इस विधि से यावक पान करने पर पापी शुद्ध हो जाता है। जो सात दिन तक यावक का पान करता है वह ब्राह्मण हत्या, गुरूपत्नी गमन, स्वर्ण की चोरी और सुरापान के पाप से भी मुक्त हो जाता है। ग्यारह दिन रात्रि पर्यन्त व्रत करने पर पूर्वजों का पाप भी नष्ट हो जाता है। गौ के नीचे से निकाले गये यावक का जो इक्कीस दिन रात तक पान करता है वह गणों एवं गणाधिपति का दर्शन करता है, विद्या तथा विद्यापति का दर्शन करता है।[5]

---

१. अथ कर्मभिरात्मकृतैर्गुरूमिवाऽऽत्मानं मन्येताऽऽत्मार्थे प्रसूतयावकं श्रपयेदुदितेषु नक्षत्रेषु।।१।।
न ततोऽग्नौं जुहुयान्न चाऽत्र बलिकर्म।।२।। (*बौ.ध.सू.* ३/६/६/१-२)

२. अश्रृतं श्रप्यमाणं श्रृतं चाऽमिभमन्त्रयेत्।।३।। (*बौ.ध.सू.* ३/६/६/१-३)

३. नमो रूद्राय भूताधिपतये धौश्शयान्ता।।१२।।
कृणुष्व पानः प्रसितिं न पृथ्वीम ये देवाः पुरस्सदोऽनिनेत्रा रक्षोहण इति पञ्चभिः पर्यायैः।
मानस्तोके ब्रह्म देवनामिति द्वाभ्याम्।।१३।। (*वही* ३/६/६/१२-१३)

४. श्रृतं च लध्वश्नीयात् प्रयतः पात्रे निषिच्य।।१४।।
"ये देवा मनोजाता....................व्यात्मनि जुहुयात्।।१५।।"
त्रिरांत्र मेद्यार्थी।।१६।।

५. षड्रात्रं पीत्वा पापकृच्छुद्धो भवति।।१७।।
सप्तरात्रं पीत्वा भ्रूणहननं गुरूतल्पगमनं सुवर्णस्तेन्य सुरापानमिति च पुनाति।।१८।।
एकादशरात्रं पीत्वा पूर्वपुरूषकृतमपि पापं निर्णुदति।।१९।।
अपि वा गोनिष्क्रान्तानां भवानामेकविंशतिरात्रं पीत्वा गणान् पश्यति
गणधिपतिं पश्यति विद्यां पश्यति विद्याधिपतिं पश्यतीत्याह भगवान् बौधायनः।।२०।।
(*बौ.ध.सू.* ३/६/६/१७-२० *एवं* ४/५/५/२३)

**तुलापुमानः**—सभी धमसूत्रों एवम् स्मृतियों में तुलापुमान व्रत के विषय में वर्णन करते हुए कहा है जो व्यक्ति एक दिन चावल के कण खाकर तीन दिन तिल का पिण्याक खाकर पाँच दिन मट्ठा पीकर, सात दिन जल पीकर, और एक दिन वायु का भक्षण करके व्रत करता है। वह पापों को नष्ट करने वाला तुलापुमान नामक व्रत का पालन करता है।[१] गोविन्द स्वामी के अनुसार यह सतरह दिन का होता है।[२] किन्तु याज्ञवल्क्य ने इसकी अवधि पन्द्रह दिन बतलायी है।[३]

ब्रह्मकूर्च बौधायन के अनुसार गाय का मूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत और कुशोदक जौ के बनाये यवागू के साथ मिलाये जाने पर अत्यन्त पवित्र करने वाला ब्रह्मकूर्च कहलाता है।[४]

**अघमर्षणः**—अत्यन्त प्राचीन धर्मशास्त्र गन्थों में गौतम, बौधायन धर्म सूत्र, वसिष्ठ, मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, शंख आदि ने इसे सभी पापों का प्रायश्चित माना है। इसका वर्णन इस प्रकार किया जा रहा है।

यदि पापी व्यक्ति जल में खड़ा होकर दिन में तीन बार (हरदत्त के अनुसार तीन दिनों तक) अघमर्षण मन्त्रों का पाठ करे तो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है[५] और वह प्रायश्चित्त अश्वमेघ के अन्त में किये गये स्नान के समान पवित्र माना जाता है।[६] प्रायश्चित्त सार ने भी इसका उल्लेख किया है। व्यक्ति को तीन दिनों का उपवास, दिन में खड़े रहना रात में बैठा रहना एवं अन्त दुधारू गाय का दान करना होता है।

---

१. कणपिण्याकतक्राणि तथा चाऽपोऽनिलाशनः।
एकत्रिपञ्चसप्तेति पापघ्नोऽयं तुलापुमान्।।२२।। (बौ.ध.सू. ४/५/५/२२)

२. सप्तदशाहिनकस्संपद्यते। (बौ.ध.सू. पृ. ३९०)

३. एषां त्रिरात्रमभ्यासावेकैकं प्रत्यहं पिबेत्।
तुलापुरूष इत्येष ज्ञेयः पश्चदशाह्लिकः। (याज्ञ.)

४. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
यवाचामेन संयुक्तो ब्रह्मकूर्चोऽतिपावनः।।२५।। (बौ.ध.सू. ४/५/५/२५)

५. त्रिरात्रोपोषितो जप्तवा ब्रह्महा त्वघमर्षणम्।
अन्तर्जले विशुध्येत दत्त्वा गां च पयस्विनीम्।। (याज्ञ. ३/३०१)
अन्तर्जले वाऽघमर्षणं त्रिरावर्तयन्सर्वपापेभ्यों विमुच्यते।। (बौ.ध.सू. ३/६/११)
चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पुतस्तरति दुष्कृतानि।
तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेमेति।।१७।। (बौ.ध.सू. ४/२/१७)

६. यथाश्वमेघः क्रतुराट् सर्वपापानोदनम्।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्।। (मनु. ११/२६०)

**(ज) तीर्थयात्राः—**

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार "तीर्थयात्रा प्रायश्चित्त" का साधन माना गया है।

"तीर्थयात्रा" नामक प्रायश्चित्त का **'अर्थ वाचस्पत्यम्'** शब्दकोश के अनुसार जिसके द्वारा या जिनसे या जहाँ पर व्यक्ति अपने पापकर्म को त्यागकर सन्मार्ग गामी हो जाते हैं। और दुःख सागर से तर जाते हैं वही "तीर्थयात्रा" का सामान्य अर्थ माना है।

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार 'तीर्थयात्रा' नामक प्रायश्चित्त का वर्णन इस प्रकार है।

बौधायन के अनुसार सभी पर्वत, सभी बहने वाली नदी, पवित्र जलाशय, तीर्थ (स्नान के घाट) ऋषियों के आश्रम, गायों के रहने का घर, क्षेत्र और देवो के मंदिर और गुफाएं ये सभी दुष्कर्म से जन्य पापों को दूर करने वाले स्थान हैं।[१]

अन्य विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार महापातकी लोग अश्वमेध से या पृथ्वी पर पवित्र स्थानों की यात्रा करने से पवित्र हो जाते हैं।

पराशर स्मृति के अनुसार चारों विद्याओं का विद्वान भी यदि ब्रह्म हत्यारा है तो उसे सेतुबन्ध रामेश्वर जाना ही प्रायश्चित्त है।[२] तपोवन, तीर्थ और नदियों के प्रवाह इन स्थानों में पाप को प्रकट करता हुआ पवित्र समुद्र पर पहुँच कर जो दशयोजन चौड़ा और सौ याजन लम्बा है। जिसको रामचन्द्र जी की आज्ञा से नल ने बनाया था। उस समुद्र के सेतु को देखकर ब्रह्महत्या नामक पाप से युक्त पापी मुक्त होता है।[३]

देवल का कथन है कि "व्यक्ति तीर्थस्थानों एवं देवमन्दिरों में जाने से एवं तपस्वी ब्राह्मणों के दर्शनों से पाप मुक्त हो जाता है और समुद्र में

---

१. सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवत्यः सरितः पुण्याह्रदास्तीर्थण्यृषिनिकेतनानि गोष्ठक्षेत्रपरिष्कन्दा इति देशाः।।१३।। (*बौ.ध.सू.* ३/१०/१३)

२. चतुर्विधोपपन्नस्तु विधिवद् ब्रह्मघातके।।६२।।
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्त समादिशेत्।
सेतुबन्धपथे भिक्षां पातुर्वर्ण्यात् सदाचरेत्।।६३।। (*पाराशर स्मृति* १२/६२-६३)

३. तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रसवणेषु च।
एतेषु ख्यापयन्नेव पुण्य गत्वातु सागरम्।।६६।।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
रामचन्द्रं-समादिष्ट नलसञ्चयसञ्चितम्।।६७।। (*पाराशर स्मृति* १३ *अध्याय*)

मिलने वाली नदियां सभी महान पर्वत, मन्दिर एवं वन पवित्र है।" प्रायश्चित्त प्रकाश के मतानुसार कलियुग में सभी जीवों के पाप के नाश के लिए वाराणसी से बढ़कर कोई प्रायश्चित्त नहीं मानता।[१]

तीर्थ शब्द का अर्थ 'तृ प्लवनसंतरणयोंः' धातु से किया है। 'पातृर्तुदेवाधरिधि सिचिभ्यस्थक्' इस उणादि सूत्र के द्वारा 'थक्' प्रत्यय करने पर 'तीर्यते,' अनेन (जिससे तारा जाता है)। यह स्पष्ट होता है। अमरकोश में निपान, आगम, ऋषि, जुष्ट तथा गुरू की तीर्थ संज्ञा कही है।[२]

पापों से निवृत्ति प्रायश्चित्त विधान पुण्य संचय, स्वर्ग मुक्ति की प्राप्ति, देवी अनुकम्पा, आत्मशांति, मनोकामना की पूर्ति जैसे कितने ही लाभ गिनाये गये हैं। आत्मचिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण, आत्मविकास के चारों ही चरण पूरा करने में यह तीर्थवास का वातावरण हर दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होता है। पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए कई तपश्चर्याए आवश्यक होती हैं। वे भी तीर्थ पर रहकर करने से पूर्ण होती है। जिसमें तीर्थों के माहत्म्य से पाप निवृत्ति को जोड़ा गया है यह निश्चित रूप से प्रायश्चित्त विधान की ओर संकेत करता है।

दुष्कर्म जन्य पाप की उत्पत्ति होने पर उनके प्रायश्चित्त के लिए अमुक तीर्थ तक पद यात्रा करते हुये जाना वही अमुक तीर्थ अवधि तक निवास करना प्रायश्चित्त विधान पूर्ण करना, भविष्य के लिए पवित्र रहने का व्रत लेकर लौटना आवश्यक समझा जाता है।

पाप प्रायश्चित्त के लिए तीर्थ यात्रा के विधान का सही तात्पर्य घर में किसी प्रिय जन की मृत्यु हो जाने पर भी उसकी अस्थियाँ विसर्जित करने के लिए पवित्र जलाशयों में तीर्थ में जाया जाता था। इस बहाने कुछ समय वे व्यक्ति वहाँ रहते। गरूड़ पुराण आदि की कथा सुनते थे। फलतः शोक संकुल मन को शांति मिलती थी और चित्त पर पड़े हुए दबाव एवं छाये हुए

---

१. नान्त्पश्यामि जन्तूनां मुक्तवा वाराणसीं पुरीम्।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं कलौयुगे।। (परा. मा. २/२)
अभिसंगम्य तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
नरः पापात्प्रमुच्येत ब्राह्मणांश्च तपस्विनः।।
सर्वा समुद्रगाः पुण्याः सर्वे पुण्या नगोत्तमः।
सर्वमायतनं पुण्यं सर्वे पुण्या वनाश्रयाः।। (परा.मा. २/२ प्रायश्चित्त विवेक)

२. निपानागमयोस्तीर्थमृषि जुष्ट जले गुरौ। (अमरकोश)

असंतुलन से निवृत्ति पाकर हल्के मन से अपने घरों को वापिस लौटते थे। प्रायचिश्त्त विधान में तीर्थयात्रा को अग्रणी माना जाता हैं उसमें दो प्रतिफल बताये गये हैं। १. पाप नाश, २. पुण्य फल की प्राप्ति। पाप नाश का अर्थ है प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त मात्र किसी नदी सरोवर में शरीर को स्नान करा लेने का इतना ही उद्देश्य है कि शरीर की तरह अन्तःकरण एवं आचरण को भी पवित्र बनाने की उमंग उठे। यह उमंग जितनी व्यवहारिकता में उतरेगी उतनी ही पवित्रता बढ़ेगी। उससे जो लोक हित होता है उससे पापों का भुगतान होता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि पापी, महापापी सभी तीर्थयात्रा से शुद्ध हो जाते हैं। पापी मनुष्य के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शांति होती है। वातावरण व आचरण की पवित्रता के कारण उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है। ऐसे मनुष्य के लिए तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है। जो तीर्थो की यात्रा करने वाला व्यक्ति धैर्यवान, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित है वह पहले का पापाचारी भी हो तो शुद्ध हो जाता है।

## (झ) भिक्षा से शुद्धि :

भिक्षा को भी प्रायश्चित्त का साधन माना गया है। बौधायन के अनुसार विभिन्न पवित्र लोगो के घरों से प्राप्त भिक्षा से भी व्यक्ति के पाप की शुद्धि होती है। अग्निहोत्री से प्राप्त भिक्षा का भक्षण करने वाले एक मास में, यायावर गृहस्थ से प्राप्त भिक्षा से दस दिन, वानप्रस्थ से प्राप्त भिक्षा पाँच दिन में, जिस व्यक्ति के पास केवल एक दिन का अन्न है ; उससे प्राप्त भिक्षा से एक दिन में ही शुद्ध हो जाता है। कपोत वृत्ति से प्राप्त अन्न से जीवन यापन करने वाले व्यक्ति से प्राप्त भिक्षा जल को पीकर भी व्यक्ति शुद्ध हो जाता है।[१] भिक्षा अंहकार को नष्ट कर विश्वबन्धुत्व की भावना से जोड़ता है। इस प्रकार सत्व सम्पन्न बनाने में सहायक है।

## (ञ) वेद स्वाध्याय :

आपस्तम्ब एवं बौधायन का विचार है कि बिना भोजन किये ऋग्वेद

१. भैक्षाहारोऽग्निहोत्रिभ्यो मासेनैकेन शुद्धयति।
यायावरवनस्थेभ्यो दशभिः पञ्चभिर्दिनः।।२७।।
एकाह धनिनोऽन्नेन दिनेनैकेन शुद्धयति।
कांपोतवृत्तिनिष्ठस्य पीत्वाऽपश्शुद्धयते द्विजः।।२८।। (*बौ.ध.सू. ४/५/५/२७-२८ पृ. ३९२*)

तथा सामवेद का अथवा किसी एक वेद का तीन बार पारायण करें तो वह अत्यन्त पवित्र करने वाला होता है।[१]

**१०. प्रायश्चित्त का प्रयोजन :**

संस्कृति का मूल आधार है आचार, आचार से च्युत व्यक्ति को समाज में सामाजिक जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं है। उससे भाषण या सम्बन्ध करने वाले व्यक्ति को भी दुराचार में प्रोत्साहन देने के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई है। उसके प्रायश्चित्त कर लेने पर अपना आचरण सुधार लेने पर पुनः समाज में प्रवेश करने का द्वार खोल दिया गया है।

**११. प्रायश्चित्त न करने के परिणाम :**

स्मृतियों, धर्मसूत्रों एवं निबन्धों के कथन से ज्ञात होता है कि यदि व्यक्ति पाप करके प्रायश्चित्त न करे तो उसका प्रभाव हो सकता है अर्थात् व्यक्ति का जीवन इससे प्रभावित होता है या नहीं प्रथम अध्याय में विहित प्रायश्चित्त के स्वरूप के विविध वर्णन से ज्ञात होता है कि यदि व्यक्ति प्रायश्चित्त न करें तो ऐसे पापी व्यक्तियों को दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। याज्ञवल्क्य के कथनानुसार पापकृत्य के फलस्वरूप सम्यक् प्रायश्चित्त न करने से परम भयावह एवं कष्टकारक नरक यातना सहनी पड़ती है। मनु एवं याज्ञवल्क्य के कथानानुसार जो व्यक्ति गम्भी र एवं अन्य पातकों के लिए सम्यक् प्रायश्चित्त नहीं करते वे भांति-भांति कि नरक यातनाएं भुगतने के उपरान्त इस लोक में आते हैं और निम्न कोटि के पशुओं, कीट-पतंगों, लता-गुल्मों के रूप में प्रकट होते हैं। मनु के मतानुसार पाप मुक्ति के लिए व्यक्ति को प्रायश्चित्त करना चाहिए, क्योंकि वे लोक जो (प्रायश्चित्त द्वारा) पापों को नष्ट नहीं करते हैं, पुनः जन्म ग्रहण करते हैं और अशुभ चिह्नों या लक्षणों (भद्दे नख, काले दांत आदि) से युक्त हो जाते हैं। मनु ने पुनः कथन किया है कि दुष्टात्मा व्यक्ति इस जीवन एवं पूर्व जीवन में किये गये दुष्कर्मों के कारण विकलांग होते हैं और उनके अंग-प्रत्यंग भद्दी आकृतियों वाले हो जाते हैं। विष्णुपुराण ने याज्ञवल्क्य के कथन को सही ठहराया है।[२] विष्णुधमोत्तर

---

१. ऋग्यजुस्सामवेदानां वेदस्याऽन्यतमस्य वा
पारायणं त्रिरभ्यस्येदनश्नन् सोऽतिपावनः।।२९।। (*बौ.ध. ४/५/५/२९ पृ. ३९२*)
(*आप. ध.सू. ८/१/९/२७/९ पृ.१९६*)

२. पापकृघाति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः।
(*विष्णुपुराण ४/५/२१; परा.मा. २, भाग २ भाग २ पृ. २०९*)

के कथनानुसार वे पापी जो प्रायश्चित्त नहीं करते और न राजा द्वारा दण्डित होते है। नरक में गिर पड़ते हैं। तिर्यग्योनि में जन्म ग्रहण करते है और मनुष्य योनि पाने पर भी शरीर दोषों से मुक्त होते हैं।[१]

विष्णु धर्मसूत्र के कथनानुसार पापी लोग नारकीय जीवन के दुःखों की अनुभूति करने के उपरान्त तिर्यक् योनि में पड़ते हैं, और जो अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक, जाति भ्रंशकरण कम, संकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण एवं प्रकीर्ण पापकृत्य करते हैं, वे क्रम के स्थावर योनि (वनस्पति), कृमियोनि, पक्षि-योनि, जलजयोनि, जलचरयोनि, मृगयोनि, पशु-योनि, अस्पृश्य योनि एवं हिस्र योनि में पड़ जाते हैं।[२] विष्णु धर्मसूत्र ने पुनः कथन किया है कि नरक की यातनाओं को भुगत लेने एवं तिर्यकों की योनि में जन्म लेने के उपरान्त जब पापी मनुष्य-योनि में आते हैं तो पापों को बतलाने वालें लक्षणों से युक्त ही रहते हैं।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि प्रायश्चित्तों ने करने से तथा उनका बहिष्कार करने पर अनेकों कष्टों को भोगता हुआ व्यक्ति अनेक प्रकार के दुःखों को सहन करता हुआ नरक के समान जीवन व्यतीत करता है। दुष्कर्मों को करके प्रायश्चित्त से रहित या पापों के शेष रह जाने पर व्यक्ति रोग ग्रस्त तथा विकलांग रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि दुष्कर्म करने के पश्चात् व्यक्ति को पाप से मुक्त होने के लिए व्यक्ति को प्रायश्चित्त करना आवश्यक है।

---

१. प्रायश्चित्तविहीना ये राजभिश्चाप्यवासिताः। नरकं प्रतिपद्यन्ते तिर्यग्योनिं तथैव च।।
मानुष्यमपि चासाद्य भवन्तीह तथांकिताः।
(*विष्णुधर्मोत्तर. २/७३/४-५ परा.मा. २, भाग २, पृ. २१० एवं प्राय.वि.पृ. १२०*)

२. अथ पापात्मनां नरकेष्वनुभूतदुःखानां तिर्यग्योनयो भवति। अतिपातकिनां पर्यायेण सर्वाः स्थावरयोनयः महापतकिनां च कृमियोनयः। अनुपातकिनां पक्षियोनयः। उपपातकिनां जलजयोनयः। कृतजातिभ्रंशकराणां जलचरयोनयः। कृतसंकरीकरणकर्मणां मृगयोनयः। कृतापात्रीकरणकर्मणां पशुयोनयः। कृतमलिनीकरणकर्मणां मनुष्येष्वस्पृश्ययोनयः। प्रकीर्णेषु प्रकीर्णा हिस्रांः क्रव्यादा भवन्ति। (*विष्णु धर्मसूत्र ४४/१-१०*)

३. अथ नरकाभिभूतदुःखानां तिर्यक्त्वमुत्तीर्णानां मनुष्येषु लक्षणानि भवन्ति।
(*वि.ध.सू. ४५/१*)

**– इति प्रथमोध्याय –**

ओ३म्

द्वितीय अध्याय

# पातकों का वर्गीकरण एवं प्रायश्चित्त विधान

- प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार पातकों का स्मृतियाँ
- पञ्चमहापातकों का वर्णन
- हत्या सम्बन्धित प्रायश्चित्त विधान
- सुरापान सम्बन्धित प्रायश्चित्त विधान

## द्वितीय अध्याय

# पातकों का वर्गीकरण एवं प्रायश्चित्त विधान

## १. विभिन्न प्रायश्चित्तीय कर्मों के वर्गीकरण का आधार

धर्मसूत्रों व स्मृतियों के अनुसार पापों के वर्गीकरण का आधार इस प्रकार है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने पापों के वर्गीकरण की दो कोटियाँ दी है।

**पतनीय पाप**— वे पाप जिनसे जातिच्युतता की प्राप्ति होती है।

**अशुचिकर पाप**— वे पाप जिनसे जातिच्युतता नहीं प्राप्त होती किन्तु अशुचिता प्राप्त होती है।

आपस्तम्ब के अनुसार पतनीय पाप इस प्रकार है—

### (क) पतनीय पाप

सोने का स्तेय, ब्राह्मण की हत्या, पुरुष का वध, वेदाध्ययन का त्याग, गर्भ की हत्या, माता और पिता के योनिसंबन्ध वाली स्त्रियों (माता की बहन, पिता की बहन) तथा उनकी पुत्रियों (मौसी की पुत्री, मामा की पुत्री, बुआ की पुत्री, चाचा की पुत्री) के साथ मैथुन, सुरापान तथा उन लोगों के साथ संभोग जिनसे संभोग करना निषिद्ध है। ये सभी पतन करने वाले दुराचरण है।[१] अथवा माता, (बड़ी बहिन आदि) श्रेष्ठ स्त्रियों की सखियों तथा पिता आदि की प्रिय स्त्रियों अथवा दूसरे व्यक्ति की विवाहिता पत्नी के साथ मैथुन पतन का कारण

---

१. स्तेयमाभिशंस्त्यं पुरुषवधो ब्रह्मोज्झं गर्भशातनं मातुः पितुरिति।
योनिसम्बन्धे सहात्पत्ये स्त्रीगमनं सुरापानमसंयोगसंयोगः ।।

(*आपस्तम्ब ध० सू० १/७/२१/८*)

होता है।[१] इसके अतिरिक्त अन्य अधर्मों का निरन्तर आचरण भी पतन का कारण होता है।[२] आपस्तम्ब का कथन है कि कुछ लोगों के मत से किसी गुरु की पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से संभोग पतनीय नहीं है।[३]

## (ख) अशुचिकर पाप

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार अशुचिकर पाप कृत्य ये है। तीनों उच्चवर्णों की स्त्रियों के साथ यौन सम्बन्ध अपवित्रता का कारण होता है।[४] अथवा जिनके मांस का भक्षण निषिद्ध है उने मांस का भक्षण अशुचिकर होता है।[५] अथवा कुत्ते का, मनुष्य का, गांवो के मुर्गो, सूअरों और शवभक्षी पशु पक्षियों का मांस भक्षण अशुचिकर होता है।[६]

आपस्तम्ब के अनुसार मनुष्य के मलमूत्र को खाना अशुचिकर है।[७] शूद्र का उच्छिष्ट खाना, आर्यो का अपपात्र चाण्डाल आदि की स्त्रियों से मैथुन अशुचि का कारण होता है।[८] कुछ धर्मज्ञ इन अशुचिकर कर्मों को भी पतनीय आचरण मानते है।[९] आपस्तम्ब का कथन है कि वर्णित पाप कृत्यों के अतिरिक्त अन्य दुष्कृत्य भी अशुचिकर समझे जाने चाहिए।[१०]

बौधायन के अनुसार पापों को पतनीय, उपपातक तथा अशुचिकर नामक तीन कोटियों में विभाजित किया है।

## (क) पतनीय पाप

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार पतनीय कर्म इस प्रकार है। बौधायन के कथन में पतनीय पाप जिनसे पतन या वर्ण की हानि होती है। समुद्र की यात्रा करना, ब्राह्मण की सम्पत्ति या धरोहर रखी हुई वस्तु हड़प लेना, भूमि के सम्बन्ध में झूठी गवाही देना, सभी प्रकार की वस्तुओं का क्रय विक्रय करना,

---

१. गुर्वीसखिं गुरुसखिं च गत्वाऽन्यांश्च परतल्पान्।। *(वही १/७/२१/९)*
२. अधर्माणां तु सततमाचारः।। *(आपस्तम्ब ध० सू० १/७/२१/८)*
३. नाऽगुरुतल्पे पततीत्येके।। *(वही १/७/२१/१०)*
४. शूद्रगमनमार्यस्त्रीणाम्।। *(आप० ध० सू० १/७/२१/१३)*
५. प्रतिनिषिद्धानां मांसभक्षणम्।। *(वही १/७/२१/१४)*
६. शुनो मनुष्यस्य च कुक्कुटसूकराणां ग्राम्याणां क्रव्यादसाम्।। *(वही १/७/२१/१५)*
७. मनुष्याणां मूत्रपुरीषप्रशानम्।। *(वही १/७/२१/१६)*
८. शूद्रोच्छिष्टमपपात्रगमनं चाऽऽर्याणाम्।। *(आप० ध० सू० १/७/२१/१७)*
९. एतान्यपि पतनीयानीत्येके।। *(वही १/७/२१/१८)*
१०. अतोऽन्यानि दोषवन्त्य शुचिकराणि भवन्ति।। *(वही १/७/२१/१९)*

(चाहे वह निषिद्ध हो या न हो) शूद्र की सेवा करना, शूद्र स्त्री में गर्भाधान करना, इस प्रकार शूद्र से (अपनी शूद्रा पत्नी से भी पुत्र के रूप में) उत्पन्न होना आदि पतनीय कर्मों की श्रेणी में आते है।[१]

## (ख) उपपातक

बौधायन के अनुसार उपपातक इस प्रकार है जिन स्त्रियों से संभोग वर्जित है उनका संभोग माता की सखी, गुरु अर्थात् पिता की सखी, अपपात्र स्त्री, तथा पतिता स्त्री के साथ मैथुन करना, जीविका के लिए चिकित्सा करना, अनेक लोगों के लिए यज्ञ कराना, मन्च पर अभिनयादि कला दिखाकर जीविका चलाना, नृत्य, गीत अभिनय आदि की शिक्षा देना, जीविका के लिए गाय या भैंस पालना तथा अन्य इसी प्रकार के दुष्कर्म करना, किसी कन्या को (संभोग द्वारा या उसके किसी दोष की अफवाह उड़ाकर) दूषित करना ये सभी उपपातक है।[२] अन्त में बौधायन ने अशुचिकर पापों का वर्णन इस प्रकार किया है।

## (ग) अशुचिकर पाप

बौधायन के अनुसार जुआ खेलना, आभिचारिक अनुष्ठान करना, अग्निहोत्र न करने वाले व्यक्ति का खेत में गिरे अन्न को एकत्र कर जीवन वृत्ति चलाना, समावर्तन संस्कार होने के बाद भी भिक्षा मांग कर जीविका निर्वाह करना, समावर्तन के बाद चार मास से अधिक गुरु के यहाँ निवास करना और नक्षत्रों का निर्देश कर ज्योतिष द्वारा जीविका निर्वाह करना ये सभी अशुद्धि उत्पन्न करने वाले कर्म है।[३]

गौतम धर्मसूत्र के पतनीय के अन्तर्गत पञ्च महापातको एवं आपस्तम्ब

---

१. समुद्रसंयानम्। ब्रह्मस्वन्यासापहरणम्। भूम्यनृतम। सर्वपण्यैर्व्यवहरणम्। शूद्रसेवनम्। शूद्राभिजननम्। तदपत्यत्वं च। एषामन्यतमत्कृत्वा चतुर्थकालामितभोजिनस्स्युस्सव नानुकल्पम्। स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वषैस्तदपहन्ति पापम्।।
*(बौ० ध० सू० २/१/२)*

२. अगम्यागमन, गुर्वीसखीं गुरुसखीमपपात्रां पतितां च गत्वा भेषजकरणं ग्रामयाजनं रङ्गोपजीवनं नाट्याचार्यता गोमहिषीररक्षणं यच्चाऽन्यदप्येवंयुक्त कन्यादूषणमिति।।
*(बौ० ध० सू० २/१/५)*

३. द्यूतमभिचारोऽऽनाहितानयेरूञ्धवृत्तिता समावृत्तस्य भैक्षचर्या तस्य चैव गुरुकुले वास ऊर्ध्व चतुर्भ्यों मासेभ्यस्तस्य चाऽध्यापनं नक्षत्रनिर्देशश्चेति।। *(वही २/१/८)*

तथा वसिष्ठ द्वारा वर्णित पापों को सम्मिलित कर दिया और कुछ अन्य पापों को भी जोड़ दिया है। गौतम के अनुसार पतनीय कर्म इस प्रकार है।

## (क) पतनीय पाप

गौतम के अनुसार कथनानुसार ब्राह्मण हत्या, निषिद्ध सुरा का पान करने वाले, गुरु (पिता, आचार्य) की स्त्री से संभोग करने वाले, मातृपक्ष में पांचवी पीढ़ी के भीतर की और पितृपक्ष में सात पीढ़ी के भीतर की भगिनी आदि स्त्रियों के साथ यौन सम्बन्ध रखने वाला, ब्राह्मण के स्वर्ण की चोरी करने वाला, नास्तिक, निरन्तर निन्दित कर्म करने वाले, पतित व्यक्ति का त्याग न करने वाले और निर्दोष व्यक्ति का त्याग करने वाले, ये सभी पतित होते है।[१]

गौतम के मत से दूसरे व्यक्ति को इन पातक कर्मों में प्रेरित करने वाले भी पतित होते है।[२] और पतित के साथ पूरे एक वर्ष तक उठने बैठने वाला भी पतित हो जाता है।[३] और मृत्यु के बाद अपने पुण्य कर्मो के फल से वञ्चित हो जाना भी पतन है।[४] स्त्री गर्भपात कराने पर निम्नवर्ण के पुरुष के साथ सम्बन्ध करने से भी पतित होती है।[५]

## महापातक के समान पाप

गौतम ने कुछ पापों को महापातक के समान माना है। झूठी गवाही देना, राजा के कानों तक पहुँचने वाली चुगुली करना, गुरू (पिता, आचार्य) के विषय में असत्य दोषारोपण करना ये महापातक के समान है।[६]

## (ख) उपपातक

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार लघु पापों अर्थात् उपपातक का वर्णन इस प्रकार है। उपपातक का दोष उन व्यक्तियों को लगता है जो श्राद्ध भोजन कराने के लिए अयोग्य बताये गये व्यक्तियों में दुर्बाल (गंजेसिर वाले) से पहले गिनाये गये है। गाय की हत्या करने वाला, वेद भूल जाने वाले, इनके लिए यज्ञ करने

---

१. ब्रह्महसुरापानगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसम्बन्धागस्तेननास्तिकनिन्दित-कर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः।। *(गौ० धू० सू० ३/३/१)*

२. पातकसंयोजकाश्च।। *(वही ३/३/२)*

३. तैश्चाब्दं समाचरन्।। *(वही ३/३/३)*

४. तथा परत्र चासिद्धिः।। *(वही ३/३/५)*

५. भ्रूणहानि हीनवर्णसेवायां च स्त्री पतति।। *(गौ० धू० सू० ३/३/९)*

६. कौटसाक्ष्यं राजगमि पैशुनं गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि।। *(वही ३/३/१०)*

वाले, मैथुन द्वारा ब्रह्मचर्य भंग करने वाले और उपनयन की अवधि बीतने के कारण सावित्री मन्त्र से पतित व्यक्ति। इत्यादि कर्म उपपातक कर्मों की श्रेणी में आते है।[१]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार पापियों की कोटियाँ तीन है। जिनका वर्णन इस प्रकार है। एनस्वी, महापातकी एवं उपपातकी।[२]

## (क) एनस्वी

वसिष्ठ के कथनानुसार एनस्वी वे हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है सूर्यास्त के समय सोने वाले, सूर्योदय के समय सोने वाले, काले नाखूनों वाले, काले दांतो वाले, बड़ी बहन के अविवाहित रहते छोटी बहन से विवाह करने वाले, किसी ऐसी स्त्री से जिसकी छोटी बहन पहले विवाहित हो, विवाह करने वाले, बड़े भाई के गृह्य अग्नि प्रज्ज्वलित करने से पहले ही गृह्य अग्नि का आधान करने वाले, बड़े भाई के सोमयज्ञ करने से पहले ही सोमयज्ञ करने वाले, जिस व्यक्ति का छोटा भ्राता उससे पहले सोमयज्ञ कर चुका हो, जिस बड़े भाई का विवाह हो जाने के बाद विवाह किया हो, जिस छोटे अपने बड़े भाई के विवाह  से पहले ही विवाह किया हो, या बड़े भाई को पैतृक सम्पत्ति का अंश मिलने से पहले ही अपना अंश प्राप्त किया हो ये समस्त कर्म वसिष्ठ ने एनस्वी पाप के अन्तर्गत गिनाये है।[३] जिनका वर्णन आपस्तम्ब में हुआ है। अन्तर केवल इतना है कि वसिष्ठ ने आपस्तम्ब के ब्रहमोज्झ (वेदत्यागी), जो उनके अनुसार पतनीय है को एनस्वी माना है।

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार महापातक का वर्णन इस प्रकार है।

## (ख) महापातक

वसिष्ठ के अनुसार महापातक पांच है–

गुरु की शय्या को अपवित्रकरना, सुरापान, भ्रूण (विद्वान ब्राह्मण) की हत्या, ब्राह्मण के हिरण्य का स्तेय (सोने की चोरी) एवं पतित से संसर्ग।[४]

---

१. अपऽक्त्यानां प्राग्दुर्बालाद् गोहन्तृब्रहमध्नतन्मन्त्रकृदवकीर्णीपतितसावित्रीकेषूपपातकम्।। *(वही ३/३/११-२२)*

२. वसिष्ठ धर्म सूत्र १/१९-२३

३. अभिनिम्रुक्ताभ्युदितकुनखिश्यावदाग्रदिधिषुदिधिषूपतिपर्याहितपरीष्टपरिवित्तपरिविन्नपरिविविदानेषु चोत्तरोत्तरस्मिन्नशुचि कर निर्वेषो चोतरोतर स्मिन्नशुचि कर निर्वेषो गरीयान् गरीयान्। *(आप० ध० सू० २/५/१२-२२)*

४. गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूणहत्या ब्राह्मणसुवर्णाहरणं पतितसंयोगश्च।।*(वसिष्ठ ध० सू० १/२०)*

### (ग) उपपातक

वसिष्ठ ने उपपातक की गणना इस प्रकार की है। वसिष्ठ का कथन है कि उपपातकी ये है—वैदिक अग्निहोत्र का त्याग, गुरु को (अपने अपराध से) कुपित करना, नास्तिक (नास्तिकों के यहां जीविका का अर्जन करना है या जो सोमलता का विक्रय।[१]

धर्मसूत्रों में विहित पापों के वर्गीकरण पापकर्मों की अधिकता अल्पता अथवा कितना अधिक व कम हानिप्रद है। इसके आधार पर किया गया है। मनु ने पापों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है।

मनु ने पापों की छः कोटियां दी है। महापातक, उपपातक, जातिभ्रंश, संकरीकरण, अपात्रीकरण एवं मलिनीकरण।

## १. महापातक

मनु ने महापातकों की संख्या पांच बतायी है। १. ब्रह्महत्या, २. निषिद्ध मद्य का पीना, ३. ब्राह्मण के सुवर्ण को चुराना, ४. गुरु की भार्या के साथ संभोग करना, ५. इन (चारों में से किसी एक) के साथ भी एक वर्ष तक संसर्ग में रहना यह पांच महापातक है।[२]

### (क) ब्रह्महत्या के समान पापकर्म

जातिश्रेष्ठता के लिए असत्य भाषण, राजा से (दूसरों के मृत्युकारक) चुगलखोरी, गुरु से असत्य कहना ये ब्रह्महत्या के समान है।[३]

### (ख) मद्यपान के समान पापकर्म

पढ़े हुए वेद का (अभ्यास नहीं करने से) विस्मरण, वेद की निन्दा करना, गवाही में असत्य कहना, मित्र की हत्या, निन्दित तथा अभक्ष्य पदार्थों का भोजन ये छः मद्यपान के समान है।[४]

---

१. योगीत्रनपविध्येदुरूं च यः प्रतिदघुन्यान्नास्तिको नास्तिकवृतिः सोमं च विक्रीणीयादित्युप-पातकानि। *(वही १/२३)*

२. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महन्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह।। *(मनु ११/५४)*

३. अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्या।। *(मनु ११/५५)*

४. ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट्।। *(मनु ११/५६)*

**(ग) सुवर्ण स्तेय के समान पापकर्म–**

ब्राह्मण सुवर्ण के अतिरिक्त धरोहर को हड़पने वाला और मनुष्य, घोड़ा चांदी, भूमि, हीरा, मणि चुराने वाला सुवर्ण चुराने के समान है।[१]

**(घ) गुरु अंगनागमन के समान पापकर्म–**

स्वयोनि (सहोदरबहन); कुमारी, चाण्डाली, मित्र तथा पुत्र की स्त्री में वीर्यपात अर्थात उनके साथ संभोग करना। ये गुरु की पत्नी के साथ संभोग करने के समान है।[२]

**(ङ) उक्त चारों महापातकियों के साथ संसर्ग–**

पञ्च महापातकों के समान बताये गये कर्मों के क्रम में चार महापातकियों के साथ संसर्ग करने के समान अन्य कोई कर्म वर्णित नहीं है।

## २. उपपातक

मनु ने उपपातकों का वर्णन इस प्रकार किया है जो महापातक से कम अर्थात् हल्के माने जाते है। गोवध, अयाज्य याजन, परस्त्री गमन, आत्मविक्रय, गुरु, माता और पिता का त्याग, अर्थात् उसकी सेवा शुश्रूषा नहीं करना। ब्रह्मयज्ञ, (वेदाध्ययन), स्मार्त अग्नि और पुत्र का त्याग पुत्र को संस्कृत तथा भूषणादि से अलंकृत नहीं करना।[३] परिवित्ति तथा परिवेत्ता को कन्यादान देना और यज्ञ कराना।[४] कन्यादूषण, सूद लेना, व्रत को नष्ट करना, तड़ाग, उद्यान व सन्तान को बेचना।[५] व्रात्य भाव बान्धवो का त्याग, वेतन लेकर पढ़ाना, वेतन देकर

---

१. निक्षेपस्यापहरणं नराश्वस्जतस्य च।
भूमिवज्रमणीनां च रूपमस्तेयसमं स्मृतम्।। *(मनु ११/५७)*

२. रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः।। *(मनु ११/५८)*

३. गोवधनोऽयाज्यसंयाज्य पारदार्यात्यविक्रयाः।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च।। *(मनु ११/५९)*

४. परिवित्तिताऽनुजेऽनुढे परिवेदनमेव च।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम्।। *(मनु ११/६०)*

५. कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्।
तड़ागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः।। *(मनु ११/६१)*

पढ़ाना, अविक्रिय सौदों को बेचना।[१] मनु के अनुसार सब आकरों (सोना आदि धातुओं की सब खानों) में राजाज्ञा से अधिकार होना, बड़े-बड़े यन्त्रों को चलाना, औषधियों की हिंसा, स्त्रियों की कमाई खाना, अभिचार कर्म करना एवं वशीकरण।[२]

ईन्धन के लिए हरे पेड़ों को गिराना, अपने लिए क्रियारम्भ करना और निंदित, त्याज्य लहसुन आदि पदार्थों को इच्छापूर्वक खाना।[३] (शास्त्रानुसार) अधिकार होने पर भी यज्ञ नहीं करना, चोरी करना, ऋण नहीं चुकाना। निंदित शास्त्रों को पढ़ना और कुशीलव का कर्म करना।[४] धान्य, सुवर्ण, आदि घातु तथा पशु की चोरी करना, मद्यपान करने वाली द्विज स्त्री के साथ संभोग करना, स्त्री, शूद्र, वैश्य, तथा क्षत्रिय का वध करना, और नास्तिकता इन सब पाप कर्मों को मनु ने उपपातक के रूप में माना है।[५]

## ३. जातिभ्रंशकर पाप

मनु के अनुसार तीसरा पाप को जातिभ्रष्ट करने वाला पाप माना है। जिनका वर्णन इस प्रकार है– ब्राह्मण को पीड़ित करना, नहीं सूंघने योग्य वस्तु को सूंघना, मद्य को सूंघना, कुटिलता और अप्राकृतिक मैथुन करना ये प्रत्येक कर्म जातिभ्रष्ट करने वाले होते है।[६]

## ४. संकरीकरण कारक पाप

मनु के अनुसार जो कर्म वर्ण संकर उत्पन्न करते है, वे कर्म इस प्रकार है– गधा, कुत्ता, मृग, हाथी, अज, भेड़, मछली, सांप और भैंसा इनमें से प्रत्येक

---

१. व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च।
भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः।। *(मनु० ११/६२)*

२. सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम्।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च।। *(मनु० ११/६३)*

३. इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्।
आत्मार्थे च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा।। *(मनु० ११/६४)*

४. अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया।। *(मनु० ११/६५)*

५. धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्री निषेवणम्।
स्त्रीशूद्रविट् क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम्।। *(मनु० ११/६६)*

६. ब्राह्मणस्य रूजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः।
जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्।। *(मनु० ११/६७)*

को मारना भी मनुष्य को वर्ण सङ्कर करने वाला है।[१]

## ५. अपात्रीकरण

मनु के अनुसार अपात्रीकरण अर्थात् किसी को शुभ कार्य के अयोग्य ठहराना होता है ये निम्न प्रकार से होता है। मनु का कथन है जिससे दान नहीं लेना चाहिए। उससे दान लेना, व्यापार, शूद्र की सेवा और असत्य बोलना, मनुष्य को अपात्र करने वाले है।[२]

## ६. मलिनीकरण पाप

मनु के अनुसार मलिनीकरण अर्थात् गन्दा करना ये निम्न प्रकार हैं। मनु का कथन है कि कृमि, कीट तथा पक्षियों का वध करना, मद्य के साथ लाये पदार्थ का भोजन, फल लकड़ी तथा फूल को चुराना, और (साधारण अनिष्टकारक कष्टादि में भी) अधीरता, ये प्रत्येक कर्म मलिन करने वाले होते है।[३]

याज्ञवल्क्य के अनुसार पाप दो कोटि के माने गये है। महापातक और उपपातक।

### १. महापातक

याज्ञवल्क्य के अनुसार महापातक ब्राह्मण हत्या करने पर, सुरापीने वाला, ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने वाला तथा गुरुपत्नी से भोग करने वाला ये महापातकी होते है और इनके साथ निवास करने वाला भी महापातकी होता है।[४]

### २. उपपातक

याज्ञवल्क्य ने महापातक का वर्णन करने के बाद उपपातक है। (हल्के

---

१. खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा।
संकरीकरणं शेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ *(मनु० ११/६८)*

२. निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम्।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्।। *(वही ११/६९)*

३. कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्य च मलावहम्।। *(मनु० ११/७०)*

४. ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः।
एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत्।। *(याज्ञ० ३/२२७)*

पापों) का वर्णन स प्रकार किया है। कौन कौन से कर्म उपपातक के अन्तर्गत आते है। याज्ञल्क्य ने इस सब कर्मों का वर्णन विस्तारपूर्वक दिया है। याज्ञवल्क्य ने उपपातक की संख्या इक्यावन दी है। जिनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है।

गौवध, व्रात्यता, स्तेय, ऋण न लौटाना, अग्निहोत्र न करना, न बेचने योग्य वस्तु को बेचना, सहोदर जेठे भाई के अविवाहित रहते स्वयं विवाह करना।[१] वेतन लेने वाले अध्यापक से पढ़ना तथा वेतन लेकर पढ़ाना, परस्त्री का भोग, सहोदर छोटे भाई के विवाहित होने पर स्वयं अविवाहित रहना, नमक बनाना, वार्धुष्य (निषिद्ध ब्याज लेना)।[२]

स्त्री का वध, शूद्र का वध, वैश्य और क्षत्रिय का वध, निषिद्ध धन का उपार्जन, नास्तिकता, व्रतलोप, पुत्रों को बेचना।[३] धान्य (कांसा सीसा आदि) कुप्य, पशुओं की चोरी, अयाज्य व्यक्तियों के यहां यज्ञ करना, निर्दोष पिता, माता एवं पुत्र का त्याग, तालाब, उद्यान, उपवन आदि बेचना।[४] किसी कन्या का संदूषण, परिविन्दक का यज्ञ कराना, कुटिलता व्रत का लोपी।[५] केवल अपने ही लिए भोजन आदि बनाना, सुरा पीने वाली स्त्री का उपभोग, स्वाध्याय का त्याग, पुत्र का त्याग, (संस्कार न करना) चाचा, मामा आदि बान्धवों का त्याग।[६]

याज्ञवल्क्य के अनुसार ही भोजनार्थ ईधनके लिए हरे वृक्ष को काटना, स्त्री की हिंसा और औषध से जीविका चलाना, घातक हथियार बनाना व्यसन, स्वयं को बेचना।[७] अथवा शूद्र की सेवा, नीच से मित्रता, हीन कोटि की स्त्री

---

१. गोवधो व्रात्यता स्तेयमृणानां चानपक्रिया।
अनाहिताग्निताडपण्यविक्रयः परिवेदनम्।। *(वही ३/२३४)*

२. भृतादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा।
पारदार्य पारिवित्त्यं वार्धुष्यं लवणक्रिया।। *(वही ३/२३५)*

३. स्त्रीशूद्रविट् क्षत्रवधो निन्दितार्थोपजीवनम्।
नास्तिक्यं व्रतलोपश्च सुतानां चैव विक्रयः।। *(वही ३/२३६)*

४. धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम्।
पितृमातृसुतत्यागस्तड़ागारमविक्रय।। *(वही ३/२३७)*

५. कन्यासंदूषणं चैव परिविन्दकायाजनम्।
कन्या प्रदानं तस्यैव कौटिल्यं व्रतलोपनम्।। *(वही ३/२३८)*

६. आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्री निषेवणम्।
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च।। *(वही ३/२३९)*

७. इन्धनार्थ द्रुमच्छेदः स्त्रीहिंसौषधजीवनम्।
हिंस्रयन्त्रविधानं च व्यसनान्यात्मविक्रय।। *(वही ३/२४०)*

का उपभोग, किसी आश्रम में न रहना, दूसरे के अन्न से जीवन चलाना।[१] निन्दित शास्त्रों का अध्ययन, सोने आदि की खान पर अधिकार और पत्नी का विक्रय इन सबमें प्रत्येक को उपपातक माना है।[२] याज्ञवल्क्य के कथनानुसार अधिकांश उपपातकों का वर्णन मनु में पाये जाते है किन्तु कुछ छूट भी गये है। याज्ञवल्क्य का कथन है कि कुछ उपपातकों के बार-बार करने से मनुष्य पतित हो जाता है। याज्ञवल्क्य ने प्रकीर्ण पापों को भी उपपातकों में माना है।

पाराशर ने पापों के वर्गीकरण के विषय में कोई विशेष वर्णन नहीं किया है। पापों का वर्गीकरण पाराशर ने पाराशर स्मृति में कही भी स्पष्ट नहीं किया है केवल पापों के प्रायश्चित का वर्णन किया है।

## २. पञ्च महापातक

### परिभाषा

धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र ने, वसिष्ठ धर्मसूत्रों में महापातक को प्राणहारी पाप के रूप में माना है। मनु, याज्ञल्क्य ने महापातक को, जीवन को नष्ट कर देने वाले पापों में गिना है जिन पापों को करने से मनुष्य मृत्यु को प्राप्त करके ही पाप से मुक्त हो सकता है।

धर्मसूत्रों के अनुसार स्मृतियों के अनुसार पांच महापातकों को वर्णन इस प्रकार है।

### (क) ब्रह्महत्या

ब्रह्महत्या या वध शब्द का प्रयोग उस कर्म के लिये होता है। जिसके करने से तुरन्त या कुछ समय उपरान्त बिना कोई अन्य कारण उपस्थित हुए जीवन की हानि होती है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने वध की परिभाषा इस प्रकार दी है। ब्राह्मण या किसी की मृत्यु के लिए चार प्रकारों से वधिक का कारण हो सकता है यथा जो कर्म करने के लिए उत्तेजित करता है, जो कर्म करने में सहायक होता है, तथा जो कर्म करता है व तीनों ही उसके फलों के स्वर्ग

---

१. शूद्रप्रेष्यं हीनसंख्या हीनयोनिनिवेषण।
तथैवानाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता।। *(याज्ञ० ३/२४१)*

२. असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता।
भार्याया विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम्।। *(वही ३/२४२)*

या नरक में समान रूप से भागी होते है।[१] जो कर्म के सम्पादन में सबसे अधिक योगदान देता है वह विशेष फल का भागी होता है।[२] आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कथन है वेदज्ञ या सोमयरू के लिए दीक्षित क्षत्रिय एवं वैश्य की हत्या भी हत्यारे को ब्रह्म हत्या का अपराध लगाती है। किसी ब्राह्मण के अज्ञात लिंङ्ग भ्रूण तथा आत्रेयी नारी की हत्या भी ब्रह्म हत्या ही है।[३] वसिष्ठ धर्मसूत्र ने भी आपस्तम्ब के कथन का समर्थन किया है।[४]

बौधायन एवं गौतम धर्मसूत्र ने ब्रह्महत्या ने पृथक रूप से वर्णन नहीं किया है। मनु ने भी ब्रह्महत्या का वर्णन पृथक रूप से नहीं दिया है। मनु ने भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र का समर्थन किया है। याज्ञवल्क्य ने अपने कथन में ब्रह्महत्या को स्पष्ट करते हुए कहा है– जहाँ बहुत से व्यक्ति किसी एक उद्देश्य को लेकर अस्त्र-शस्त्रसज्जित खड़े हों यदि वहाँ उनमें से किसी एक व्यक्ति की हत्या कोई व्यक्ति करता है तो सभी उस हत्या के अपराधी होते है। याज्ञवल्क्य ने गुरु पर मिथ्या दोषारोपण वेद की निन्दा, मित्र की हत्या एवं पठित वेद एवं शास्त्र का आलस्य वश विस्मरण इन सबको ब्रह्म हत्या के समान माना है।[५]

याज्ञवल्क्य ने निमित्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है यह वह घातक है जो ब्राह्मण की सम्पत्ति छीनकर उसे पीटकर या धमकी देकर उसे कुपित करता है तथा जिसकी उपस्थिति में और जिसके कारण वह कुपित ब्राह्मण अपने को मार डालता है तथा यदि कोई व्यक्ति ऐसे ब्राह्मण बालक को मार डालता है जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो तो यह भी ब्रह्महत्या ही है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है कि यदि ब्राह्मण आततायी आग लगाने, विष देने या खेत उजाड़ने की इच्छा से आता है तो आत्मरक्षार्थ कोई उसका विरोध कर सकता है किन्तु यदि वह आक्रामक ब्राह्मण मर जाता है और

---

१. प्रयोजयिता मन्ता कर्तेति स्वर्गनरकफलेषुः कर्मसु भागिनः।। *(आप० ध० सू० २/२/२९/१)*

२. यो भूय आरभते तस्मिन् फलविशषेः।। *(वही २/२/२९/२)*

३. पूर्वयोर्वर्णर्वेदाध्यायं हत्वा सवनगतं वाऽभिशस्त।।
ब्राह्मणमात्रं च।। गर्भं च तस्याऽविज्ञातम्।।
आत्रेयीं च स्त्रियम्।। *(आप० ध० सू० १/९/२४/६-९)*

४. ब्राह्मणी चात्रेयी हत्वो सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ।। *(व० ध० सू० २०/३४)*

५. गुरुणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दा सुहृद्वधः।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम्।। *(याज्ञ० १/९/२३८)*

आत्मरक्षार्थी को उसे मार डालने की कोई इच्छा न हो तो वह आत्मरक्षार्थी ब्रह्महत्या का अपराधी नहीं होता है।

उपर्युक्त वध के प्रकार के अवलोकन से ज्ञात होता है कि हत्या में भी विभिन्न कारण हो सकते है जैसे धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों से अलग अग्नि पुराण में पांच प्रकार के वध बताये है। प्रायश्चित्त विवेक में पांच प्रकार के वध बताये है। कर्त्ता, प्रयोजक, अनुमन्ता, अनुग्राहक एव निमित्त। आपस्तम्ब ने ब्रह्महत्या में चार कारणों का वर्णन किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में दो प्रकार की ब्रह्महत्या का वर्णन है। मनु ने भी याज्ञवल्क्य की तरह दो कारण बताये है इससे ज्ञात होता है कि मनुष्य कई प्रकार से ब्रह्महत्या का हत्यारा बन जाता है चाहे वह हत्या उसने खुद न की हो।

ब्रह्महत्या से केवल एक ब्राह्मण का ही नाश नहीं होता अपितु उस ब्राह्मण के अन्दर निहित वेद आदि शास्त्रों का ज्ञान भी अभिनष्ट हो जाता है। जिससे सम्पूर्ण मानवता का अज्ञान दूर किया जा सकता था। इसी प्रकार एक गर्भ के नाश से भी उस अव्यक्त प्राणी में निहित जो अनन्त सम्भावनायें थी। जिनको विकसित कर समाज के अनेक कार्य साधित हो सकते थे उसका हम समूल नाश कर देते। इस प्रकार इस ब्रह्महत्या के पाप को सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने महापातक की कोटि में रखा है।

## (ख) सुरापान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार सुरापान का वर्णन इस प्रकार है सुरापान को महापातक माना है। धर्मसूत्रों ने सुरापान महापातक के विषय में पृथक रूप से वर्णन नहीं किया है।

## सुरा का अर्थ

सोम और सुरा शब्द की सिद्धि में धातु की समानता है। तथापि दोनों शब्दों के प्रयोग विषय के परिशीलन से एक बहुत बड़ा अन्तर परिलक्षित होत है।[१] सुरा का कोषकार Distillation, spritous, Liquor, Wine मद्य अर्थ

---

१. (क) सोम णञ् अभिणवे मनिन्

(ख) सुरा णुञ् अभिणवे क्रन टाप्॥

करते हैं। सोम का अभिषुत रस, सोम, पौधा, चन्द्रमा, जल आदि अर्थ उपलब्ध होता है।[१]

## सुरा का तात्पर्य

मनु के मतानुसार सुरा भोजन का मल है।[२] और यह तीन प्रकार की होती है। १. जो गुड़ या सीरा से बने। २. जो आटे से बने एवं जो मधूक या मधु से बने।[३] सभी तीन उच्च वर्णों को आटे से बनी सुरा का पान करना निषिद्ध है और उनको इसके सेवन से महापातक लगता है। सभी आश्रमों के ब्राह्मणों लिए मद्य के सभी प्रकार वर्जित है किन्तु गौडी (गुड़ निर्मित) और माध्वी (मधु निर्मित) प्रकार की सुरा के सेवन से ब्राह्मण को उपपातक लगता है। महापातक नहीं।

शूद्र किसी भी प्रकार की सुरा का प्रयोग कर सकते हैं। सभी वर्णों के वेदपाठी ब्रह्मचारी को सभी प्रकार की सुरा निषिद्ध है। मनु ने सुरापान के लिए लिंग अन्तर नहीं बताया है और प्रथम तीन उच्च वर्णो के लिए इसे वर्ज्य माना है।[४]

याज्ञवल्क्य में सुरापान का निषेध उन बच्चों के लिए, जिनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ रहता तथा अविवाहित कन्याओं के लिए माना है।[५] याज्ञवल्क्य कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सुरापान करने वाली पत्नी पति के लोकों को नहीं जाती और इस लोक में कुक्करी या शूकरी हो जाती है। यद्यपि शूद्र को सेवन मना नहीं है, किन्तु उसकी पत्नी को ऐसा नहीं करना

---

१. (क) सुरा -Distillation, spritouos liquor.
A.A. Mocdonal Sanskrit English Dictionary P. 355
(ख) सुरा -To distill, spritouos liquor wine.
M.M. Williams - Sanskrit English Dictionary, P. 1235
(ग) सुरा - मद्य भेद - वाचसपत्यम् *(पृ० ५३१८)*
(घ) सुरा - चणक, मद्य - शब्दकल्पद्रुम भाग ५, *(पृ० ३८२)*

२. सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा मलमुच्यते।
तस्माद् द ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च्च न सुरा पिबेत्।। *(मनु ११/९३)*

३. गौड़ी पैष्टी च माध्वी चं विज्ञेया त्रिविधासुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः।। *(मनु ११/९४)*

४. मनु० ११/९३

५. अयं च सुरानिपोधोऽनुपनीतस्यानूढायाश्च कन्याया भवत्येव।
*(इति याज्ञ० स्मृति। मिताक्षरा पृ० ५२९)*

चाहिए।[१] धर्मशास्त्र के अनुसार सुरापान का तात्पर्य सुरा को गले से नीचे उतार देना। यदि किसी व्यक्ति के ओष्ठों ने ओष्ठों ने केवल सुरा का स्पर्श मात्र किया हो या यदि सुरा मुख में चली गयी हो किन्तु व्यक्ति उसे उगल दे तो यह सुरापान नहीं कहा जायेगा अर्थात् महापातक नहीं कहा जायेगा। व्यक्ति को सुरा-स्पर्श के कारण एक हल्का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

अन्य, वेद में सुरा शब्द कई बार आया है। इसे द्यूत के समान ही पापमय माना गया है। सम्भवतः हि मधु या किसी अन्य मधुर पदार्थ से बनती थी। यह उस सोमरस से भिन्न है जो देवों को अर्पित होता था तथा जिसका पान सोमयाजी ब्राह्मण पुरोहित करते थे।[२] शतपथ ब्राह्मण में सोम और सुरा की भिन्नता स्पष्टरूपेण वर्णित है। इस तरह 'सोम' और सुरा प्रजापति के दो अन्न है। सत्य, यश, श्री और ज्योति सोम है तथा अनृत, पाप एवं अन्धकार सुरा है।[३] "एते अन्धसी" यहां द्विवचन के प्रयोग से सोम और सुरा दोनों के एक ही स्थान पर प्रयुक्त होने से इस बात की स्पष्ट प्रतीति होती है कि सोम और सुरा दोनों पृथक्-पृथक् है। एक नहीं। इसके साथ ही सत्य, यश, श्री, जोति को सोम तथा अनृत, पाप और अन्धकार को सुरा कहा गया है। इस प्रकार सोम और सुरा के परस्पर सर्वदा विरुद्ध होने से सोम को सुरा कहना सूर्य के अस्तित्व को नकारने जैसी बात है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र व गौतम धर्मसूत्र के अनुसार सभी तीन उच्च वर्णो को आटे से बनी सुरा का पान करना निषिद्ध है।[४] और उनको इसके सेवन से महापातक लगता है। सभी आश्रमों के ब्राह्मणों के लिए मद्य के सभी प्रकार वर्जित है।[५] वसिष्ठ का कथन है कि ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य की सुरापान करने वाली पत्नी पति के लोको को नहीं जाती और इस लोक में कुक्करी या शूकरी

---

१. पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत्।
इहैव सा शुनी गृध्री सूकरी चोपजायते। *(याज्ञ० ३/२५६)*

२. ऋग्वेद *(१/११६/७; १/१९१/१०)*

३. प्रजापतेर्वा द्वे अन्धसी यत् सोमश्च सुरा च।
सत्यं यशः श्री ज्योतिः सोमोऽनृतं पाप्मा तमः सुराः।। *(मा० शा० ब्रा० ५/१/२/१०)*

४. शुक्लवाचो मद्यं नित्यं ब्राह्मणः।। *(गौ० ध० सू० २/२५)*

५. सर्व मद्यमपेयम्। *(आप० ध० सू० १/५/२१)*

हो जाती है।[१]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है सुरा पान करना दुष्कर्म माना जाता है। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने अलग-अलग पदार्थों से बनी सुरा का पान करना पाप को ग्रहण करना माना है। सुरापान औषधि के रूप में भी किया जाता रहा है। परन्तु जब व्यक्ति इससे नशा करके दुष्कर्म करे तो वह सुरा औषधि के रूप में नहीं मानी जाती। अर्थात् उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि किसी भी सुरा का पान करना चारों वर्णों को पाप का भागी बनाता है। इसकी निवृत्ति के लिए कठिन प्रायश्चित्त व्यवस्था है। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने सुरापान को महापातक माना है।

## (ग) स्तेय की परिभाषा

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार स्तेय की विभिन्न प्रकार से परिभाषायें दी हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार स्तेय की परिभाषा यह है– "एक व्यक्ति दूसरे की सम्पत्ति के लोभ एवं (बिना स्वामी की सम्मति से) उसके लेने से चोर हो जाता है चाहे वह किसी भी स्थिति में क्यों न हो।"[२] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के मत से यदि कोई बीजकोषों में पकते हुए अनाजों (यथा मुग्द, माष एवं चना) की थोड़ी मात्रा खेत से ले लेता है वह चोरी नहीं, या बैलगाड़ी में जाते हुए कोई अपने बैलों के लिए थोड़ी सी घास ले लेता है तो वह चोरी के अपराध में नहीं फँसता।[३]

वसिष्ठ ने स्तेय की परिभाषा इस प्रकार दी है कि जो व्यक्ति ब्राह्मण-सुवर्ण हरण करता है वह महापातक के अन्तर्गत होता है।[४]

मनु ने स्तेय की परिभाषा इस प्रकार की हैं सुवर्ण की चोरी करने वाला ही महापातक के अन्तर्गत आता है।[५] मनु के मतानुसार ब्राह्मण के सुवर्ण के अतिरिक्त धरोहर हड़पने वाले और मनुष्य (दास-दासी) घोड़ा, चांदी, भूमि, हीरा,

---

१. या ब्राह्मणी च सुरापी न तां देवाः पतिलोकं नयन्तीहैव
सा चरति क्षीणपुण्याप्सु लुग्भवति शुक्तिका वा।। *(ब० ध० सू० २१/११)*

२. यथा कथा च परपरिग्रहमभिमन्यते स्तेनो ह भवतीति।। *(आप० ध० सू० १/१०/२८/१)*

३. शम्योषा युग्मघासो न स्वामिनः प्रतिषेधयन्ति।। *(वही १/१०/२८/२)*

४. वसिष्ठ २०/४१

५. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महन्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह।। *(मनु० ११/५४)*

मणि चुराने वाला सुवर्ण के समान है।[१]

मनु एवं याज्ञवल्क्य ने केवल 'स्तेय' (चौर्य) या स्तेय (चोर) शब्द का प्रयोग किया है किन्तु स्तेय के प्रायश्चित्त के विषय में लिखते हुए मनु एवं याज्ञवल्क्य ने यह विशेषता जोड़ दी कि उसे सोने की चोरी के चोर का अपराध होना चाहिए। याज्ञवल्क्य के अनुसार ब्राह्मण के सोने की चोरी का चोर होना चाहिए।[२]

याज्ञवल्क्य ने एक अन्य विशेष्ज्ञता भी जोड़ दी है कि चुराया हुआ सोना तोल में कम से कम सोलह माशा होना चाहिए, नहीं तो महापातक सिद्ध नहीं हो सकता।[३]

अन्य ने स्तेय की परिभाषा इस प्रकार दी है। कात्यायन ने स्तेय उसे कहा है ''जब कोई व्यक्ति गुप्त या प्रकट रूप से दिन या रात में किसी को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर देता है तो वह चोरी कहलाती है।३ यही परिभाषा व्यास की भी है। अपनी योगसूत्र व्याखा में वाचस्पति ने स्तेय को इस प्रकार परिभाषित किया है। कि किसी सम्पत्ति ले लेना जो शास्त्र सम्मत न हो वह स्तेय है।[४] गौतम, बौधायन, पाराशर ने स्तेय की परिभाषा पृथक रूप से नहीं की है।

गौतम के मत से कोई व्यक्ति (बिना अनुमति एवं बिना चौर्य अपराध में फँसे) गौओं के लिए एवं श्रौत या स्मार्त अग्नियों के लिए घास, ईंधन पुष्प या पौधें (जो घेरो से न रक्षित हो) ले सकता है। मानों वे उसी की सम्पत्ति या फल पुष्प आदि हों।[५] मनु ने भी गौतम के समान कहा हैं उन्होंने एक बात यह भी जोड़ दी है कि तीन उच्च वर्णों का कोई भी यात्री, यदि पाथेय घट गया हो (बिना दण्ड के भय से) किसी दूसरे के खेत से दो ईखे दो मूलियां

---

१. निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च।
भूमिवज्रमणीनां च रूक्मस्तेयसमं स्मृतम्। *(मनु० ११/५७)*

२. 'सुवर्णस्तेयकृत', ब्राह्मणस्वर्णहारी। *(मनु० ११/९९, याज्ञ० ३/२५७)*

३. ..........अतः षोडशमाषात्मक सुवर्णपरिमित हेमहरण एव महापातकित्वम्..........। *(याज्ञ० स्मृति मिताक्षरा पृ० ५३६)*

३. कात्यायन० ८१०

४. ''स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्''।। *(योगसूत्रव्याख्या २/३)*

५. गोग्न्यर्थे तृणमेधान्वीरूद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापारिवृतानाम्।। *(गौ० ध० सू० १२/२५)*

ले सकता है।[१]

उपर्युक्त स्तेय की परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि महापातक प्रत्येक वस्तु को चुराने पर किसी वर्ण के व्यक्ति के घर में चोरी करने पर नहीं लगता मनु एवं याज्ञवल्क्य ने महापातक (स्तेय) में किसी विशेष वर्ण एवं किसी विशिष्ठ वस्तु के स्तेय में प्रविधान किया है। मनु ने कहा है कि जब कोई व्यक्ति सुवर्ण धातु को चुराता है तो वह महापाप से ग्रस्त हो जाता है। याज्ञवल्क्य ने इन्हीं का समर्थन करते हुए यह और कहा है कि अगर वह व्यक्ति केवल ब्राह्मण के सुवर्ण को अर्थात् ब्राह्मण के यहाँ से चोरी करें तो वह महापातक माना जाता है। 'स्तेय' आचार से केवल व्यक्तिगत हानि ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र को इनके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। 'स्तेय' से सामूहिक अनर्थ होने के कारण ही इसको महापातक की कोटि में रखा है। सूत्रकार एवं स्मृतिकार दोनों ही ने इस पाप को महापाप अर्थात् महापातक माना है।

## ४. गुरु अंगनागमन

### गुरु अंगनागमन का अर्थ

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार गुरु और अंगनागमन का अर्थ अलग-अलग बताया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार गुरु का अर्थ पिता एवं आचार्य आदि से और अंगनागमन शब्द के स्थान पर आपस्तम्ब धर्मसूत्र 'गुरुतल्पगमन' शब्द का अर्थ गुरु की भार्या के साथ संभोग करना। यहाँ गुरु केवल आचार्य के अर्थ में लिया गया है।

बौधायन ने भी गुरुतल्पगमन का अर्थ गुरु की पत्नी का संभोग करना बताया है। गौतम के अनुसार (वेद का) गुरु गुरुओं में सर्वश्रेष्ठ है, पिता आदि पूज्य जनो में आचार्य श्रेष्ठ होता है किन्तु कतिपय आचार्यों का मत है कि माता (सभी पूज्य जनों में) श्रेष्ठ होती है।[२] गौतम धर्मसूत्र ने गुरुतल्पगमन का अर्थ गुरु पत्नी गमन से किया है। इस पाप को महापातक के अन्तर्गत माना है।

---

१. द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके।
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति।। *(मनु० ८/३४१)*

२. आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणां मातेत्येके (मातेत्येके)।। *(गौ० धू० सू० २/५६)*

वसिष्ठ ने इस पाप को गुरुतल्प गुरु की शय्या या पत्नी की संज्ञा दी है।[१] वसिष्ठ ने अपराधी को गुरुतल्पग जो गुरु की शय्या को अपवित्र करता है।[२]

मनु एवं याज्ञवल्क्य ने अनुसार गुरु का मौलिक अर्थ है 'पिता'।[३] पराशर का कथन है कि गुरु का मुख्य अर्थ पिता जैसा कि याज्ञवल्क्य ने कहा है। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों ने गुरु का अर्थ आचार्य आदि से लेकर ही गुरुतल्पगमन को महापातक माना है।

अन्यों में प्रायश्चित्तमयूख ने प्रायश्चित्त प्रकरण एवं प्रायश्चित्त विवेक के दोषों को बताकर मत प्रकाशित किया है कि वेदाध्यापक गुरु की पत्नी के साथ सम्भोग भी एक महापातक है।[४] इस विषय में इन्होंने याज्ञवल्क्य के कथन का समर्थन किया है।[५]

उपर्युक्त दी गयी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार गुरु अर्थात् आचार्य आदि की पत्नी के साथ संभोग ही महापातक के रूप में माना गया है। गुरु अंगनागमन को महापातक की श्रेणी में इसलिए रखा गया है क्योंकि इसके आचरण से केवल एक व्यक्ति ही नहीं बल्कि उसके परिवार और समाज को भी उसके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। व्यक्ति केवल अपने को ही नहीं, अपितु समस्त समाज को दुषित करता है क्योंकि इसमें उस व्यक्ति की ही नहीं बल्कि गुरु में श्रेष्ठ गुरु की पत्नी और गुरु

---

१. गुरुतल्पं सुरापान भ्रूणहत्या ब्रह्मणसुवर्णापहरणंपतितसंयोगश्च।।
*(वसिष्ठ ध० सू० १/१०)*

२. गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुद्धत्याञ्जलावाधयाय दक्षिणा मुखो
गच्छेद्यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयम्।। *(वसिष्ठ ध० सू० २०/१३)*

३. निषेकादीनि कर्माणिः यः करोति यथा विधि।
सम्भावयत चान्नेन स विप्रो गुरुरूच्यते।। *(मनु० २/१४२)*
स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।
उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः।। *(याज्ञ० १/३४)*

४. प्रायश्चित्त मयूख पृ० ७३

५. आचार्यपत्नी स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः।
लिंङ्ग छित्त्वा वधस्तस्य सकामायाः स्त्रिया अपि।। *(याज्ञ० ३/२३३)*

दोनों को ही अपमानित करता है। वह केवल एक गुरु पत्नी का ही संभोग नहीं करता बल्कि वह अपने आचार एवं कर्तव्य को भी भ्रष्ट कर देता है। इस महापातक से सामूहिक अनर्थ होते है समाज में अनाचार फैलता है इसलिए इस पाप को सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने महापातक माना है।

## ५. महापातकी संसर्ग

### महापातकी की परिभाषा

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार महापातकी की परिभाषा इस प्रकार है गौतम और वसिष्ठ स्मृतिकारों में मनु, याज्ञवल्क्य को महापातकी की परिभाषा में इस प्रकार का कथन है कि जो लगातार एक साल तक चार महापातकियों का अति संसर्ग करता है अथवा उनके साथ रहता है तो वह महापातकी हो जाता है।[१]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों ने संसर्ग का अर्थ जब कोई व्यक्ति पातकी के साथ एक ही वाहन या एक ही शय्या का सेवन करता है या पातकी के साथ एक ही पंक्ति में खाता है उसे संसर्ग कहते है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र व बौधायन ने महापातकी संसर्ग के विषय में पृथक रूप में वर्णन नहीं किया है। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार जब कोई व्यक्ति पातकी से आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करता है या करती है जैसे पातकी को वेद की शिक्षा देता है या उससे वेदाध्यय करता है या उसकी पुरोहिती करता है या उसे अपने लिए पुरोहित बनाता है या उसके साथ सम्भोग सम्बन्ध या वैवाहितक सम्बन्ध स्थापित करता है तो वह व्यक्ति उसी क्षण महापातक का अपराधी हो जाता है।

पराशर का कथन है कि साथ बैठने या सोने या एक ही वाहन के प्रयोग करने या उससे बोलने या एक ही पंक्ति में खाने से पाप उसी प्रकार

---

१. तैश्चाब्दं समाचरन्।। *(गौतम ध० सू० ३/३/३)*
ब्राह्मेण वा यौनेन वा।। संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौन्न तु यानासनांहानादिति।। *(वसिष्ठ ध० सू० १/२१/२२)*
सम्वत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात्।। *(मनु० ११/१८०)*
एभिस्तु संवसेद्यो वै संवत्सरं सोऽपि तत्समः।
कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिंचनाम्।। *(याज्ञ० ३/२६१)*

एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुँच जाते है (संक्रमित हो जाते है) जैसे जल पर तेल।[१] पराशर का कथन है कि कृतयुग में पतित से बातचीत करने से ही व्यक्ति पतित हो जाता है। त्रेता मेउससे स्पर्श करने से द्वापर में उसके घर में बने भोजन को ग्रहण से तथा कलि में पापमय कृत्य के वास्तविक सम्पाद से पाप भागी होता है।[२]

अन्य शास्त्रकारों ने संसर्ग के प्रकारों का भी वर्णन किया है। बृहस्पति ने नौ प्रकार के संसर्गो का उल्लेख किया है जिनमें प्रथम पाँच प्रकार के हल्के कहे गये है और शेष चार गम्भीर, यथा– एक ही शय्या या आसन पर बैठना पातकी के साथ एक ही पंक्ति में बैठकर खाना, पातकी के भोजन बनाने वाले भाण्डों (बर्तनों) में भोजन बनाना या उसके द्वारा बनाये गये भोजन का सेवन, उसकी यज्ञीय पुरोहित या उसे अपना यज्ञीय पुरोहित बनाना, उसका वेदाचार्य बनना उसे स्वयं अपना वेदाचार्य बनाना, उससे सम्भोग करना तथा उसके साथ ही पात्र में भोजन करना।

प्रायश्चित्त प्रकरण के लेखक के मत से संसर्ग तीन प्रकार का होता है उत्तम, मध्यम, निकृष्ट प्रथम में ये चार आते है –यौन (यौनि सम्बन्ध, विवाह), स्रौव (अर्थात् वह जो पापी का पुरोहित बनने या पापी को पुरोहित बनाने से उत्पन्न होता है), मोरव (वेद पढ़ना या पढ़ाना), एक पात्र भोजन (एक ही पात्र में साथ-साथ खाना)।

मध्यम में पांच प्रकार हैं –एक ही वाहन, एक ही आसन, एक ही शय्या, या चादर का सेवन, एक पंक्ति में खाना, एवं साथ-साथ वेदाध्ययन करना (सहाध्ययन)।

निकृष्ट के कई प्रकार है यथा घुल मिलकर बात करना, स्पर्श करना, एक ही पात्र में भोजन बनाना, उससे दान लेना आदि। अध्यापन तभी दुष्कृत्य माना जायेगा जब वह वेद से सम्बन्धित हो। इसी प्रकार भोजन का सम्बन्ध है दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम जैसे वैदिक यज्ञों से।

---

१. आसनाच्छयनाद्यानात्सम्भाषात्सहभोजनात्।
सङ्क्रामन्तीह पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि।। *(पारा० १२/७७)*

२. त्यजेद् देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत्।
द्वापरे कुलमेकं तु कुर्त्तारं तु कलौ युगे।। *(पारा० १/२५)*
कृते सम्भाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च।
द्वापरे त्वन्मादाय कलौ पतति कर्मणा। *(वही १/२६)*

उपर्युक्त महापातकों के वर्णन के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पाप कर्मो की तीव्रता या अतीव्रता या उनके घोरत्व से इनकी महापाप या उपपाप आदि में बाँटा जाता है। जैसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय गुरु अंगनागमन एवं महापातकी संसर्ग को महापाप की कोटि में रखा गया है। इसके आधार से केवल व्यक्तिगत हानि ही नहीं अपितु समुचे समाज और राष्ट्र को इनके दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। ब्रह्महत्या से केवल ब्राह्मण का नाश नहीं होता। अपितु राष्ट्र उस ब्राह्मण के अन्तर निहित वेद आदि शास्त्रों को ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। जिससे सम्पूर्ण मानवता का अज्ञान दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार एक गर्भ के नाश से भी उस अव्यक्त प्राणी में निहित जो अनन्त सम्भावनायें थी।

जिनकों विकसित कर समाज के अनेक साधन हो सकते थे, उसका हम समूल नाश कर देते है। इस प्रकार सुरापान स्तेय गुरुतल्पगमन, एवं महापातकी संसर्ग से भी सामूहिक अनर्थ होते हैं। इसलिए इन पापों को सूत्र एवं स्मृतिकारों ने महापातक की कोटि में रखा है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति जिस प्रकार के व्यक्ति के साथ रहता है वह उस व्यक्ति को अधिक से अधिक अच्छी, बुरी आदतों को अपना लेता है। कहा भी गया है "जैसी संगति होत है वैसा होत स्वभाव", अर्थात जिस प्रकार के मनुष्य के साथ आप ज्यादा समय व्यतीत करते है या तो आप उसकी आदतों में ढल जाते है या फिर आप उसे अपने व्यवहार अनुसार बदल देते है। ऐसे ही यदि कोई व्यक्ति महापातक के दुष्कर्म से ग्रस्त है या उसने ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय गुरु अंगनागमन इनमें से कोई भी दुष्कर्म किया है और आप उसके साथ अधिक समय व्यतीत करते है या आप उसके साथ रहते हैं तो आप भी उतने ही पाप के भागी है जितना की वह महापातकी और आपको भी वही प्रायश्चित्त करना पड़ेगा जो वह महापातक से ग्रस्तव्यक्ति पाप से छुटकारा पाने के लिए करना है।

## ४. (क) हत्या में प्रायश्चित्त का विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, गुरु, श्रोत्रिय, नारी, जीव गौं, शिल्पी, कारीगर, मित्र, नपुसंक के वध में विभिन्न प्रकार के प्रायश्चित्त हैं। चारों वर्णों के व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रायश्चित्त चारों आश्रमों अर्थात् ब्रह्मचारी आदि के लिए प्रायश्चित्त विधानों का वर्णन, समाज में नारी के लिए प्रायश्चित्त विधान वर्णन प्राप्त होता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार हत्या में अनेक प्रकार के प्रायश्चित का वर्णन इस प्रकार है जैसे तप, जप, दान, अनुताप, व्रत, यात्रा, स्नानादि, होम जैसे प्रायश्चित्त कर्म बतलाये है। जिनसे मनुष्य हत्या के पाप से छुटकारा पा सकता है। धर्मसूत्रकारों ने एवं स्मृतिकारों ने इसका विस्तार पूर्वक वर्ण किया है। जिसका वर्णन इस प्रकार है।

## १. ब्रह्महत्या में प्रायश्चित्त विधान

**ब्राह्मण का अर्थ :–**

ब्राह्मण शब्द बृहि वृद्धौं धातु से 'जो बढ़ता है'। इस अर्थ में ब्रह्मशब्द की सिद्धि होती है जिसका की मेदिनीकोष के अनुसार– ब्रह्मसंधात, ब्राह्मण समूह एवं वेदभाग यह अर्थ होता है। भरतमुनि के अनुसार ब्रह्म वेद को कहते है उसका जो अध्ययन करता है उसे ब्राह्मण कहते है अथवा "ब्राह्मणों विप्रस्य प्रजापतेर्वा अपत्यम्" अर्थात् जो ब्रह्मा या विप्र या प्रजापति की सन्तान है। उसे भी ब्राह्मण कहते है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार यदि ब्राह्मण को छोड़कर किसी अन्य वर्ण ने ब्राह्मण का वध किया हो तो वह युद्ध में जाकर दोनों पक्षों के बीच खड़ा हो जाय वहाँ सैनिक उसका वध करें तो वह पाप से शुद्ध हो जाता है।[१] अथवा अपने शरीर से रोम त्वचा मांस निकालकर अग्नि से हवन कराये और स्वयं को अग्नि में झोंक दे।[२]

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार जो व्यक्ति अनजाने में ही ब्राह्मण की हत्या करता है वह धर्मानुसार पापयुक्त हो जाता है। ऋषियों ने अनजान में ही ब्राह्मण वध करने पर मुक्ति का विधान किया है। किन्तु जानबूझकर वध करने वाले व्यक्ति को पाप से मुक्ति नहीं मिलती है।[३] ब्राह्मण का वध करने वाले को

---

१. प्रथमं वर्ण परिहाप्य प्रथमं वर्ण हत्वा सङ्ग्रामं।
गत्वाऽवतिष्ठेत् तत्रैनं हन्तुः।। *(आप० ध० सू० १/९/२५/१२)*

२. अपि वा लोमानि त्वचं मांसमिति हार्वाये त्वाऽग्नि प्रविशेत्।। *(वही १/९/२५/१३)*

३. मतिपूर्ण ध्नतस्तस्य निष्कृतिर्नोपलभ्यते।। *(बौ० ध० सू० २/१/६)*

प्राणायाम् पवित्र करने वाले वैदिक मन्त्रादि, व्याहृतियों, ओंकार तथा अघमर्षण मन्त्रों का बारह रात्रियों, बारह रात्रियों तक योगाभ्यास करते हुए तथा केवल दुग्धाहार करते हुए जप करे।[१] अथवा तीन रात्रियों तक गीले वस्त्रों को पहने हुए कोई आहार न कर केवल वायु पीकर रहते हुए (जप करने पर) शुद्धि हो जाती है।[२]

बौधायन के कथनानुसार ब्राह्मण का हत्यारा कपाल (खोपड़ी) लेकर, चारपाई का एक पाया (दण्ड के स्थान पर) लेकर, गदहे का चर्म धारण कर, वन में निवास करते हुए, श्मशान में मनुष्य की खोपड़ी को ध्वजा की तरह धारण करते हुए, कुटी बनावें और उसी में निवास करें। अपने पाप कर्म की घोषणा करते हुए केवल सात घरों से भिक्षा मांगे, जो कुछ मिले उसी से जीवन धारण करे और कुछ भी भोजन न प्राप्त होने पर उपवास करे।[३] इस प्रकार प्रायश्चित्त करने पर ब्राह्मण हत्यारा पाप से मुक्त हो सकता है। अथवा अश्वमेद्य, गोसव और अग्निष्टुत यज्ञ करे।[४] अश्वमेद्य यज्ञान्त स्नान में अपने को जल में अथवा आप्लुप्त करे।[५]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण का वध करने पर प्रायश्चित विधान इस प्रकार है– यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर ब्राह्मण की हत्या करता है, ब्राह्मण की हत्या करने वाला भोजन त्याग कर दुर्बल शरीर होकर तीन बार अग्नि में कूदे तो उसका प्रायश्चित्त होता है।[६] अथवा युद्ध में रत योद्धाओं का लक्ष्य बनकर प्रायश्चित करे।[७] अथवा बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करे, केवल भिक्षा के लिए ग्राम में प्रवेश करके, हाथ में एक चारपाई का पाया तथा नरकपाल

---

१. प्राणायामान् पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा।।
जपेदघमर्षणं युक्तः पयसा द्वादश क्षपाः।। *(बौ० ध० सू० ४/२/७)*

२. त्रिरात्रं वायुभक्षो वा क्लिन्नवासऽऽप्लुतश्शुचिः।। *(बौ० ध० सू० ४/२/८)*

३. कपाली खट्वाङ्गी गर्दभचर्मवासा अरण्यनिकेतनः श्मशाने ध्वजं शवशिरः कृत्वा कुटीं कारयेतामावसेत् सप्ताऽगाराणि भैक्षं चरेत् स्वकर्माऽऽचक्षाणस्तेन प्राणान्धारयेदलब्धोपवासः।। *(वही २/१/३)*

४. अश्वमेघेन गोसवेनाऽग्निष्टुता वा यजेत्।। *(वही २/१/४)*

५. अश्वमेघावभृथे वाऽऽत्मानं प्लावयेत्।। *(वही २/१/५)*

६. अग्नौ सक्तिर्ब्रह्महनस्त्रिरवच्छातस्य।। *(गौ० ध० सू० ३/४/२)*

७. लक्ष्यं वा स्याज्जन्ये शस्त्रभृताम्।। *(गौ० ध० सू० ३/४/३)*

लेकर अपने कर्म को बताते हुए जीवन व्यतीत करने पर प्रायश्चित्त होता है।[1]

गौतम के कथानुसार यदि हत्यारे के मार्ग में कोई उच्चवर्णों का व्यक्ति (आर्य) आता दिखाई पड़े तो वह मार्ग से हट जाये।[2] दिन में खड़े रहकर, रात्रि में बैठकर तथा प्रतिदिन प्रातः माध्याहन एवं सांय स्नान करके वह (बारह वर्ष में) शुद्ध होता है।[3] अथवा किसी (संकटग्रस्त) ब्राह्मण के प्राण बचाने पर वह पापमुक्त होता है।[4] अथवा ब्राह्मण का धन (चोरों आदि से) वापस लेने के लिए संघर्ष करके तीन बार क्षतविक्षत होने पर प्रायश्चित्त होता है।[5] अथवा अश्वमेघ यज्ञ के अन्त में ऋत्विजों के साथ अवभृथ स्नान करके दोष मुक्त हो जाता है।[6] अथवा किसी भी ऐसे वैदिक यज्ञ के अन्त में, जिसमें अग्निष्टूत् यज्ञ भी सम्मिलित हो, स्नान करने से शुद्धि होती है।[7]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण के वध करने वाले को पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित विधान इस प्रकार है हत्यारा किसी कुल्हाड़ी से अपने बाल, चर्म, रक्त, मांस, मांसपेशियाँ, बसा, अस्थियाँ एवं मज्जा काट काटकर साधारण अग्नि में आहुतियों के रूप में दे और अन्त में अपने को अग्नि में झोंक दें। वसिष्ठ ने इस प्रायचित्त का वर्णन आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं गौतम धर्मसूत्र के तुल्य किया है।[8]

वसिष्ठ के तीन अन्य प्रायश्चितों का वर्णन इस प्रकार है –यदि कोई

---

१. खट्वाङ्गकपालपाणिर्वा द्वादश संवत्सरान्ब्रहमचारी भैक्षाय ग्रामं प्रविशेत्कर्माऽऽचक्षाणः।। *(वही ३/४/४)*

२. पथोऽपक्रामेत्संदर्शनादार्यस्य।। *(वही ३/४/५)*

३. स्थानासनाभ्यां विहरन्सवनेषूदकोपस्पर्शी शुध्येत्।। *(वही ३/४/६)*

४. प्राणलाभे वा तन्निमत्ते ब्राह्मणस्य।। *(वही ३/४/७)*

५. द्रव्यापचये त्र्यवरं प्रतिराद्ध।। *(वही ३/४/८)*

६. अश्वमेधावभृथे वा।। *(गौ० धू० सू० ३/४/९)*

७. अन्ययज्ञेऽप्यग्निष्टुदन्तश्चेत्।। *(वही ३/४/१०)*

८. भ्रूणहाग्निमुपसमाधाय जुहुया यादेताः।।

लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्यु वासम इति प्रथमां। त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति द्वितीयां। लोहित मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयां। मांस

मृत्योर्जुहोमि मांसेनमृत्यु वासय इति चतुर्थी। स्रावानि मृत्योर्जुहोमि स्रावभिर्मृत्युं वासय इति पञ्चमी। मेदो मृत्योर्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय इति षष्ठी। अस्थीनि मृत्योर्जुहोम्यस्थिभिर्मृत्युं इति सप्तमीं। मज्जानं मृत्योर्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इत्यष्टमीमिति। *(वसिष्ठ २०/२६)*

घातक १२ वर्षो का प्रायश्चित करते हुए ब्राह्मण पर आक्रमण करने वालों से युद्ध करता है और उसे बचा लेता है या राजा के लिए युद्ध करता है या ऐसा करने में मर जाता है तो वह तत्क्षण पाप मुक्त हो जाता है और यदि वह युद्धोपरान्त जीवित रहता है तो उसे पूरी अवधि तक प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता।[१] यही बात अपने प्राणों को भयावह स्थिति में डालकर १२ गायों के बचाने में भी पायी जाती है। इसी प्रकार यदि घातक किसी ब्राह्मण के धन को छीनने वाले डाकू से युद्ध करता है और धन बचा लेता है या इस प्रयास में मर जाता है या बुरी तरह घायल हो जाता है तो वह ब्रह्महत्या के महापातक से मुक्त हो जाता है।[२]

मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है–

ब्राह्मण का वध करने वाला व्यक्ति अपने पाप की शुद्धि के लिये कुटिया बनाकर उसके शिर को चिन्ह स्वरूप लेकर भिक्षान्न के भोजन को करता हुआ बारह वर्षो तक वन में निवास करें।[३] यह ब्रह्मघाती है "यह जानने वाला शास्त्रधारियों के स्वेच्छा से निशाना बने, या जलती हुई अग्नि में नीचे शिर करके तीन बार अपने को डाले जिससे मर जावें।[४] अथवा अश्वमेघ यज्ञ करें तथा स्वर्जित, गोमेध, अभिजित्, विश्वजित्, त्रिवृत, अग्निष्टुत् इनमें से कोई एक यज्ञ ब्रह्महत्या करने वाला द्विजाति करे।[५] अथवा स्वल्पाहार करता हुआ जितेन्द्रिय होकर किसी एक वेद को जपता हुआ ब्रह्महत्या के विनाश के लिए सौ योजन (४०० कोश) तक गमन करें।[६] अथवा वेदज्ञाता ब्राह्मण के लिए सर्वस्व को दे देवे, या उसके जीवन पर्यन्त खाने पहनने के लिए या सब सामग्रियों सहित

---

१. राजेर्थे ब्रह्मणार्थे वा संग्रामेभिमुखमात्मानं घातयेत्।। *(वसिष्ठ धर्मसूत्र २०/२७)*

२. त्रिरजितौ वापराद्धः पूतो भवतीति विज्ञायते हि।। *(वसिष्ठ धर्मसूत्र २०/२८)*

३. ब्रह्महा द्वादशः समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्षाश्यात्मविशुद्धयर्थे कृत्वा शवशिरोध्वजम्।। *(मनु० ११/७२)*

४. लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयाऽऽत्मनः।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः।। *(वही ११/७३)*

५. यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा।
अभिजिद्विश्वजिद् भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा।। *(वही ११/७४)*

६. जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ् नियतेन्द्रियः।। *(वही ११/७५)*

घर को देवें।[१] अथवा हविष्यान्ना को खाता हुआ प्रसिद्ध सोते से लेकर (पश्चिम) समुद्र तक जावे, अथवा नियमित भोजन करता हुआ वेद की संहिता को तीन बार जपे।[२]

मनु के कथानुसार ही ब्रह्मघाती मुण्डन कराकर गौओं तथा ब्राह्मणों का हित करता हुआ गाँव के पास गोशाला में पवित्र (साधु आदि के) आश्रम में या पेड़ के नीचे निवास करे।[३] किसी स्थान में रहकर बारह वर्ष तक प्रायश्चित करनेका नियम लिया हुआ ब्रह्मघाती मनुष्य ब्राह्मण या गौ (की रक्षा) के लिए तत्काल प्राणों को छोड़ दे, अथवा उनकी रक्षार्थ प्राणपण से चेष्टा करता हुआ यह मनुष्य जीकर भी बारह वर्ष के समाप्त न होने पर भी ब्रह्महत्या के दोष से छूट जाता है।[४] ब्राह्मण धन के चुराने वालों से निष्कपट तथा यथाशक्ति तीन बार धन को छुड़ाने का प्रयत्न करने पर, या एक दो बार में ही उन चोरों को जीतकर उस चोरित धन को उसके स्वामी ब्राह्मण के लिए देने पर अथवा चुराये हुए अपने धन के बराबर धन देकर उस ब्राह्मण की प्राण रक्षा करने से वह ब्रह्महत्या दोष से छूट जाता है।[५]

मनु द्वारा ही अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों तथा राजाओं के समागम (एकत्रित) होने पर अपने पाप को बतलाकर अवभृथ स्नान करके छूट जाता है।[६] क्योंकि ब्राह्मण को धर्म मूल तथा क्षत्रिय को धर्म अग्रभाग कहा है, इस कारण (वह ब्रह्म धाती पुरुष) उनके एकत्रित होने पर अपने का निवेदन कर

---

१. सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत्।
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम्।। *(वही ११/७६)*

२. हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्।
जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम्।। *(मनु० ११/७७)*

३. कृतवापनो निवसेद् ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः।। *(वही ११/७८)*

४. ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च।। *(वही ११/७९)*

५. त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते।। *(वही ११/८०)*

६. शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते।। *(मनु० ११/८२)*

(अवभृथ स्नान करने से) शुद्ध हो जाता है।[१] इस प्रकार मनु के अनुसार प्रायश्चित्त करके ब्रह्मघाती अपने महापाप से मुक्ति पा लेता है।

याज्ञवल्क्य ने भी मनु के कथन का समर्थन करते हुए ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार किया है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला महापातकी (उसी हत ब्राह्मण के) सिर की खोपड़ी हाथ में लेकर और दूसरी खोपड़ी बाँस के डंडे के ऊपर बाँधकर, अपने किये हुए कर्म को सबसे बताते हुए अल्प भोजन करते हुए बारह वर्ष व्यतीत करने पर शुद्ध होता है।[२] व्याघ्र आदि द्वारा मारे जाते हुए किसी ब्राह्मण के प्राण बचाने, अथवा बारह गायों की प्राणरक्षा करने पर अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान करने पर ब्रह्महत्या के दोष से शुद्ध हो जाता है।[३]

याज्ञवल्क्य के कथनानुसार ही ब्रह्मघाती को बहुत दिनों से किसी दुःसह रोग से पीड़ित ब्राह्मण को अथवा गौ को मार्ग में देखने पर उसको नीरोग करने पर भी ब्रह्महत्या का पातकी शुद्ध हो जाता है।[४] किसी ब्राह्मण का छीना गया सभी धन अपहरणकर्त्ता से (शुद्ध करके) चोट खाकर भी छुड़ाकर ला देते है और उसके निमित्त शस्त्रों से घायल होकर भी जीवित रहता है तो ब्रह्महत्या के पातक से शुद्ध हो जाता है।[५] अथवा 'लोमभ्यः स्वाहा' आदि मन्त्र से क्रमशः लोम से लेकर मज्जा तक (लोम, त्वजा, रक्त, मांस, मेदस्, स्नायु, अस्थि मज्जा) अपने शरीर का होम करे। तो ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।[६] अथवा युद्ध भूमि में (दोनों पक्षों से बाण चलते रहने पर बीच में खड़ा होकर) बाणों

---

१. धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्धयति।। (वही ११/८३)

२. शिरः कपाली ध्वजवान्भिक्षाशी कर्म वेदयन्।
ब्रह्म द्वादशाब्दानि मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात्।। (याज्ञ० ३/२४३)

३. ब्राह्मणस्य परित्राणाद्गवां द्वादशकस्य च।
तथाऽश्वमेधावभृथस्नानाद्वा शुद्धिमाप्नुयात्।। (वही ३/२४४)

४. दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापि वा।
दृष्ट्वा पथि निरातङ्कं कृत्वा तु ब्रह्महा शुचिः।। (याज्ञ० ३/२४५)

५. आनीय विप्रसर्वस्वं हृतं घातित एव वा।
तन्निमित्तं क्षतः शस्त्रैर्जीवन्नपि विशुद्धयति।। (वही ३/२४६)

६. लोमभ्यः स्वाहेत्येवं हि लोमप्रभृति वै तनुम्।
मज्जान्तां जुहुयाद्वाऽपि मन्त्रैरभिर्यथाक्रमम्।। (वही ३/२४७)

को लक्ष्य होकर जीवित रहने पर भी वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।[१]

याज्ञवल्क्य का कथन है कि ब्रह्मघाती को निर्जन स्थान में परिमित भोजन करता हुआ तीन बार सम्पूर्ण वेदों की संहिता का जप करने अथवा अल्पाहार करते हुए सरस्वती नदी के किनारे-किनारे पश्चिम समुद्र तक जाने पर शुद्ध होता है अथवा पात्र (योग्य) व्यक्ति को गौ, भूमि और सोना आदि पर्याप्त धन देने पर ब्रह्महत्या का पापी शुद्ध होता है।

पाराशर स्मृति के अनुसार चारों विद्याओं का विद्वान् भी यदि ब्रह्महत्यारा है तो उसे सेतुबन्ध रामेश्वर जाना ही प्रायश्चित है। वहाँ क्या करे यह बताते हैं। सेतुबंध में चारों वर्णों से भिक्षा मांगे। कुकर्म करने वालों से भिक्षा न मांगे।[२] छाते और जूते से रहित रहे। मैं दुष्कर्मी हूँ महापातक मैंने किया है।[३] मैं ब्रह्म-हत्यारा आप लोगों के घर के दरवाजे पर भिक्षा के लिए खड़ा हूँ। उसे गौओं के पास गाँव और नगरों में रहना चाहिए।[४] तपोवन, तीर्थ और नंदियों के प्रवाह इन स्थानों में अपने पाप को प्रकट करता हुआ पवित्र समुद्र पर पहुँचे।[५] जो कि दशयोजन चौड़ा और सौयोजन लम्बा है, जिसको रामचन्द्र जी की आज्ञा से नल ने बनाया है, उस समुद्र के सेतु को देखकर ब्रह्महत्या दूर करता है।[६]

पाराशर के कथनानुसार ही ब्रह्मघाती सेतु को देखकर विशुद्ध अन्तःकरणवाला वह मनुष्य समुद्र में स्नान करे।[७] यदि इस प्रकार की हत्या

---

१. संग्रामे व हतो लक्ष्यभूतः शुद्धिमवाप्नुयात्।
मज्जान्तां जुहुयाद्वाऽपि मन्त्रैरभिर्यथाक्रमम्।। *(वही ३/२४८)*

२. चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद् ब्रह्मघातके।
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित समादिशेत्।
सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात् सदाचरेत्।। *(पारा० १२/६३)*

३. वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानहवर्जितः।
अहं दृष्कृतकर्मा वै महापातक कारकः।। *(वही० १२/६४)*

४. गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः।
गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च।। *(वही० १२/६५)*

५. तपोवनेषु तीर्थेषु नदी प्रसवणेषु च।
एतेषु ख्यापयन्नेव पुण्य गत्वातु सागरम्।। *(वही १२/६६)*

६. दशयोजनविस्तीर्ण शतयोजनमायतम्।
रामचन्द्र - समादिष्टं नलसञ्चयसञ्चितम्।। *(वही १२/६७)*

७. स्रेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्योपहति।
सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम्।। *(पारा० १२/६८)*

करने वाला पृथिवीपति राजा है, वह अश्वमेघ यज्ञ करे। फिर लौटकर घर आकर रहने के लिये घर में जाय।[1] वहां जाकर नौकर और पुत्रों सहित ब्रह्मभोज करें। चारों विद्याओं के विद्वान् ब्राह्मणों को सौ गौदान करें। इस प्रकार ब्राह्मणों के प्रसाद से ब्रह्महत्या छूट जाती है। और वह मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।[2]

उपर्युक्त प्रायश्चित कर्मों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि हत्या कर्म में कर्त्ता आदि कारणों से ही प्रायश्चित विधान है। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में ब्रह्महत्या का प्रायश्चित अत्याधिक साम्य रखता है। ब्रह्महत्या में कर्त्ता आदि कारणों के अनुसार धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने प्रायश्चित का वर्णन किया है। सभी ने ब्रह्मघाती के लिए भिक्षा, यज्ञ, उपवास, आदि का प्रायश्चित विधान बतलाया है और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का विधान है। इस प्रकार धर्मसूत्रकारों के कथन में प्रायश्चित करने से व्यक्ति महापातक के पाप से छूट सकता है।

स्मृतियों में ब्रह्महत्या पाप के प्रायश्चित हेतुजो उपाय बताये गये है उन्हें मुख्यतः दो धाराओं में विभक्त कर सकते है। प्रथम घोर तपश्चरण द्वारा शरीर नाश तथा द्वितीय किसी ब्रह्मवेत्ता के भरण-पोषण या रक्षण से व्यक्ति पाप मुक्त हो जाता है। इससे यह विदित होता है कि जो ब्रह्मदोषी व्यक्ति है या तो उसका विनाश कर दिया जाये अथवा उस व्यक्ति को ब्राह्मणों के संरक्षण में लगा दिया जाये। इससे महान सामाजिक क्षति से रक्षा हो सकेगी। व्यक्तिगत दृष्टि से भी व्यक्ति उक्त उपायों से अपने अनुतप्त एवं मलिन हृदय को शांत एवं परिष्कृत कर सकता है।

## २. श्रोत्रिय की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार जो (ब्रह्मचर्यक) नियमों का पालन करता

---

१. यजेत वाऽश्वमेधन राजा तु पृथिवीपतिः।
पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थमुपसर्पति।। *(वही १२/६९)*

२. सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणा
ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते।। *(वही १२/७०)*

हुए वेद की किसी एक शाखा का पूरी तरह अध्ययन करता है वह श्रोत्रिय कहलाता है।[१]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार श्रोत्रिय वध करने पर प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार श्रोत्रिय की हत्या करने वाले को वन में कुटी बनाकर, वाणी को रोककर, कुण्डे के ऊपर मनुष्य की खोपड़ी रखकर तथा शरीर का नाभि से घुटने तक का भाग सन के वस्त्र के चौथाई भाग से आच्छादित कर रहे।[२] (ग्राम में प्रवेश करते समय गाड़ी इत्यादि की) दोनों लोकों के बीच का भाग उसका मार्ग होवे।[३] दूसरे व्यक्ति को देखकर मार्ग छोड़कर हट जावे।[४] घटिया किस्म की धातु की पात्र को खर्पर लेकर गाँव में प्रवेश करे।[५] मुझे पापी को कौन भिक्षा देगा ऐसी पुकार लगाते हुए सात घरो में भिक्षाटन करें।[६]

आपस्तम्ब के अनुसार ही इस प्रकार जो कुछ मिले उसी से जीविका निर्वाह करे। भले ही इस प्रकार प्राप्त भोजन अपर्याप्त होवे।[७] यदि सात घरो में भिक्षाटन करने पर कुछ भी न प्राप्त हो तो उपवास करें।[८] इस प्रकार प्रायश्चित करते हुए गायों की रक्षा करे।[९]

बौधायन धर्मसूत्रों में पृथक् रूप से श्रोत्रिय हत्या के प्रायश्चित्त की व्यवस्था नहीं दी गई है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार श्रोत्रिय (वेदज्ञ ब्राह्मण) की हत्या के लिए रहस्य प्रायश्चित्त इस प्रकार है। इस दिन केवल दुग्ध पान उसके बाद दस दिन केवल घृतपान और उसके बाद दस दिन केवल जल पीकर रहे और वह भी दिन में केवल एक बाद। प्रातः काल ग्रहण करे, अपने वस्त्र निरन्तर भिगोये रखे, केश, नख, त्वचा, मांस, रक्त, स्नायु, अस्थि, मज्जा के लिये प्रति

---

१. धर्मेण वेदानामेकैकांशाखामधीत्य श्रोत्रिय भवति।। *(आप० ध० सू० २/३/४)*

२. अरण्यें कुटिं कृत्वा वाग्यतः शवशिरध्वजोऽधर्मशाणोपक्षमधोनाभ्युपरिजान्वाच्छावद्य।। *(वही १/९/२४/११)*

३. तस्य पन्था अन्तरा वर्त्मनी।। *(वही १/९/२४/१२)*

४. दृष्टा चाऽन्यमुत्क्रामेत्।। *(वही १/९/२४/१३)*

५. खण्डेन लोहितकेन शरावेण ग्रामें प्रतिष्ठेत्।। *(वही १/९/२४/१४)*

६. कोऽभिशस्ताया भिक्षामिति सप्ताऽगारं चरेत्।। *(वही १/९/२४/१५)*

७. सा वृत्तिः।। *(वही १/९/२४/१६)*

८. अलब्ध्वोपवासः।। *(वही १/९/२४/१७)*

९. गाश्च रक्षेत्।। *(वही १/९/२४/१८)*

दिन आठ आहुति इस मन्त्र से करे। आत्मा के सुख में मृत्यु के दाढों में होम करता है। **लोमानि आत्यनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि स्वाहा** आदि।[१]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार श्रौखिय हत्या के प्रायश्चित्त विधान की व्यवस्था पृथक् रूप से नहीं की गयी है।

मनु, याज्ञवल्क्य एवं पाराशर ने श्रोत्रिय वध में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन अलग से नहीं दिया है। उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हाता है कि वेदज्ञ ब्राह्मण की हत्या अर्थात् श्रोत्रिय की हत्या करके मनुष्य पाप के फल को भोगता है वह व्यक्ति ब्रह्म हत्या के पापी के समान हो जाता है। अतः व्यक्ति को हमेशा अपने ऊपर संयम रखना चाहिए। अपनी इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य आत्म शुद्धि को प्राप्त करता है और पुनः इस पाप को करने से डरता है। वह पाप से मुक्त हो सकता है।

## ३. गुरु की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

जो वेद आदि शास्त्रों का उपदेश करता है वह गुरु है। देव गन्धर्व, मनुष्यों के द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है वह गुरु है।

धर्म सूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार गुरु की हत्या करने वाले मनुष्य के लिए प्रायश्चित्त का वर्णन करते हुए आपस्तम्ब ने कहा है गुरु की हत्या करने वाले व्यक्ति को आत्रेयी वध करने पर जो प्रायश्चित्त करते है वही प्रायश्चित्त करने चाहिए, जो इस प्रकार हैं गुरु की हत्या करने पर वन में कुटी बनाकर, वाणी को रोककर, कुण्डे के ऊपर के मनुष्य की खोपड़ी रखकर तथा शरीर नाभि से घुटने तक का भाग सन वस्त्र के चौथाई भाग से आच्छादित कर रहें है।[२] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार ही (ग्राम में प्रवेश करते समय गाड़ी इत्यादि की) दोनों लोकों के बीच का भाग उसका मार्ग होवे।[३] दूसरे (आर्य)

---

१. पयाव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमद्भिस्तृतीयं दिवादिष्वेकभक्तिको जलक्लिन्नवासा लोमानि नखानि त्वचं शेणितं स्नाय्वस्थि मज्जानमिति होमा आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमीत्यन्ततः सर्वेषां प्रायश्चित्तं भूणहत्याया। *(गौ० ध० सू० ३/६/६)*

अरण्ये कुटिं कृत्वा वाग्यतः शवशिरध्वजोऽर्धशाणोप क्षमधोनाभ्युपरिजान्वाच्छाद्य। *(आप.ध.सू. १/९/११)*

२. तास्या पन्था अन्तरा वर्त्मनी।।

व्यक्ति को देखकर मार्ग छोड़ कर हट जावे।[१] घटिया किस्म की धातु के पात्र का खर्पर (भिक्षापात्र के रूप में) लेकर गांव में प्रवेश करे।[२] मुझ हत्यारे को कौन भिक्षा देगा, ऐसी पुकार लगाते हुए सात घरों में भिक्षाटन करें।[३] इस प्रकार जो कुछ मिले उसी से जीविका निर्वाह करे। भले ही इस प्रकार भोजन अपर्याप्त होवे।[४] कुछ भी न प्राप्त होवे तो उपवास करें।[५] इस प्रकार प्रायश्चित्त करते हुए गायों की रक्षा करें।[६]

जब गायें गांव से निकलती है और प्रवेश करती है वह उसके लिए भिक्षार्थ ग्राम में दुबारा प्रवेश करने का समय होता है।[७] बाहर वर्ष तक यह प्रायश्चित्त करने के बाद उस शास्त्रोक्त शिष्टाचार को करें जिसके द्वारा पुनः सज्जनों के समाज में प्रवेश करने योग्य हो जाए।[८] अथवा बारह वर्ष तक उपर्युक्त प्रायश्चित्त करने के बाद चारों के मार्ग में कुटी बनावें और चोरों से ब्राह्मणों की अपहृत गायों को छुड़ाने का प्रयत्न करता रहें। तीन बार परास्त होने पर अथवा उन पर विजय पाने पर वह पाप से मुक्त हो जाता है।[९] अथवा अश्वमेघ का अवभृथ स्नान करने पर पाप दूर होता है।[१०]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार व्यक्ति इसी प्रायश्चित्त का आचरण अन्तिम श्वास रहते समय तक करें।[११] उसकी पाप से मुक्ति इस संसार में नहीं होती।[१२] मृत्यु के बाद उस व्यक्ति के पाप दूर हो जाते हैं।[१३]

---

१. दृष्टवा चाऽन्यमुत्क्रामेत्। (*वही १/९/१२-१३*)
२. खण्डेन लोहितकेन शरावेण ग्रामे प्रतिष्ठेत। (*वह १/९/१४*)
३. कोऽभिशस्ताया भिक्षामिति सप्ताऽगारं चरेत्। (*वही १/९/१५*)
४. सा वृत्तिः ।।१६।।
५. अलब्ध्वोपवासः।।१७।।
६. गाश्च रक्षेत्।।१८।। (*वही १/९/१६, १७, १८*)
७. तासां निष्क्रमणप्रवेशने द्वितयों ग्रामेऽर्थः।। (*आप.ध.सू. १/९/१९*)
८. द्वादश वर्षाणि चरित्वा सिद्धः सद्भिस्सम्प्रयोगः।। (*आप.ध.सू. १/९/२०*)
९. आजिपर्थ व कुटिं कृत्वा ब्राह्मणगव्योऽपजिगीषमाणो वसेत्त्रिः प्रतिराद्धोऽपजित्य वा मुक्तः।। (*वही १/९/२१*)
१०. आश्वमेधिंक वाऽवभृथमवेत्य मुच्यते।। (*वही ध. सू १/९/२२*)
११. गुरुं हत्वा श्रोत्रियं वा कर्मसमाप्तमेतेनैव विधिनोत्तमादुच्छ्‌ वासाच्चरेत्।। (*वही ध. सू १/९/२४*)
१२. नास्याऽस्मिल्लोके प्रत्यापत्तिर्विद्यते।। (*वही १/९/२५*)
१३. कल्मषं तु निर्हव्यते।। (*वही १/९/२६*)

बौधायन धर्मसूत्र, गौतम, वसिष्ठ के अनुसार पृथक रूप से कोई प्रायश्चित्त विधान नहीं है वह व्यक्ति चान्द्रायण व्रत को करता हुआ अपने पाप से मुक्त हो सकता है। एवम् स्मृतियों के अनुसार भी प्रस्तुत पाप में कोई प्रायश्चित्त विधान पृथक् रूप से वर्णित नहीं है।

## ४. भ्रूण की हत्या में प्रायश्चित्त का विधान

'भ्रूणयते आशस्यते इति' इस प्रकार की व्युत्पत्ति में घञ प्रत्यय करने पर भ्रूण शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ बालक, स्त्रीगर्भ होता है।

**भ्रूण हत्याः**—भ्रूण हत्या का अर्थ गर्भस्थ शिशु का हनन है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जो व्यक्ति वेद का अध्ययन करने वाले (भ्रूण) का वध करता है वह हत्या के पाप से ग्रस्त हो जाता है और वह व्यक्ति पापी कहलाता है इस पाप से छुटकारा पाने के लिये व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के प्रायश्चित्त करने पड़ते हैं। सूत्रों एवं स्मृतियों में विभिन्न प्रायश्चित्तों का वर्णन किया गया है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार वेद का अध्ययन करने वाले ब्राह्मण (भ्रूण) का वध करने वाले अपना पाप अपना अन्न खाने वाले के ऊपर संक्रमित कर देता है निर्दोष व्यक्ति पाप उस पर झूठा दोषारोपण करने वाले व्यक्ति को मिल जाता है। मुक्त किये गये चोर का पाप राजा के ऊपर तथा याचक का पाप देने की मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले के ऊपर चला जाता है।

बौधायन के अनुसार भ्रूण हत्या का पापी यदि प्रतिदिन व्याहृतियों एवं प्रणव (औंकार) के साथ

१६ प्राणायाम करे तो वह एक मास के उपरान्त भ्रूणहत्सा (विद्वान ब्राह्मण की हत्या) छूट जाती है।[२] यही प्रायश्चित्त वसिष्ठ ने भ्रूणहत्या के लिए बताया है।[३]

---

१. अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि अनेना अभिशंसति।
स्तेनः प्रमुक्तों राजनि याचन्ननृतसङ्करे।। *(आप.ध.सू. १/६/१५)*

२. सव्याहृतिकास्सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृता।। *(बौ.ध.सू. ४/१/२९)*

३. सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मःसात्पुनन्त्यहरहः कृताः। *(वसिष्ठ ध.सू. २६/४ मनु ११/२४८)*

स्मृतिकारों के अनुसार भ्रूणहत्या प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। मनुस्मृति के अनुसार भ्रूणहत्या के पापी को बौधायन व वसिष्ठ द्वारा वर्णित प्रायश्चित्त विधान को करना चाहिए। याज्ञवल्क्य, पाराशर ने भी सूत्रकार एवं मनु का समर्थन किया है।

## ५. क्षत्रिय की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

**क्षत्रिय का अर्थः**—मनु के अनुसार क्षत्रिय का अर्थ जो जनता की रक्षा को कार्य करता है वह क्षत्रिय कहलाता है।[१] अथवा आक्रमण हानि आदि से लोगों की रक्षा करने वाला होने से क्षत्रिय कहा है।[२] ब्राह्मण गन्थों में क्षत्रिय क्षत्र का ही रूप है जो प्रजा का रक्षक होता है।[३]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के कथनानुसार क्षत्रिय की हत्या करने पर प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार क्षत्रिय की हत्या करने पर पाप को दूर करने के लिए एक सहस्त्र गायों का दान करें।[४] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार क्षत्रिय के वध पर नौ वर्ष तक वह ब्रह्मण वध का प्रायश्चित्त करना निहित है या सामान्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कराना चाहिए।[५]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार जानबूझकर क्षत्रिय की हत्या करने पर छः वर्ष तक सामान्य ब्रह्मचर्य और सहस्त्र गौ एवं एक सांड का दान करने पर प्रायश्चित्त होता है।[६]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार क्षत्रिय की हत्या का प्रायश्चित्त विधान स्पष्टरूप से नहीं किया गया है।

मनु के अनुसार क्षत्रिय का वध यदि व्यक्ति अनिच्छापूर्वक करता है तो

---

१. 'क्षदति रक्षति जानन् क्षत्रः' (*मनु स्मृति पृ. ८०*)

२. क्षण्यते हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन स क्षतः (*आ.* ४/११/३८)

३. 'क्षत्रं राजन्यः' (ऐ ८/२/३/४)

क्षत्रस्य वा एतद्वपं यद् राजन्य : (श.ब्रा. ३/१/५/३)

४. क्षत्रियं हत्वा गवां सहस्त्रं वैरयातनार्थ दद्यात्।। (*आप.धू.सू. १/९/२४/१*)

५. नव समा राजन्यस्य ।। (*बौ.ध.सू. २/१/८*)

६. राजन्यवधे षड् वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यवर्षभैकसहस्त्राश्च गां दद्यात्।। (गौ.ध.सू. ३/४/१४)

वह ब्राह्मण अच्छी तरह ब्रतकर एक बैल के साथ सहस्त्र गायों को ब्राह्मण के लिए देवे।[1] अथवा संयमी तथा जटाधारी होकर ग्राम से अधिक दूर पेड़ के नीचे निवास करता हुआ तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त को करें।[2]

याज्ञवल्क्य के अनुसार क्षत्रिय का वध करने पर प्रायश्चित्त कर्त्ता पुरुष एक साँड (प्रौढ़ बछड़ा) के साथ एक हजार गौओं का दान करें अथवा ब्रह्महत्या व्रत तीन वर्ष तक करें।[3] पराशर स्मृति में क्षत्रिय हत्या के प्रायश्चित्त का वर्णन इस प्रकार है जो व्यक्ति

क्षत्रिय को मार दे वह दो अतिकृष्छ्र और बीस गौ की दक्षिणा देने पर शुद्ध होता है।[4]

उपर्युक्त अवलोकन से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति द्वितीय वर्ण के व्यक्ति अर्थात् क्षत्रिय की हत्या करता है वह व्यक्ति महापातक के समान महापातक के पाप का भागी होता है। इस पाप से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को महापातक ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त तीन वर्ष तक करना चाहिए, गौ का दान करें व जटा को धारण करता हुआ इन्द्रियों को वश में करें व्यक्ति बुरे कर्मों से दूर होकर अपने पर संयम रखकर इस पाप को पुनः करने की चेष्टा नहीं करेगा इस तरह वह अपने इस दुष्कृत्य जन्य पाप से छुटकारा पा सकता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि दान तथा तपश्चरण से व्यक्ति क्षत्रियवध के कल्मष से अपने आपको मुक्त कर सकता है।

## ६. वैश्य की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

**वैश्य शब्द का अर्थः**—निरूक्त के अनुसार वैश्य शब्द ''विशः मनुष्यनाम'' उसमें भावार्थ में 'यत्' उसमें स्वाथ्र में अण्। अथवा 'विश्'

---

१. अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्यं द्विजोत्तमः।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः।। (*मनु.* ११/१२७)

२. त्र्यव्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम्।
वसन् दूरतरे ग्रामाद् वृक्षमूलनिकेतनः।। (*वही* ११/१२८)

३. ऋषभैकसहस्रा गा दद्यात्क्षत्रवधे पुमान्।
ब्रह्महत्याव्रतं वापि वत्सरत्रितयं चरेत्।। (*याज्ञ.* ३/२६६)

४. वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत्।
सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्यादगोविशंद्दक्षिणां ददेत्।। (*पारा.* ६/१७)

प्रातिपदिक से अपत्यार्थ 'यञ्' छान्दस प्रत्यय से वैश्य शब्द बना है।[४] जो विविध व्यवहारिक व्यपारों में प्रविष्ट रहता है या विविध विद्याओं में कुशल जन 'वैश्य' होता है।[१]

धर्मसूत्रों और स्मृतियो में वैश्य की हत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है—

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार यदि कोई व्यक्ति वैश्य की हत्या करता है तो उस व्यक्ति को सौ गायों का दान करना चाहिए। जिससे वह पाप से मुक्त हो जाता है।[२]

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार वैश्य की हत्या करने वाले व्यक्ति को तीन वर्ष तक ब्रह्मचर्य का आचरण करने का ही नियम ग्रहण करना चाहिए इस प्रायश्चित्त को करके व्यक्ति वैश्य वध के पाप से छुटकारा पा सकता है।[३]

पराशर के अनुसार जो व्यक्ति वैश्य का वध करता है वह दो अतिकृच्छ्र और बीस गौ दक्षिणा में देने पर शुद्ध होता है।[४]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि वैश्य की हत्या का भी व्यक्ति उतना ही पाप के फल को भोगता है जितना ब्राह्मण की हत्या में लेकिन इस पाप से मुक्ति पाने के लिये धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार इसकी प्रायश्चित्त अवधि कुछ कम और गौदान करने पर इस पाप से व्यक्ति अपने को मुक्त कर सकता है।

इससे विदित होता है कि वैश्य जो समाज का भरणपोषण करने वाला है उसकी हत्या करने वाला व्यक्ति वैश्य के जो दानादि कर्म हैं उनका अनुष्ठान कर पाप मुक्त हो सकता है।

## ७. शूद्र की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

**शूद्र का अर्थः**—व्याकरण के अनुसार शूद्र शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार

---

१. "विशः मनुष्यनाम"। (*निघण्टु* २/३)

२. यो यत्र-तत्र व्यवहारविद्यासु प्रविशति सः 'वैश्यः' व्यवहारविद्याकुशलः जनो वा।" (*मनु.* ३/*पृ.* ८०)

३. वैश्य हते गवां शतं दद्यात्।। (*आप.ध.सू.* १/९/२४/२)

४. तिस्रो वैश्यस्य।। (*बौ.ध.सूत्र* २/१/९)

५. वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत्।
सोऽतिकृच्छ्रद् द्वयं कुर्याद् गोविंशदक्षिणां ददेत्।। (*पारा.* ६/१७)

है। शूद्र की व्युत्पत्ति शुच्-शोकार्थक (भ्वादि) धातु से (शुचेर्दश्च) सूत्र से 'रक्' प्रत्यय उकार को दीर्घ च को 'द' होकर शूद्र शब्द बनता है।[१] ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यही भाव मिलता है। अज्ञान और अविषय से जिसकी निम्न जीवन स्थिति रह जाती है जो केवल सेवा आदि कार्य ही कर सकता है। ऐसा मनुष्य शूद्र होता है।[२]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार शूद्र की हत्या करने वाले के लिये प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र की हत्या करने वाले व्यक्ति को दसगायों का दान करना चाहिए। इस प्रायश्चित्त को करने से वह पाप से शुद्ध हो जाता है।[३]

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र की हत्या करने वाले व्यक्ति एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ प्रायश्चित्त करें। इसको करने पर वह पाप से मुक्त हो जाता है।[४]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र की हत्या करने पर हत्यारे को सामान्य ब्रह्मचर्य का पालन एक वर्ष तक करे तथा दस गायों और एक सांड को दान में देवे।[५]

वसिष्ठ धर्मसूत्र ने शूद्र ही हत्या के प्रायश्चित्त का विधान स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया है।

मनु के अनुसार जो मनुष्य अनिच्छापूर्वक शूद्र का वध करता है वह भी पापी तथा हत्यारा माना जाता है उस पाप से मुक्त होने के लिये ब्राह्मण छः मास तक संयमी तथा जटाधारी होकर ग्राम से अधिक दूर पेड़ के नीचे निवास करता हुआ तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त को करें।[६] अथवा एक्र बैल के साथ सौ गायों को ब्राह्मण को दान करे।[७]

---

१. **शूद्रः**– शोचनीयः शोच्यां स्थितिमापन्नो वा, सेवायां साधुर् अविद्यादिगुणसहितो मनुष्य वा। *(उणा. सू. २/१९ मनु पृ. ८०)*

२. असतो वा एष सम्भूतो यत् शूद्रः असतः अविद्यात्। *(तै. ३/२/३/९)*

३. दश शूद्र।। *(आप.ध.सू. १/९/२४/३)*

४. संवत्सरं शूद्रस्य स्त्रियाश्य।। *(बौ.ध.सू. २/१/१०)*

५. शूद्रं संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यात्।। *(बौ.ध.सू. ३/४/१६)*

६. त्र्यव्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम्।
वसन् दूरतरे ग्रामाद् वृक्षमूलनिकेतनः।। *(मनु ११/१२८)*

७. एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत्।
वृषभैकादश वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः।। *(वही ११/१३०)*

याज्ञवल्क्य ने भी मनु के कथन का समर्थन करते हुए शूद्र की हत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार किया है—शूद्र का वध करने वाला छः मास तक ब्रह्महत्या में विहित व्रत करे अथवा एक साँड के साथ नई ब्यायी दस सवत्सा गौवों को दान करें। इस प्रायश्चित्त को करके शूद्र हत्यारा पाप से मुक्त हो जाता है।[1]

पराशर के अनुसार जो व्यक्ति शूद्र का वध करता है वह जो प्राजापत्य करके और ग्यारह बैल दक्षिणा में देकर शुद्ध होता है।[2]

धर्मसूत्रों से एवं स्मृतियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मनुष्य शूद्र की हत्या करने पर व्रत दान एवं ब्रह्महत्या में विहित प्रायश्चित्त विधान में से एक चौथाई अवधि करने पर पाप से मुक्त हो जाता है।

व्यक्ति की महत्ता एवं उपादेयता को तारतम्य के आधार पर ही तपश्चरण एवं दानादि का विधान हुआ है। जिससे जिस व्यक्ति का हमने नुकसान पहुँचाया है उसकी क्षतिपूर्ति हो सके। ब्राह्मणादि चारों वर्णों के हत्या के प्रायश्चित्त विधान से यही बात परिलक्षित होती है।

## ८. नारी की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

धमसूत्रों एवं स्मृतियों में जिस प्रकार प्रत्येक वर्णों के पुरुषों की हत्या में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन है उसी प्रकार यदि मनुष्य किसी वर्ण विशेष की नारी अथवा किसी भी स्थिति से गुजरती हुई स्त्री की हत्या करता है तो उसका प्रायश्चित्त विधान भी धर्मग्रन्थों में प्राप्त होता है।

आपसतम्ब धर्मसूत्र के अनुसार आत्रेयी (ऋतुस्नाता) ब्राह्मण स्त्री का वध करने वाला अभिशस्त होता है।[3] उस अभिशस्त के लिये प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है पापी व्यक्ति को वन में एक कुटी बनाकर, वाणी को रोककर, कुण्डे के ऊपर मनुष्य की खोपड़ी रखकर तथा शरीर का नाभि से घुटने तक

---

१. वैश्यहाब्दं चरेदेतद् दद्याद्वेकशतं गवाम्।
षण्मासाच्छूद्राप्येतद्धेनूर्दद्याद् दशाथवा।। (*याज्ञ.* ३/२६७)

२. शिल्पिनं कारूकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्।
प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा।। (*पारा* ६/१६)

३. आत्रेयी च स्त्रियम्।। (*आप.ध.सू.* १/९/२४/९)

का भाग सन से वस्त्र के चौथाई भाग से आच्छादित कर रहे।[१] ग्राम में प्रवेश करते समय (गाड़ी इत्यादि) की दोनों लीको के बीच का भाग उसका मार्ग होवे।[२] दूसरे (आर्य) व्यक्ति को देखकर मार्ग छोड़कर हट जावें।[३] घटिया किस्म की धातु के पात्र खर्पर (भिक्षापात्र के रूप में) लेकर गाँव में प्रवेश करें।[४]

आपस्तम्ब के कथनानुसार 'मुझ अभिशप्त को कौन भिक्षा देगा' ऐसी पुकार लगाते हुए सात घरों में भिक्षाटन करें।[५] इस प्रकार जो कुछ मिले उसी से जीविका निर्वाह करे भले ही इस प्रकार प्राप्त भोजन अपर्याप्त होवे।[६] यदि सात घरों में भिक्षाटन करने कुछ भी न प्राप्त हो तो उपवास करें।[७] इस प्रकार प्रायश्चित्त करते हुए गौओं की रक्षा करें।[८] जब गाये गाँव से निकलती है और प्रवेश करती है वह उसके लिए भिक्षार्थ ग्राम में दुबारा प्रवेश करने का समय होता है।[९] बारह वर्ष तक यह प्रायश्चित्त करने के बाद उस शास्त्रोक्त शिष्टाचार को करें जिसके द्वारा वह पुनः सज्जनों के समाज में प्रवेश योग्य हो जाय।[१०]

अथवा (बारह वर्ष तक उपर्युक्त प्रायश्चित्त करने के बाद) चोरी के मार्ग में कुटी बनावें और चोरों से ब्राह्मण की अपहृत गायों को छुड़ाने का प्रयत्न करता रहे, तीन बार परास्त होने पर अथवा उन पर विजय पाने पर वह पाप से मुक्त हो जाता है।[११]

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार आत्रेयी अर्थात् ऋतुस्नाता स्त्री के वध करने पर ब्राह्मण वध में विहित प्रायश्चित्त को करना चाहिए।[२] स्त्री का वध करने

---

१. अरण्ये कुटिं कृत्वा वाग्यतः शवशिरध्वजोऽर्धशाणोपक्षमधोनाभ्युपरिजान्वाच्छाद्य।। (वही १/९/२४/११)

२. तस्या पन्था अन्तरा वर्त्मनी।। (वही १/९/२४/१२)

३. दृष्ट्वा चाऽन्यमुत्क्रामेत्।। (वही १/९/२४/१३)

४. खण्डेन लोहितकेन शरापेण ग्रामे प्रतिष्ठेत्।। (वही १/९/२४/१४)

५. कोऽभिशस्ताया भिक्षामिति सप्ताऽगारंचरेत्।। (आप.ध.सू. १/९/२४/१५)

६. सा वृत्तिः।।१६।।

७. अलब्धवोपवासः।।१७।।

८. गांश्च रक्षेत्।।१८।। (वही १/९/२४/१६-१८)

९. तासां निष्क्रमणप्रवेशने द्वितीयो ग्रामेऽर्थः।। (वही १/९/२४/१९)

१०. द्वादश वर्षाणि चरित्वा सिद्धः सद्भिस्सम्प्रयोग।। (वही १/९/२४/२०)

११. आजिपथे वा कुटिं कृत्वा ब्राह्मण गव्योऽपजिगीषमाणो वसेत्रिः प्रतिराद्धोऽपजित्य वा मुक्तः।। (वही १/९/२४/२१)

१२. ब्राह्मणवदात्रेय्याः।। (वही २/१/१०)

पर एक वर्षतक ब्रह्मचर्य का आचरण करता हुआ जीवन व्यतीत करें।[१] अनात्रेयी के वध करने पर पापी व्यक्ति राजा को एक हजार गाँए और एक साँड पाप को दूर करने के लिए प्रायश्चित्त स्वरूप प्रदान करें।[२]

गौतम के अनुसार यदि कोई व्यक्ति मासिक धर्मोपरान्त स्नान करने वाली स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री अर्थात् अनात्रेयी का वध करे तो वह एक वर्ष का सामान्य ब्रह्मचर्य व्रत करे तथा दस गायों एवं एक साँड का दान करें।[३] यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसी व्यभिचारिणी स्त्री का वध करता है जो नाम मात्र की ब्राह्मणी हो, उस व्यक्ति को नील वृष का दान करना चाहिए।[४] व्यक्ति यदि वश्या का वध करता है तो उस व्यक्ति को प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं होती।[५]

मनु के अनुसार लोभ से ऊँच नीच पुरुष के साथ व्यभिचार करने वाली ब्राह्मणादि चारों वर्णों की स्त्रियों का वध करने पर क्रमशः चर्मपुट (चमड़े का कुप्पा) धनुष बकरा और भेड़ दान करें।[६]

याज्ञवल्क्य के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की ईषद् व्यभिचारिणी स्त्री का वध करने पर प्रायश्चित्त कर्त्ता छः मास तक ब्रह्महत्यारा वाला व्रत करे अथवा एक साँड के साथ नई ब्याही दस सवत्सा गौवों का दान करें।[७] पराशर के अनुसार जो स्त्री की हत्या करता है वह दो प्राजापत्य करके और ग्यारह बैल दक्षिणा में देकर शुद्ध होता है।[८]

---

१. संवत्सरं शूद्रस्य स्त्रियाश्चा।। (*बौ.ध.सू. ११*)
२. अन्यत्राऽऽत्रय्यां वधात्।। (*वही १/१०/४*)
३. अनात्रेय्यां चैवम्।। (*गौ.ध.सू. ३/४/१६*)
शूद्रं संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यात्।। (*गौ.ध.सू. ३/४/१७*)
४. ब्रह्मबन्ध्वां चलनयां नीलः।। (*वही ३/४/२६*)
५. वैशिके न किंचित्।। (*वही ३/४/२७*)
६. जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हऽनवस्थिताः।। (*मनु. ११/१३८*)
७. षण्मासाच्छूद्रहाप्येतद्धेनूर्दद्याद् दशाथवा।। (*याज्ञ. ३/२६७*)
दुर्वत्तवह्मविट् क्षत्रशूद्रयोषः प्रमाप्य तु।
दृति धनुर्वस्तमविं क्रमाद्दधाद्विशुद्धये।। (*याज्ञ. ३/२६८*)
८. शिल्पिनं कारूकं शूदं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्।
प्राजापत्यद्वयं कृत्वां वृषैकादश दक्षिणा।। (*पारा. ६/६*)

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञाता होता है कि व्यक्ति चाहे किसी भी वर्ण या कैसी भी नारी का वध करता है तो उसे ब्रह्महत्या में विहित प्रायश्चित्त विधान को करना पड़ता है जैसे ब्रह्महत्या में १२ वर्ष इसमें छः मास की अवधि बतायी है। व्रत, दान, यज्ञ, आदि को करने से व्यक्ति नारी की हत्या से मुक्त हो जाता है। इससे सूत्र एवं स्मृति ग्रन्थों में नारी की महत्ता एवं सम्मान का परिचय प्राप्त होता है। साथ ही कठोर तपश्चर्या के द्वारा ही व्यक्ति इस जघन्य कृत्य से छुटकारा पा सकता है।

## ९. जीव हत्या में प्रायश्चित्त विधान

**जीव का अर्थः**—जीव शब्द का सामान्य अर्थ प्राण धारण करने वाली आत्मा, जीव कहलाता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में अनेक प्रकार के जीवों का वर्णन किया गया है। कुछ जीव ऐसे होते हैं जिसमें अस्थियाँ होती है और कुछ जीव बिना अस्थियों वाले होते हैं। इन जीवों की व्यक्ति के द्वारा किसी भी प्रकार से की जाने वाली हत्या से उत्पन्न पाप के लिये धर्मसूत्र एवं स्मृतियों में अनेक प्रकार का प्रायश्चित्त विधान का वर्णन किया है। जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार कौआ, गिरगिट, मोर, च्रकवाक, हंस, भासनाम का पक्षी, मेढक, नेवला, अथवा कुत्ते की हत्या करने पर शूद्र की हत्या करने पर पाप को दूर करने वाला प्रायश्चित्त करना चाहिए।[१] जो इस प्रकार है। पाप से युक्त व्यक्ति को दस गायों का दान करना चाहिए।[२] अन्य दूसरे प्राणियों का (जिसमें अस्थियाँ न हो) बैल के बोझ जितने मात्रा में वध करने पर शूद्र के वध के प्रायश्चित्त के बराबर प्रायश्चित्त करना होता है।[३] बिना कारण के दूध देने वाली गौ या बैल की हत्या करने पर शूद्र की हत्या में प्रायश्चित्त विधान के समान ही प्रायश्चित्त करना होता है।[४] बौधायन धर्मसूत्र में जीव हत्या के प्रायश्चित्त का वर्णन स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है।

---

१. वाससप्रचालाक बर्हिणचक्रवाकहंसभासमण्डूकनकुलडेरिकाश्वहिंसायां शूद्रवप्रायश्चित्तम्। (*आप.ध.सू. १/९/२५/१४*)

२. दश शूद्रे।। (*आप.ध.सू. १/९/२४/३*)

३. धुर्यवाहप्रवृत्तों चेतरेषां प्राणिनाम्।। (*आप.ध.सू. १/९/२६/२*)

४. धेन्वनडुहोश्चाऽकारणात्। (*आप.ध.सू. १/९/२६/१*)

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार मेढक, नेवला, कौआ, कृकलास, चूहा, छछुन्दर इन सबका वध करने पर वैश्य वध के समान प्रायश्चित्त होता है।[१] जो इस प्रकार है पापी मनुष्य तीन वर्ष तक सामान्य ब्रह्मचर्य और एक सौ गायें तथा एक सांड का दान करे।[२] और बिना अस्थि वाले एक सहस्र जीवों का वध करने पर भी यही प्रायश्चित्त करना पड़ता है।[३] अथवा एक बैल के बोझ होने के बराबर बिना अस्थि वाले जीवों की हत्या करने पर वैश्य वध के समान प्रायश्चित्त को करें।[४] अथवा अस्थि वाले शूद्र प्राणी के हत्या के प्रायश्चित्त के रूप में कुछ वस्तु का दान करें।[५] एक सूअर की हत्या करने पर एक घड़े घी का दान करे।[६]

वसिष्ठ धर्मसूत्र ने जीव हत्या पर पृथक् एवं स्पष्ट रूप से कोई प्रायश्चित्त विधान का वर्णन नहीं किया है।

मनु के अनुसार बिल्ली, नेवला, चाष, मेढक, कुत्ता, गोह, उल्लू और कौआ इनमें से किसी को मारकर शूद्र हत्या के व्रत (प्रायश्चित्त) को करें।[७] यहाँ मनु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित जीव हत्या के प्रायश्चित्त विधान से सहमत हैं अथवा मार्जार आदि को मारने वाला तीन रात दूध पीवे, या एक योजन गमन, करें, या नदी में स्नान करे अथवा 'अब्दैवत' सूक्त को जपे।[८] द्विजश्रेष्ठ साँप को मारकर काले लोहे का बना तीक्ष्णाग्र डण्डा एक भार पुआल और एक मासा सीसा ब्राह्मण के लिये दान करे।[९] सूअर वध करने पर भी घी से भरा घड़ा, तीतर के वध करने पर एक द्रोण तिल, तोते के वध करने पर दो वध

---

१. मण्डूकनकुलकाकबिम्बदहरमूषकश्चाहिंसासु च। (*गौ.ध.सू.* ३/४/१९)
२. वैश्ये तु त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्चगा दद्यात्। (*वही* ३/४/१५)
३. अस्थन्वतां सहस्र हत्वा। (*वही* ३/४/२०)
४. अनस्थिमतामनड्डुद् भारे च। (*वही* ३/४/२१)
५. अपि वाऽस्थन्वतामेकैकस्मिन्किंचिद् दद्यात्। (*वही* ३/४/२२)
६. वराहे घृतघटः। (*वही* ३/४/२५)
७. मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रंत चरेत्।। (*मनु* ११/१३१)
८. पयः पिवेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्नों व्रजेत्।
उपस्पृशेत्स्रवन्तयां वा सूक्तं वाऽब्दैवतं जपेत्।। (*वही* ११/१३२)
९. अभ्रिकार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पे हत्वाद्विजोतमः।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकभाषकम्।। (*वही* ११/१३३)

करने पर दो वर्ष का बछड़ा और कौञ्च पक्षी की वध करने पर तीन वर्ष का बछड़ा दान करें।[१]

मनु के अनुसार हंस, बलाका, बगुला, मोर, वानर, बाज और भास को मारकर तीन वर्ष का बछड़ा दान करें।[२] घोड़े का वध कर कपड़ा, हाथी का वध कर पाँच नीले बैल, अज तथा भेड़ का वध कर बैल और गधे का वध कर एक वर्ष का बछड़ दान करे।[३] क्रव्याद (कच्चे मांस खाने वाले) बाघ आदि पशु का वध कर दुधारू गाय, अक्रव्याद पशु का वध कर प्रौढतर बछिया तथा ऊँट का वध कर एक कृष्णल (रत्ती) दान करे।[४] साँप आदि के वध करने पर चर्मपुट, बकरा, धनुष, भेड़ आदि का दान न करने पर एक एक कृच्छ्र (प्राजापत्य) व्रत करे।[५] हड्डी वाले (गिरगिट आदि) एक सहस्र क्षुद्र जीवों को, तथा बिना हड्डी वाले खटमल, लीख, जूँ, मच्छर, ढीलं, चीलर आदि) एक गाड़ी क्षुद्र जीवों को मारकर शूद्रहत्या में विहित प्रायश्चित्त को करें।[६] हड्डी वाले (गिरगिट आदि) क्षुद्र जन्तु में से किसी एक का वध करने पर ब्राह्मण के लिये कुछ दान करें और बिना हड्डी वाले (खटमल आदि) में से किसी एक का वध करने पर उत्पन्न पाप से मनुष्य प्राणायाम से शुद्ध हो जाता है।[७] याज्ञवल्क्य के अनुसार जीवहत्या में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। याज्ञवल्क्य ने भी

---

१. घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम्।। (*वही* ११/१३४)

२. हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम्।। (*वही* ११/१३५)

३. वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम्।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्।। (*वही* ११/१३६)

४. क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्।। (*मनु* ११/१३७)

५. दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये।। (*वही* ११/१३९)

६. अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतु चरेत्।। (*वही* ११/१४०)
एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत्।
वृषभैकादश वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः।। (*वही* ११/१३०)

७. किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति।। (*वही* ११/१४१)

सूत्रकार एवं दूसरे स्मृतिकारों की भाँति अलग-अलग प्रकार के जीवों की हत्या के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन इस प्रकार किया है। गिरगिट आदि हड्डी वाले एक हजार जन्तु का वध होने पर तथा जूँ, खटमल, डाँस, मच्छर आदि बिना हड्डी वाले एक बैलगाड़ी प्रमाण (असंख्य) जन्तुओं का वध हो जाने पर प्रायश्चित्त कर्त्ता शूद्रहत्या के समान प्रायश्चित्त अर्थात् प्राकृत ब्रह्मचर्य अथवा नयी ब्याही दस सवत्सा गौओं का दान करें।[१] बिलाव, गोह, नेवला, मेढ़क, चाष, कौवा, उल्लू आदि पक्षियों का वध करने पर तीन अहोरात्रि केवल दूध पीवे तथा पादकृच्छ्र (एक योजन का तक पैदन चलना रूपी) व्रत करे।[२] हाथी का वध हो जाने पर पाँच नील बैल, सुग्गा (तोता) पक्षी का वध हो जाने पर दो वर्ष का बछड़ा एवं गधा, बकरा तथा भेड़ के वध हो जाने पर एक-एक बैल और क्रौञ्च पक्षी का वध हो जाने पर तीन वर्ष का बछड़ा दान करें।[३] हंस, बाज, बन्दर एवं मांसभोजी, व्याघ्र, सियाएर आदि तथा कंक, गृध्र आदि एवं जलचर बगुला तथा स्थलचर मयूर, भास, पशु-पक्षी के वध हो जाने पर गौ दान करें। माँस नहीं खानेवाले हिरन, खंजरीट आदि का वध हो जाने पर एक बछिया का दान करें।[४] साँप मारने पर नुकीली लोहे की छड़ी, पण्डक को मारने का पीतल और सीसा, सूअर को मारने पर एक घड़ा घी, ऊँट मारने पर गुञ्जा और घोड़ा मारने पर वस्त्र का दान करना चाहिए।[५]

याज्ञवल्क्य के अनुसार तितिर पक्षी को मारने पर एक द्रोण तिल का दान करें। हाथी का वध करने पर पाँच नील वृषो का दान न कर सकने पर शुद्धि के लिए एक कृच्छ्र व्रत करें।[६]

---

१. अस्थिमतां सहस्रं तु तथाऽनास्थिमतामनः।। (*याज्ञ.* ३/२६९)

२. मार्जारगोधानकुलमण्डूकांश्च पतत्रिणः।
हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत्।। (*वही* ३/२६९)

३. गजे नीलवृषाः पञ्च शुके वत्सो द्विहायनः।
खराजमेषेषु वृषो देयः कौञ्च त्रिहीयनः।। (*वही* ३/२७१)

४. हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखण्डिनः।
भासं च हत्वा दद्याद् गामक्रव्यादस्तु वत्सिकाम्।। (*वही* ३/२७२)

५. उरगेष्वायसो दण्डः पण्डके त्रपु सीसकम्।
कोले घृतघटो देय उष्ट्र गुञ्जा हर्येऽशुकम्।। (*याज.* ३/२७३)

६. तित्तिरौ तु तिलद्रोणं गजादीनामशक्नुवन्।
दानं दातुं चरेत्कृच्छ्रमेकैकस्य विशुद्धये।। (*वही* ३/२७४)

पाराशर के अनुसार जीवहत्या करने वाले को प्रायश्चित्त इस प्रकार करना चाहिए। क्रौंञ्च, सारस, हंस चक्रवाक और मुर्गा तथा जालपाद तथा शरभ को मारने पर एक दिन का उपवास करने से शुद्धि होती है।[१] बगुली टिटहरी, तोता, पारावत और मछली तथा बगुले को मारने वाला नक्तभोजनरूपी व्रत से शुद्ध होता है।[२] भेड़िया, कौआ, कबूतर, मैना, तित्तिर इनको मारने वाला दानों सन्ध्याओं के समय जलमध्यस्थित हुआ प्राणायाम करके शुद्ध हो जाता है।[३] गिद्ध, बाज, खरगोश, इनको और उल्लू को मारने वाला तथा कच्चे मांस को खाने वाला एक दिन तीनों सन्ध्या समय तक वायुभक्षण द्वारा शुद्ध होता है।[४] बगुली, टिट्टिभ, कोयल, खंजरीट तथा लालपर वाले पक्षियों का हिंसक नक्त भोजनरूपी व्रत से शुद्ध होता है।[५] कारऽव, चकोर, पिगला, कुरभ और भारद्वाज नामक पक्षी की हिंसा करके शिवपूजा करने पर शुद्धि मिलती है।[६] भेरूंड, नीलकण्ठ, भास, पारावत, कपिंजल इन सभी पक्षियों की हिंसा में एक दिन-रात भोजन का परित्याग करने से शुद्धि होती है।[७] चूहा, बिल्ली, अजगर तथा जलसर्प इनको मारने वाला ब्राह्मणो को खिचड़ी खिलावे तथा लोहदण्ड दक्षिणा में दें।[८]

---

१. क्रौ चसारसहंसान् च चक्रवाकं च कुक्कुटम्।
जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः।। (*पारा.* ६/२)

२. बलाकाटिटिट्भौ वापि शुकपारावतावपि।
अटीनवकघाती च शुद्धयते नक्तभोजनात्।। (*वही.* ६/३)

३. वृककाककपोतानों सारीतित्तिरघातकः।
अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुद्धयति।। (*वही.* ६/४)

४. गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः।
अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत् त्रिकालं मारूताशनः।। (*वही.* ६/५)

५. बल्गुलीटिट्टिभानां च कोकिलाखंजरीटके।
लाविकारक्तपक्षेषु शुद्धयते नक्तभोजनात्।। (*पारा.* ६/६)

६. कारण्डवचकोराणां पिंगलाकुरस्य च।
भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं सम्पूजय शुद्धयति।। (*वही.* ६/७)

७. भेरूण्डचाषाभाषांश्च पारावतकपिंजलौ।
पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम्।। (*वही.* ६/८)

८. हत्वा मूषकमार्जार - सर्पाजगरडुण्डुभान्।
कृसरं भोजयेद्विप्रान् लोहदण्डं च दक्षिणाम्।। (*वही.* ६/९)

शिशुमार, गोह कछुआ, शल्लक को मारने वाला बैगन खाने वाला एक अहोरात्र व्रत करके शुद्ध होता है।[१]

पाराशर के कथनानुसार भेड़िया, गीदड़, रीछ तथा व्याघ्र को मारने वाला एक प्रस्थ तिल ब्राह्मण को देकर तीन दिन तक वायु भक्षण करे।[२] हाथी, घोड़ा, भैसा, ऊँट इनको मारने पर एक अहोरात्र का प्रायश्चित्त होता है तथा तीनों सन्ध्या के समय स्नान करने से शुद्धि हो जाती है।[३] हिरण, सिंह, चीता और व्याघ्र को मारने वाला तीन दिन तक व्रत का आचारण करे और ब्राह्मणों को तृप्त करे तो शुद्ध होता है।[४]

पाराशर के कथन अनुसार ही मृग, रोहित, सूअर, भेड़ और बकरी का घातक एक अहोरात्र व्रत करके बिना हल चलाने के उत्पन्न हुए अन्न को भक्ष्ज्ञण कर शुद्ध होता है।[५]

इसी प्रकार चतुष्पद और सभी वन जीवों की हिंसा करने वाला एक अहोरात्र व्रत का नियम व्यवस्था से गायत्री जप करें।[६]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि मनष्य जाने अनजाने में जीवहत्या कर देता है। बाद में उसे पश्चात्ताप होता है। मनकुण्ठित रहता है परन्तु इस कुण्ठा से व चिन्ता से मनुष्य मुक्त हो सकता है। जैसे कि धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में वर्णित अनेक जीवहत्या के प्रायश्चित्त विधानों से मनुष्य अपने को जीवहत्या के पाप से मुक्त कर सकता है। कोई भी ऐसा पाप नहीं जो प्रायश्चित्त करने पर पाप से छुटकारा नहीं दिला सकता। आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम धर्मसूत्रों

---

१. शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्म च शल्लकम्।
वृन्ताकफलभक्षी वाऽप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति।। (*वही.* ६/१०)

२. वृकजन्बुकऋक्षाणां च घातकः।
जिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम्।। (*वही.* ६/११)

३. गजस्य च तुरङ्गस्य महिषोष्ट्रनिपातने।
प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसन्ध्यमवगाहनम्।। (*वही.* ६/१२)

४. कुरंगं वानरं सिंह चित्रं व्याघ्रं च घातयन्।
शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च।। (*पारा.* ६/१३)

५. मृगरोहिद् वराहाणामवेबस्तस्य धातकः।
अकालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः।। (*वही.* ६/१४)

६. एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम्।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम्।। (*वही.* ६/१५)

ने एवं मनु, याज्ञवल्क्य व पाराशर ने छोटे से छोटे जीवहत्या के लिए भी प्रायश्चित्त विधान दिया है। इन प्रायश्चित्त को करके मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। इससे व्यक्ति में प्राणी मात्र के प्रति दया एवं मैत्री भाव उत्पन्न होता है जो चित्त प्रसादक है।

## १०. गौ हत्या में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार गौ एक ऐसा पशु माना जाता है जो सभी वर्णों में पूर्जित है और यह दूसरे पशु से अलग तथा मनुष्य के जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। मनु ने गौ को पृथ्वी के धारकतत्वों में गिना है। यदि कोई व्यक्ति गौ का वध कर दे तो वह पापी कहलाता है। इस पाप से मुक्त होने के लिए धर्मसूत्रों एवं स्मृति में इसके प्रायश्चित्त का वर्णन किया है। जिससे मनुष्य गौर हत्या के पाप से छुटकारा पा सकता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में गौ हत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार गौ हत्या करने वाले पापी मनुष्य को दस गायों का दान करना चाहिए जिससे वह पाप से मुक्त हो जाता है।[१] बौधायन धर्मसूत्र ने गौ हत्या पर प्रायश्चित्त का वर्णन नहीं किया है।

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार गाय की हत्या करने पर वैश्य की हत्या के लिए विहित प्रायश्चित ही होती है।[२] जो इस प्रकार है हत्या करने वाले को तीन वर्ष तक सामान्य ब्रह्मचर्य और एक सौं गायें तथा एक साँड़ का दान करें।[३] वसिष्ठ के अनुसार गौ हत्या करने वाले पापी व्यक्ति को जिस गाय का उसने वध किया है उसी गाय की खाल से अपने को ढक लेना चाहिए और छः माह तक कृच्छ्रा एवं अतिकृच्छ्रा व्रत करना चाहिए जिससे वह पाप से मुक्त हो सकता है।[४]

मनु ने गोवध के लिए अलग से प्रायश्चित्तों का वर्णन किया है। गोवध को मनु ने उपपातक माना है। उसका प्रायश्चित्त वर्णन इस प्रकार है जो व्यक्ति गाय की हत्या करता है उसे शिखा सहित मुण्डन कराकर उस (मारी हुई) गाय

---

१. धेन्वनडुहोश्चाऽकारणात् ।दश शूद्रे।। (*आप.* १/९/२६/४/१, ३)

२. गां च वैश्यवत्।। (*गौ.ध.सू.* ३/४/१८)

३. वैश्ये तु त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात्।। (*वही.* ३/४/१५)

४. गां चेद्धन्यात्तस्याश्चर्मषार्देण परिवेष्टितः षण्मासान्कृच्छ्रं वातिष्ठेत्।।१८।।

के चमड़े से शरीर को ढककर एक मास (पतले) यव के घोल को पीता हुआ गोशाला में निवास करें।[१] इसके बाद दो मास तक (द्वितीय व तृतीय मास में) गोमूत्र से स्नान करता हुआ जितेन्द्रिय होकर चौथे काल कृत्रिम नमक से रहित थोड़ा हविष्यान्न भोजन करे।[२]

मनु से मतानुसार हत्यारे को दिन में प्रातः काल गायों के पीछे-पीछे जाना चाहिए और रूककर उनके खुरों के आघात से उड़ती हुई धूलि का पान करे तथा उनकी सेवा तथा नमस्कार करके रात्रि में वीरासन के बैठे।[३] पवित्र तथा क्रोध रहित होकर उन गायों के खड़ा होने पर खड़ा होवे, चलने पर चले तथा बैठने पर बैठे।[४] रोग या चोर अथवा व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं से भयभीत या गिरी हुई या आदि में फंसी हुई गौ की सब उपायों से रक्षा करें।[५] गर्मी, वर्षा या शीत रहने पर या आँधी चलने पर यथाशक्ति गौ की बिना रक्षा किये अपनी रक्षा न करें।[६] अपने या दूसरे के घर, खेत या खलिहान में खाती हुई गाय को पीते हुए बछवे को किसी को रोकने के लिए न कहे।[७] इस विधि से जो गोघातक तीन मास तक गौर का अनुसरण (सेवन) करता है। वह गोहत्यासे उत्पन्न पाप को नष्ट कर देता है।[८]

याज्ञवल्क्य के अनुसार गाय की हत्या करने वाला पञ्चगव्य पीवे और एक मास तक संयम के साथ रहे। वह गोशाला में सोना, गायों की पीछे चलने

---

१. उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्।
कृतवापो वसेदनोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः।। (*मनु.* ११/१०८)

२. चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः।। (*वही.* ११/१०९)

३. दिवानुगच्छेद् गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वे रजः पिबेत्।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत्।। (*वही.* ११/११०)

४. तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्।
आसीनासु तथाऽऽसीनो नियतो वीतमत्सरः।। (*वही.* ११/१११)

५. आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत्।। (*मनु.* ११/११२)

६. उष्णे वर्षति शीते वा मारूते वाति वा भृशम्।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः।। (*वही.* ११/११३)

७. आत्मनों यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले।
भक्षयन्ती न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम्।। (*वही.* ११/११४)

८. अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति।। (*वही.* ११/११५)

और एक गौ का दान करने पर शुद्ध होता है।[१] अथवा सावधान होकर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करे और तीन दिन रात तक उपवास करे, दस गायों और एक साँड का दान करें।[२]

पाराशर के अनुसार गाय के वध के अनेक कारण बताये जाते हैं। जैसे गाय को रोकना, बाँधना तथा अधिक बोझा ढ़ोना, मारना, दुर्गम रास्ते में चलाना और जोतना ये छः वध के निमित्त है।[३] कुआँ या बावड़ी में गौ के गिराने पर, कटे पेड़ को गौ के ऊपर गिराने पर गोभक्षियों (कसाइयों) के साथ बेचने पर गोहत्या का पाप लगता है।[४]

पाराशर स्मृति के अनुसार गोवध का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। गोवध का प्रायश्चित्त करने वाली स्त्रियों को रात्रि के समय गोशाला में शयन और दिन के समय गौ के पीछे जाना उचित नहीं है, विशेष-रूपेण नदी के ऊपर, जनसमूह के स्थान पर और जंगल में इनका गमन निषिद्ध है।[१] स्त्रियों को मृगचर्म धारण करने की आवश्यकता नहीं वे तीनों काल में स्नान करके देवों की अर्चना कर सकती है।[२] स्त्रियों को कृच्छ्र चान्द्रायण का उपवास स्वजनों के मध्य में करना ही उचित है। वे अपने गृह पर निवास करते हुए सदैव पवित्र नियमों का पालन करें।[३]

पाराशर का कथन है कि गौ की हत्या करने वाला जो मनुष्य अपने

---

१. पञ्चगव्यं पिबेद्गोघ्नो मासमासीत संयत।
गोष्ठेशयां गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्धयति।। (याज्ञ. ३/२६३)

२. कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं च चरेद्वापि समाहितः।
दद्यात्त्रिरात्रं चोपोष्य वृषभैकादशास्तु गाः।। (याज्ञ. ३/२६४)

३. रोधनं बन्धनञ्चैव भारप्रहरणन्तथा।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि वधस्य षट्।। (पाराशर. ९/३१)

४. प्रेरयन् कूपावापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन्।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम्।। (याज्ञ. ९/३६)

१. न च गोष्ठे वसेद्रात्रो न दिवा गा अनुव्रजेत्।
नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः।। (वही ९/५७)

२. न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत्।
त्रिसंध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा।। (वही ९/५८)

३. बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम्।
गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत्।। (पारा. ९/५९)

उस पाप को लोक दृष्टि से छिपाने की चेष्टाएँ करता है वह नूनमेव कालसूत्र नामक घोर नरक में प्रवेश करता है।[१] तदन्तर उस वीभत्स नरक से छुटकारा पाने पर इस मृर्त्यलोक में आता है और फिर इस प्रकार जन्म लेकर बधिर, मूक, दुःखी, कोढ़ी होकर क्रमानुसार सात जन्म उसे यहाँ यापन करने पड़ते हैं।[२] इसीलिए पाप करके मनुष्य उसके छुपाने का प्रयत्न न करे। अपने पाप कर्मों को सभी के सम्मुख प्रकट कर दे तथा नारी, बालक, सेवक और गो के ऊपर कदापि क्रोध न करें।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति सभी वर्णो में पूजित गौ की हत्या करता है जो कि पृथ्वी धारक तत्वों में गिनी जाती है वह व्यक्ति पाप का भागी माना जाता है। ऐसा व्यक्ति प्रायश्चित्त किये बिना अपने पाप से छुटकारा नहीं पा सकता है। उसे व्यक्ति को गाय आदि दान देकर, राजा दिलीप के अनुसार गौ की सेवा करनी चाहिए।

## ११. शिल्पी व कारीगर की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ एवं मनु, याज्ञवल्क्य ने शिल्पी व कारीगर की हत्या में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन पृथक व स्पष्ट रूप से नहीं किया है। पाराशर ने शिल्पी व कारीगर की हत्या में प्रायश्चित्त विधान करते हुए कहा है कि जो व्यक्ति शिल्पी या कारीगर की हत्या करता है वह दो प्राजापत्य करके ग्यारह बैल दक्षिणा में देकर शुद्ध होता है।[४]

उपुर्यक्त वर्णित प्रायश्चित्त विधान से ज्ञात होता है कि व्रत व दान करके व्यक्ति शिल्पी व कारीगर की हत्या के पाप से मुक्त हो सकता है। दान चित्तशुद्धि में परम सहायक है।

---

१. इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति।
स यति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम्। (*वही* ९/६०)

२. विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते।
क्लीबो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वैनरः।। (*वही* ९/६१)

३. तस्मात् प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मसततं चरेत्।
स्त्रीबालभृत्यरोगार्तेष्वातिकोपं विवर्जयेत्।। (*वही* ९/६२)

४. शिल्पिनं कारूकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्।
प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा।। (*पारा.* ६/१६)

## १२. सुहृद्वध में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में मनु ने ही सुहृद्वध का प्रायश्चित्त वर्णन किया है। आपस्तम्ब बौधायन, गौतम, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य एवं पाराशर ने सुहृद्वध के लिए स्पष्ट रूप से प्रायश्चित्त विधान नहीं दिया है।

मनु के अनुसार प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है—मनु के अनुसार मित्र की हत्या करने वाले व्यक्ति को ब्राह्मण की हत्या में विहित प्रायश्चित्त विधान करना चाहिए।[१] जिस प्रकार ब्रह्महत्यारा पाप की शुद्धि के लिए कुटिया बनाकरी उस (मृत ब्राह्मण के तथा नहीं मिलने पर दूसरे किसी) के शिर को चिह्न स्वरूप लेकर भिक्षान्न के भोजन को करता हुआ बारह वर्षों तक वन में निवास करें।[२] वह मित्र का हत्यारा है यह जानने वाले शास्त्रधारियों (बाण का) स्वेच्छा से (मरने या मरने के समान होने तक) निशाना बने, या जलती हुई अग्नि में नीचे शिर करके तीन बार अपने को डाले जिससे मर जावे।[३] अथवा अश्वमेघ यज्ञ करे, तथा स्वर्जित, गोमेध, अभिजित्, विश्वजित्, त्रिवृत्, अग्निष्टुत् इनमें से कोई एक यज्ञ (अज्ञान से) मित्र हत्या करने वाला द्विजाति करे।[४] अथवा स्वल्पाहार करता हुआ जितेन्द्रिय होकर किसी एक वेद को जपता हुआ ब्रह्महत्या के दोष) के विनाश के लिए सौ योजन (४०० कोश) तक गमन करे।[५]

उपर्युक्त मनु के अनुसार ज्ञात होता है। व्यक्ति अगर मित्र की हत्या करता है तो पाप का भागी उतना ही माना जाता है जितना कि ब्रह्म हत्या का। व्यक्ति को मित्र की हत्या करने पर उसके पाप का फल भोगना पड़ता है अगर वह उस पाप से छुटकारा पाना चाहता है तो उसे वहीं प्रायश्चित्त करना

---

१. उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरूध्य गुरुं तथा।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्री सुहृद्वधम्।। (*मनु* ११/८८)

२. ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थे कृत्वा शवशिरोध्वजम्।। (*वही* ११/७२)

३. लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषाभिच्छयाऽऽत्मनः।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः। (*वही* ११/७३)

४. यजेत वाऽश्वमेधेन स्वार्जिता गोसवेन वा।
अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा।। (*वही* ११/७४)

५. जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ् नियतेन्द्रियः।। (*वही* ११/७५)

चाहिए जैसा कि मनु ने ब्रह्म हत्या के लिए प्रायश्चित्त विधान बताया है जैसे अपनी इन्द्रियों को वश में करके, यज्ञ करके बारह वर्षों तक बन में कुटि बनाकर रहने से, सिर मुडवाकर आदि आचरण करके उसका चित्त शुद्ध हो जाता है और वह इस प्रकार पाप से छुटकारा पा सकता है। यज्ञ तपशरण आदि व्यक्ति के अन्तःकरण को शुद्ध करते हैं। अतः इनका अनुष्ठान मित्र हत्या दोष से मुक्त करता है।

## १३. नुपंसक की हत्या में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों के अनुसार नपुंसक की हत्या में भिन्न प्रकार के प्रायश्चित्त इस प्रकार हैं। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार नपुंसक (लिङ्गविहीन) की हत्या करने पर एक पुरुष बोझ के बराबर पुआल और एक माष भर सीसे का दान करें।[१]

मनु स्मृति के अनुसार यदि कोई नपुंसक की हत्या कर देता है तो उसे भी पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है। मनु के अनुसार नुपंसक की हत्या का प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। पापी व्यक्ति को नपुंसक की हत्या करने पर एक भार (एक गाड़ी वीस मन) पुआल और एक माषा सीसा ब्राह्मण के लिये दान करें।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई नपुंसक पशु या पक्षी का वध कर दे तो वह व्यक्ति हत्यारा माना जाता है और वह हत्या के पाप से ग्रस्त हो जाता है। पाप से मुक्ति पाने के लिए प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है हत्यारे व्यक्ति को वस्त्र दान देना चाहिए। जिससे वह पाप से मुक्त हो सकता है।[३]

आपस्तम्ब बौधायन व वसिष्ठ ने प्रमुख स्मृतियों में पाराशर एवं याज्ञवल्क्य, किसी ने नपुंसक की हत्या में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन अलग से नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि अगर व्यक्ति अज्ञान व ज्ञान वश किसी नपुंसक की हत्या कर देते हैं तो वह व्यक्ति हत्या के पाप से

---

१. षण्ढे पलालभारः सीसमाषश्च।। (*गौ.ध.सू.* ३/४/२३)

२. अभ्रि काष्णायसीं दघात्सर्पे हत्वाद्विजोत्तमः।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम्।। (*मनु.* ११/१३३)

३. उरगेवयसो दण्डः पण्डके त्रपु सीसकम्।
कोतेले घृटघटो देय उष्ट्रे गुञ्जा हर्येऽशुकम्।। (*याज्ञ.* ३/२७३)

ग्रसित माने जाते हैं और मनुष्य को इस पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है। पाप से मुक्ति पाने के लिये दान देकर जैसे सीसा या पुआल आदि देकर व्यक्ति पाप से छुटकारा पा सकता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि नपुंसक पशु या पक्षी है तो व्यक्ति को वस्त्र आदि दान देना पड़ता है। जिससे व्यक्ति पशु नपुंसक की हत्या के पाप से छुटकारा पा सकता है।

## (ख) सुरापान में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण को सुरापान करने पर अति कठोर प्रायश्चित्त करने पड़ते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार सुरापान करने वाला व्यक्ति अग्नि पर खौलाई गयी सुरा पिये।[१] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार सुरा पीने पर उसी प्रकार की खौलती हुई सुरा का पान कर शरीर को जलाये।[२] अनजाने में ही सुरापान करने पर तीन मास तक कृच्छ्र व्रत करे और पुनः उपनयन संस्कार करावे।[३]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार सुरापान करने वाले ब्राह्मण के मुख में तपती हुई सुरा डाले इस प्रकार उसकी मृत्यु होने पर सुरापान का प्रायश्चित्त होता है।[४] यदि अज्ञानवश सुरापान किया हो तो तीन दिनों तक क्रमशः उष्ण दूध, घृत और जल पीकर रहने एवं उष्ण वायु सेवन से शुद्धि होती है। इस प्रायश्चित्त को तप्तकृच्छ्र व्रत कहते हैं। उसके उपरान्त उसका पुनः (उपनयन) संस्कार होता है।[५]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार सुरापान करने वाला व्यक्ति को आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम धर्मसूत्रों द्वारा वर्णित प्रायश्चित्त विधान करना चाहिए क्योंकि वसिष्ठ धर्मसूत्र भी उन तीनों के प्रायश्चित्त विधान का समर्थन करते हैं।[६]

---

१. सुरापोऽग्निस्पर्शां सुरां पिबेत्।। (*आप.ध.सू.* १/९/२५/३)
२. सुरां पीत्वोष्णया कायं दहेत्।। (*बौ.ध.सू.* २/१/१७)
३. अमत्या पाने कृच्छ्राव्दपादं चरेत्पुनरूपनयनं च।। (*वही* २/१/१८)
४. सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिञ्चेयुः सुरामास्ये मृतः शुध्येत्।। (*गौ.ध.सू०* ३/५/१)
५. अमत्या पाने पयो घृतमुदकं वायुं प्रतित्र्यहं तप्तानि स कृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः।। (*गौ.ध.सू.* ३/५/२)
६. अभ्यासे तु सुराया अग्निवर्णो तां द्विजः पिबेन्मरणात्पूतो भवतीति।। (*वसिष्ठ ध.सू.* २०/२२)

मनु के अनुसार द्विज मोहवश मदिरा को पीकर अग्नि के समान गर्म मदिरा को पीवे, उस (अग्नि के समान जलती हुई मदिरा) से शरीर अर्थात् मुख के जलने के कारण मर जाने पर मनुष्य उस मदिरा पीने से उत्पन्न पाप से छूट जाता है।[१] अथवा (सन्तप्त होने से) अग्नि के समान वर्णवाले गोमूत्र, पानी, दूध, घी या गोबर के रस को मरने तक पीवे।[२] अथवा बाल से बने वस्त्र को पहनता हुआ जटाधारण करता हुआ और सुरापात्र चिन्ह का धारण करता हुआ मदिरा पीने वाला मनुष्य मदिरा पीने के दोष से छूटने के लिए एक वर्ष तक कण (अन्न की चुन्नी खुद्दी) या खली को रात में एक बार खावे।[३]

याज्ञवल्क्य के अनुसार सुरापीने वाला महापातकी सुरा, जल, घृत, गोमूत्र आदि दूध में किसी एक को खूब खौलाकर पीयें और उससे उसकी मृत्यु हो जाय तब वह शुद्ध होता है।[४]

पाराशर का मत है कि शराब पीने वाला ब्राह्मण समुद्र में पड़ने वाली नदी के किनारे जाकर चान्द्रायण व्रत करे और ब्राह्मणों को भोजन करावे और बैल के सहित एक गाय ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे।[५]

पाराशर के अनुसार ही एक बार भी शराब पीकर अग्नि के समान रंग वाली शराब अर्थात् आग में खौलती हुई पिये। ऐसा प्रायश्चित्त करने से वह मनुष्य इस लोक तथा परलोक में अपने को पवित्र कर लेता है।[६]

पाराशर के मतानुसार मदिरापान करने वाली स्त्रियों को कृच्छ्रसांतपन व्रत

---

१. सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णो सुरां पिबेत्।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः।। (मनु. ११/९०)

२. गोमूत्रमग्निवर्णे वा पिबेदुदकमेव वा।
पयो घृतं वाऽऽमरणाद् गोशत्कृद्रसमेववा। (वही ११/९१)

३. कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि।
सुरापानापनुत्त्यर्थे बालवासा जटी ध्वनी।। (वही ११/९२)

४. सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्सिंनिभम्।
सुरापोऽन्यतमं तीत्वा मराणाच्छुद्धिमृच्छति।। (याज्ञ ३/२५३)

५. सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम।
चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।। (पारा. १२/७३)

६. सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
स पावयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च।। (पारा. १२/७४)

का आचारण करते हुए लगातार गायत्री मंत्र का जप करते रहना चाहिए।[१] गोमूत्र गाय का गोबर, दूध, दही, घी तथा कुश का जल यही पंचगव्य कहा जाता है। इस पंचगव्य का पान कर एक रात्रि तक उपवास करना ही सांतपन कहलाता है।[२]

उपर्युक्त विवेचन ज्ञात होता है कि व्यक्ति चाहे किसी भी वर्ण का हो यदि सुरापान का दुष्कर्म करता है तो वह पाप का भागी होता है और उस दुष्कर्म के पाप से मुक्त होने के लिये व्यक्ति को अनेक प्रकार के व्रत नामक प्रायश्चित्त करने पड़ते हैं। सुरापान व्यक्ति के बुद्धि को दूषित कर देता है एवम् अनेक दुर्व्यसनों में ग्रस्त कर देता है। अतः शास्त्रकारों ने सुरापान के प्रायश्चित्त हेतु उग्र विधान किया है। उपर्युक्त व्रत आदि के अनुष्ठान से व्यक्ति की बुद्धि पवित्र होती है तथा उसका मन दृढ़संकल्प युक्त होकर पुनः सुरापान आदि दुर्व्यसनों में फंसने से अपने आपको बचाने में समर्थ होता है।

## १. पैष्टी सुरा के जल पीने के प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवम् स्मृतियों के अनुसार अलग-अलग प्रकार की सुरा का पान करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रायश्चित्त वर्णन इस प्रकार है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार पैष्टी अर्थात् आटे की बनी सुरा का जल पीने मात्र से ही ब्राह्मण को उसका प्रायश्चित्त प्राण त्यागकर ही करना पड़ता है। अथवा सुरापान करने वाला अग्नि पर खौलायी गयी सुरा का पान करे।[३]

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार जिस व्यक्ति ने अनजाने में ही वारूणी नामक सुरा का पान किया हो उस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का पुनः संस्कार करना आवश्यक होता है।[४]

---

१. पर्तायर्द्ध शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत्।
पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते।।
गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्।। (*पारा.* १०/२८-२९)

२. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिः सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम्।। (*पारा.* १०/३०)

३. सुरापोऽग्निस्पर्शां सुरां पिबेत्। (*आप.ध.सू.* १/९/२५/३)

४. अमत्या वारूणीं पीत्वा पाश्य मूत्रपुरीषयोः।
ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः पुनःसंस्कारमर्हति।। (*बौ.ध.सू.* २/१/२०)

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार पैष्टी सुरा का जल पीने में ब्राह्मण को मुख में तपती हुई सुरा डालनी चाहिए, इस तरह उसकी मृत्यु होने पर सुरापान का प्रायश्चित्त है।[३]

वसिष्ठ भी तीनों सूत्रकारों का समर्थन किया है।

मनु के अनुसार पैष्टी सुरा अथवा दूसरे प्रकार से बनी हुई मदिरा का जल पीकर शंङखुष्पी नामक औषधियों को डालकर पकाये हुए दूध को पीना चाहिए।[१] ब्राह्मण अज्ञान से वारूणी को पीकर पुनः संस्कार करने से शुद्ध हो जाता है तथा ज्ञान से पीकर मरकर ही शुद्ध होता है। ऐसी (शास्त्र की) मार्यादा है।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार पैष्टी (आटे से बनी) सुरा के जल का पान करने पर अलग से किसी प्रायश्चित्त की व्यवस्था नहीं है। पाराशर ने भी पैष्टी सुरा के जल के पान करने पर किसी अलग से प्रायश्चित्त विधान को नहीं बताया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि धर्मसूत्र एवम् स्मृतियों में वर्णित पैष्टी सुरा के जल पीने मात्र से दूषित होने वाले व्यक्ति को भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है क्योंकि उस जल में आटे से बनी पैष्टी सुरा तैयार की गयी। और उसी जल का जिसमें पैष्टी सुरा का अंश रहता है व्यक्ति उसे पीने से दूषित हो जाता है। इस पाप से मुक्त होने के लिये उसे कई प्रकार के प्रायश्चित्त करने पड़ते हैं। प्रमुख रूप से व्यक्ति गर्म खौलता हुआ दूध पीकर जब मृत्यु को प्राप्त करता है तो उसी के साथ अपने पाप से मुक्त हो जाता है इतना कठोर विधान सम्भवतः सुरापानजन्य बुराइयों को ध्यान में रखते हुए किये गये हैं। जिसमें समाज इस दुर्व्यसन में न फंसे।

## २. मलमूत्र या मद्य से स्पृष्ट अन्नादि रस का पान करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्र एवं स्मृतियों अलग-अलग प्रकार के पदार्थों का पान करने पर

---

१. सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिञ्चेयु सुरामास्ये मृतः शध्यते।। (*गौ.धू. ३/५/१*)

२. अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङखुष्पीश्रितं पयः।। (*मनु. ११/१४७*)

३. अज्ञानद्वारूणी पीत्वा संस्कारेणैव शुद्धयति।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणन्तिकमिति स्थितिः।। (*मनु. ११/१४६*)

भिन्न-भिन्न प्रायश्चित्त विधानों का वर्णन इस प्रकार है। बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार अनजाने में ही मूत्र या मल खा लेने पर या इनसे स्पर्श अन्नादि रस का पान करने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का पुनः संस्कार करना आवश्यक है।[१]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार मूत्र, मल और वीर्य निगल जाने पर तीन दिनों तक क्रमशः उष्ण दूध, घृत, और जल पीकर रहने एवं उष्ण वायु के सेवन से शुद्ध होती है। इस प्रायश्चित्त को तप्तकृच्छ्र व्रत कहते हैं। उसके उपरान्त उसका पुनः (उपनयन) संस्कार होता है।[२]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार मलमूलत्र, आदि शरीर से निकलने वाली वस्तुओं को पीने या कतिपय मद्यों को पीने से अपराध में ऐसे पापियों का पुनरूपनयम होना चाहिए। इससे पाप से मुक्त हो जाता है।[३]

मनु के अनुसार (मनुष्य के) मलमूलत्र या मद्य से स्पर्श अन्नादि रस को अज्ञान पूर्वक खाकर तीनों वर्ण के द्विज फिर से (यज्ञोपवीत) संस्कार करने के योग य होते हैं।[४]

याज्ञवल्क्य ने भी मल, मूत्र, विष्ठा आदि का पान अज्ञान में करने पर तीनों द्विजाति वर्ण पुनः संस्कार करने योग्य हो जाते हैं।[५]

पाराशर के अनुसार विष्ठा तथा मूत्र के भक्षण करने वाले प्राजापत्य व्रत करना चाहिए और पंचगव्य बनाकर स्नान करने से तथा पंचगव्य का पान करने से शुद्ध हो जाता है।[६]

---

१. अमत्या वारूर्णी पीत्वा प्राश्य मूत्र पुरीषयोः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनस्संस्कारमर्हति।। *(बौ.ध.सू. २/१/२०)*

२. मूत्र पुरीषरेतसां च प्राशने। *(गौ.ध.सू. ३/५/३)*
अमत्या पाने पयो घृतमुदकं वायुं प्रतित्र्यहं तप्तानि स
कृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कार।। *(वही ३/५/२)*

३. एतानि तु निवर्तन्ते पुनः संस्कारकर्मणीति।। *(वसिष्ठ ध.सू. २०/१८)*

४. अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः।। *(मनु. ११/१५०)*

५. अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेवध।
पुनः सुस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः। *(याज. ३/२५५)*

६. विण्मूत्रस्य च शुद्धयर्थ प्राजापत्यं समाचरेत्।
पंचगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत्।। *(पारा. १२/४)*

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों एवं पूर्ण धर्मशास्त्र ने मूल-मूत्र को अपवित्र माना है और सड़े अन्न से बनाये जाने वाले पदार्थ, उन सभी वस्तुओं का पान करने से मनुष्य दूषित हो जाता है क्योंकि जो वस्तु पहले ही अपवित्र मानी गयी है और हर प्रकार के व्यक्ति के लिये उसे उपयोग करना वर्जित है फिर भी व्यक्ति अगर उसका सेवन अज्ञानता या ज्ञानपूर्वक करता है तो उससे मनुष्य दूषित हो जाता है। उस दोष को दूर करने के लिये पचगव्य पान या व्रत आदि प्रायश्चित्त रूप में करने पड़ते हैं। इस प्रायश्चित्त को करने से वह पाप से मुक्त हो जाता है।

## ३. अज्ञान में किसी भी प्रकार का मद्य पान में प्रायश्चित्त विधान

धमसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार अज्ञान में भी यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार का मद्य पान करता है तो उस व्यक्ति को भी पापी माना जाता है जिसके लिये उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है और वह पाप से मुक्त हो सकता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों ने अज्ञान में किसी भी प्रकार का मद्यपान के लिये प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार बताया है। बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार अज्ञान में मद्यपान करने पर तीन मास तक कृच्छ्र व्रत करे और पुनः उपनयन संस्कार करावें।[१] अज्ञानवश वारूणी नामक सुरा का पान करने पर या मल मूत्र खा लेने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का पुनः संस्कार करना आवश्यक होता है।[२]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार यदि अज्ञान वश सुरापान किया हो तो तीन दिन तक क्रमशः उष्ण दूध, घृत और जल पीकर रहने एवं उष्ण वायु सेवन से शुद्धि होती है। इसके उपरान्त उसका पुनः उपनयन संस्कार होता है।[३]

वसिष्ठ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अज्ञानवश किसी भी प्रकार का मद्य पान कर लेता है और वह उसके पाप से छुटकारा पाना चाहता है उसके लिये वसिष्ठ ने पाप से मुक्त होने के लिये प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार बताया

---

१. अमत्या पाने कृच्छ्रव्दपादं चरेत्पुनरूपनयनं च ।। (*बौ.ध.सू* २/१/१८)

२. अमत्या वरूणीं पीत्वा प्राश्य मूत्रपुरीषयोः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनस्संस्कारमर्हति।। (*वही* २/१/२०)

३. अमत्या पाने पयो घृतमुदकं वायु प्रतित्र्यहं।
तप्तानि स कृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः।। (*गौ.ध.सू.* ३/५/२)

है। उस व्यक्ति को कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए और घी पीने तथा पुनः उपनयन संस्कार करने को कहा गया है। तभी वह पाप से मुक्त हो सकता है।[१]

मनु ने भी अगर व्यक्ति अज्ञानवश किसी भी प्रकार के मद्य का पान जैसे अज्ञान में वारुणी को पीकर वह पापी हो जाता है। इस पाप से मुक्त होने के लिए उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। मनु ने इस प्रकार से प्रायश्चित्त विधान बताया है कि पापी मनुष्य और वो भी द्विज हो वारुणी का पान करने पर पुनः संस्कार करने से ही शुद्ध होता है। ज्ञान से पीकर मरकर ही शुद्ध होता है।[२]

याज्ञवल्क्य ने भी अज्ञानवश किसी भी प्रकार के मद्यपान करने पर इस प्रकार प्रायश्चित्त बतलाया है कि पानी मनुष्य पुनः संस्कार करने से ही पाप से मुक्त हो सकता है।[३]

पाराशर के अनुसार अज्ञानवश किसी भी प्रकार का मद्यपान करने पर और आटे से बनी सुरा (पैष्टी) के अतिरिक्त उस पापी व्यक्ति को जो ब्राह्मण हो उसे समुद्र में पड़ने वाली नदी के किनारे जाकर चान्द्रायण व्रत करे और ब्राह्मणों को भोजन करावे और बैल के सहित एक गाय ब्राह्मणों को दक्षिणा में देवे।[४] अथवा एक बार भी शराब पीकर अग्नि के समान लाल रंग वाली शराब को अर्थात् आग में खौलती हुई सुरा का पान करे। ऐसा प्रायश्चित्त करने से वह मनुष्य इस लोक में, परलोक में भी अपने को पवित्र कर लेता है।[५]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मनुष्य को

---

१. मत्या मद्यपाने त्वसुरायाः सुरायाश्चाज्ञाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ घृतं प्राश्य पुनः संस्कारश्च।।
(*वसिष्ठ ध.सू. २०/१९*)

२. अज्ञानाद्वारूर्णीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमितिस्थिति।। (*मनु. ११/१४६*)

३. अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्र्यो वर्णा द्विजातयः।। (*याज्ञ. ३/२५५*)

४. सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।।
अनडुत्सहितां गाञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्।। (*पारा. १२/७३*)

५. सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णा सुरां पिबेत्।
स पावयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च।। (*वही १२/७४*)

मद्यपान करना ही नहीं चाहिए। यदि व्यक्ति अज्ञानवश (मद्य) किसी भी प्रकार की सुरा का पान करता है तो वह भी पाप का भागी होता है। इस पाप से छुटकारा पाने के लिये उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। व्यक्ति जब दुष्कृत्य करता है तो उसे अपने आप से भी घृणा होती है। जब वह प्रायश्चित्त सम्बन्धी व्रत चान्द्रायण, कृच्छ्र व्रत करता है या खौलते घी, दुग्ध का सेवन करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो अज्ञानवश किये हुए पाप से मुक्त हो जाता है क्योंकि उसका सारा शरीर पदार्थों से तप्त हो जाता है और शुद्ध हो जाता है।

## ४. सुरा के बर्तन में जलपान करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में सुरा के बर्तन में भी जलपान करने में भी व्यक्ति पापी माना जाता है और उस पाप से मुक्त होने के लिये व्यक्ति को प्रायश्चित्त करना पड़ता है। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में सुरा के बर्तन में जलपान करने में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार जो व्यक्ति सुरापात्र में रखे जल का पान करे वह खङ्खपुष्पी डालकर उबाले गये दूध का पान करते हुए छः दिन व्यतीत करे। इस तरह प्रायश्चित्त करने से वह पाप से मुक्त हो सकता है।[१]

वसिष्ठ धमसूत्र के अनुसार जो व्यक्ति सुरा के बर्तन में जलपान करता है उस व्यक्ति को पद्म, बेल, पलाश, श्वास के जल का पान तीन रात्रि तक करना चाहिए। जिससे वह शुद्ध हो जाता है।[२] सुरापान के दुर्व्यसन से व्यक्ति को बचाने के लिये शास्त्रकारों ने इस प्रकार के कठोर विधान किये हैं ऐसा प्रतीत होता है कि जिससे व्यक्ति सुरा के पास ही न जाय।

मनु ने भी सुरापात्र के जल पीने वालो के लिए प्रायश्चित्त इस प्रकार कहा है कि सुरा के पात्र का जलपान करने वाले, पैष्टी हो या अन्य किसी का भी सुरा पात्र हो जल का पान करने से वह मनुष्य पाप से ग्रस्त हो जाता

---

१. सुराधाने तु यो भाण्डे अपः पर्युषिताः पिबेत्।
शङखपुष्पीविपक्वेन षऽहं क्षीरेण वर्तयेत्।। (*बौ.ध.सू. २/१/२१*)

२. मद्यभाण्डस्थिता आपो यदि कश्चिद् द्विजः पिबेत्।
पद्योदुम्बुरबिल्वपलाश कुशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति। (*वसिष्ठ ध.सू.*)

है। उस व्यक्ति को शङ्खपुष्पी नामक औषधियों को डालकर पकाये हुए दूध को पीना चाहिए। वह इस प्रायश्चित्त को करने से पाप से मुक्त हो जाता है।[१]

याज्ञवल्क्य व पाराशर ने अलग से सुरापात्र में जलपान करने पर प्रायश्चित्त नहीं दिया है।

उपर्युक्त अवलोकन से ज्ञात होता है कि अगर कोई जाने-अनजाने में सुरापात्र के जल को पी लेता है तो वह पाप से ग्रस्त माना जाता है। पाप से ग्रस्त व्यक्ति को पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है। शङ्खपुष्पी नामक एक ऐसी औषधी है जिसे पात्र में डालकर दूध को उबालने से शुद्ध दूध को पीकर वह पापी व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है क्योंकि शङ्खपुष्पी नामक औषधी पात्र व पदार्थ दोनों को शुद्ध करती है इसलिए इसे पीकर व्यक्ति शुद्ध हो जाता है।

## ५. सुरा आघ्राण में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार सुरा को सूँघने का सुरापान किये हुए मनुष्य के मुख से निकली गन्ध को सूँघने या पात्र आदि सुरा की गन्ध को सूँघने में भी प्रायश्चित्त विधान बतलाये हैं जो इस प्रकार है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार सुरापान करने वाले के मुख की गन्ध सूँघने पर तीन बार प्राणायाम करने एवं घृत पीने पर शुद्धि होती है।[२] मनु ने सुरापान करने वाले के मुख की गन्ध को सूँघने में प्रायश्चित्त का वर्णन इस प्रकार किया है। यदि कोई व्यक्ति सोमयाजी (सोमयज्ञ करने वाला) ब्राह्मण मद्य पीने वाले के मुख की गन्ध सूंघता है तो वह जल में तीन बार प्राणायाम करे, घी का भक्षण करने से शुद्ध होता है।[३]

आपस्तम्ब, बौधायन एवं वसिष्ठ से प्रमुख स्मृतियों में याज्ञवक्ल्य एवं पाराशर ने सुरा आघ्राण में अलग से कोई प्रायश्चित्त विधान वर्णित नहीं किया

---

१. अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शंङखपुष्पीश्रितं पयः।। (मनु. ११/१४७)

२. गन्धाघ्राणे सुरापस्य प्राणायामा धृतप्राशनं च।। (गौ.ध.सू. ३/५/६)

३. ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः।
प्राणनप्सु त्रिराम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति।। (मनु. ११/१४९)

है। गौतम, मनु के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सुरा को सूंघने से व्यक्ति दूषित हो जाता है और उस दृत्कृत्य से जो पाप की उत्पत्ति होती है उस पाप से मुक्त होने से उस व्यक्ति को प्रायश्चित्त के रूप में प्राणायाम करके अर्थात व्यक्ति जब अपने प्राणों पर संयम करता तो वह अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है और इससे वह किसी भी दुष्कर्म में अग्रसरित नहीं होता है इस प्रकार वह पाप से मुक्त हो जाता है।

**–इति द्वितीयोध्याय–**

तृतीय अध्याय

# स्तेय एवं निषिद्ध सम्भोग कर्म में प्रायश्चित्त विधान

तृतीय अध्याय

# स्तेय एवं निषिद्ध सम्भोग कर्म में प्रायश्चित्त विधान

प्रस्तुत अध्याय में स्तेय एवं संभोग तथा महापातक के साथ संसर्ग नामक पापों के प्राशचित्तों का वर्णन किया जा रहा है।

## १. ब्राह्मण के हिरण्य का स्तेय में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण के हिरण्य का स्तेय करने में पापी व्यक्ति को निम्न प्रकार से प्रायश्चित्त करना चाहिए। जिनका वर्णन इस प्रकार है आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण के हिरण्य का स्तये करने वाला व्यक्ति अपने केश बिखरे हुए तथा कन्धे पर मूसल रखकर राजा के पास जाए उससे अपना कर्म बतावे। राजा उस मुसल से चोर के ऊपर प्रहार करे, उससे यदि उस पापी व्यक्ति का वध हो जाये तो चोरी के पाप से मुक्ति हो जाती है।[१] यदि राजा उसे क्षमा कर दे तो उसका पाप क्षमा करने वाले राजा को लग जाता है।[२] अथवा स्वंय को अग्नि में झोंक दे।[३] अथवा कठोर तप का बार-बार आचरण करे।[४] अथवा भोजन में प्रतिदिन ह्रास करते हुए अपना जीवन समाप्त कर दे।[५] अथवा एक वर्ष तक तनरन्तर कृच्छ्र व्रत करे।[६] इन प्रायश्चित्त कर्मों को करने पर पापी व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

---

१. स्तेनः प्रकीर्णकेशोऽसे मुसलमाधाय राजानं गत्वा कर्माऽऽचक्षीत। तेनैनं हन्याद्वधे मोक्षः।। (*आप० ध० सू० १/९/४*)

२. अनुज्ञातेऽनुज्ञातारमेनः स्पृशति।। (*वही १/९/५*)

३. अग्निं वा प्रविशेत्।। (*वही १/९/६*)

४. तीक्ष्णं व तप आयच्छेत्।। (*वही १/९/७*)

५. भक्तापचयेन वाऽऽत्मानं समाप्नुयात्।। (*आप०ध०सू १/९/८*)

६. कृच्छ्रसंवत्सरं वा चरेत्।। (*वही १/९/९*)

बौधायन धर्मसूचा के अनुसार ब्राह्मण के हिरण्य का स्तेय करने वाले पापी को प्रायश्चित्त इस प्रकार करना चाहिए। बौधायन ने आपस्तम्ब का समर्थन करते हुए कहा है कि ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने वाला अपने केशों को बिखराकर, कन्धे पर सैंध्रक के काठ का मूसल लेकर राजा के समीप जाकर कहे, मुझे मारिए। राजा उस मूसल से उस पर प्रहार करे, मृत्यु हो जाने पर उस पाप से मुक्ति हो जाती है।[१] चोर कन्धे पर मुसल लेकर जाय और कहे कि राजन् क्षत्रिय के धर्म का स्मरण कर आप इस मूसल से मुझे दण्ड दीजिए। यदि राजा उसे दण्ड दे या छोड़ दे तो वह पाप से मुक्त हो जाता है, किन्तु यदि राजा दण्ड न दे तो वह पाप राजा के ऊपर पहुंच जाता है।[२] गौतम धर्मसूत्र ने ब्राह्मण के हिरण्य को स्तेय करने पर चोर के लिए पृथक रूप से प्रायश्चित्त का वर्णन नहीं किया है।

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण के सुवर्ण को चुराने में पापी व्यक्ति को प्रायश्चित्त इस प्रकार करना चाहिए। वसिष्ठ ने आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम के प्रायश्चित्त विधान में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया है कि राजा उदुम्बर काष्ठ का बना हथियार चोर को दे देता है जिससे स्वंय चोर अपने आपको मान डालता है।[३]

अन्यथा (निष्काल) घृत से सने हुए गोबर के कन्डे की अग्नि से पैर पर्यन्त अपने आप को जलाये और मृत्यु होने के बाद पाप से मुक्त हो जाता है।[४]

मनु के अनुसार ब्राह्मण के सुवर्ण को चुराने से उत्पन्न दोष दूर करने

---

१. स्तेनः प्रकीर्य केशान् सैंध्रक मुसलमादाय स्कन्धेन राजानं गच्छे दनेन मां जहीति तेनैनं हन्यात् वधे मोक्षो भवति।। *(बौ० ध० सू० २/१/१५)*

२. स्कन्धेनाऽऽदाय मुसलं स्तेनो राजानमन्वियात्।
अनेन शधि मां राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन्।।
शासने वा विसर्गें वा स्तेनो मुच्येत किल्विषात्।
अशासनात्तु तद्राजा स्तेनादाप्नोति किल्विषमिति।। *(वही २/९/१६)*

३. ब्राह्मण सुवर्णहरणे प्रकीर्य केशान्राजानमभिधावेत्स्तेनोस्मि भो शास्तु मां भवामिति तस्मै राजौदुम्बंर शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते।। *(वसिष्ठ ध० सू० २०/५१)*

४. निष्कालको वा घृताक्तो गोमयग्निना पादप्रभृत्यात्मानमभिद। ऽहये मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते।। *(वही २०/४२)*

का इच्छुक द्विज (ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण) पुराने वस्त्रों को धारण करता हुआ वन में जाकर ब्रह्म हत्या के लिये कहे गये प्रायश्चित को करे।[१] मनु ने आपस्तम्ब धर्मसूत्र और बौधायन धर्मसूत्र में कहे गये प्रायश्चित्त विधान का समर्थन किया है। ब्राह्मण का सुर्वण चोरी करने वाला अपने अपराध को कहता हुआ राजा के पास जाकर कहे कि आप मुझे दण्डित करें।[२]

तब राजा को चाहिए कि (पूर्व वचन के अनुसार उक्त चोर जिस मुसल को कन्धे पर रखकर लाया है उसी) मुसल को लेकर चोर को स्वंय मारे, उसे मरने (या मारने के कारण मृततुलय होने) से (वह चोर) शुद्ध (पापहीन) हो जाता है और ब्राह्मण पहले कही गयी तपस्या से शुद्ध हो जाता है।[३]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार ब्राह्मण से सुवर्ण को चुराने वाला मनु के बतलाये हुए (मूसल आदि) की प्रक्रिया से प्रायश्चित्त करे वह पाप से मुक्त हो जाता है।[४] यदि पापी राजा से निवेदन नहीं करता तो सुरापान करने वाले महापतकी के लिये विहित व्रत का आचरण करता हुआ अपने बराबर या जितने से ब्राह्मण संतुष्ट हो जाये उतना सोना देने पर पातक से शुद्ध हो जाता है।[५]

पाराशर स्मृति के कथानुसार जो ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी करता है वह स्वंय मूसल लेकर अपने को मारने के लिए राजा के पास जाये।[६] राजा के द्वारा मारे जाने पर उसकी शुद्धि हो जाती है और वह पाप से मुक्त हो जाता है। यदि वह ऐसा जानबूझकर करता है तो मारना चाहिए। अन्यथा नही।[७]

---

१. तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवासा द्विजोऽण्ये चरेद् ब्रह्माहणो व्रतम।। (मनु ११/१०९)

२. सुवर्णसतेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रयान्यां भवाननुशस्त्विति।। (वही ११/९९)

३. गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तुतं स्वयम्।
वधेन शुध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु।। (वही ११/१००)

४. ब्राह्मणस्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत्।
स्वकर्म ख्यापयंस्तेन हृतो मुक्तोऽपि वा शुचिः।। (याज्ञ० ३/२५७)

५. अनिवेद्य नृपे शुद्धयेत्सुरापव्रतमाचरन्।
आत्मतुल्यं सुवर्णे वा दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत।। (वही ३/२५८)

६. अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम्।
गच्छेन्मुशलमादाय राजानं स्ववधाय तु।। (पारा० १२/७५)

७. हतः शुद्धिमवाप्नोति राजाऽसौ मुक्त एव च।
काममस्तु कृतं यत्स्यान्नाऽन्यथा वधमर्हति।। (वही० १२/७६)

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण सुवर्ण की चोरी जैसे महापातक के पापी व्यक्ति को प्रायश्चित्त करने पर पाप से मुक्ति मिल सकती है। धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के प्रायश्चित्त के अवलोकन से मृत्यु पर्यन्त ही सुवर्ण चुराने वाले व्यक्ति को पाप से मुक्ति मिल सकती है। ब्राह्मण जो की सर्वविध पवित्रता का प्रतीक है उसे चोरी, लालच आदि से दूर होना ही चाहिए अन्यथा उसका ब्राह्मणत्व नहीं है।

## (२) मन्दिर के धन की चोरी में प्रायश्चित विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार मन्दिर के धन की चोरी में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ ने मन्दिर के धन की चोरी में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन स्पष्ट नहीं किया है। विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार मन्दिर के धन की चोरी करने वाले को एक वर्ष का कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।[2] व्रत की पूर्ण विधि प्रथम अध्याय में वर्णित है। इस प्रकार एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत को विधि पूर्वक करने से धन स्तेय के पाप से व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

मनु के अनुसार जो किसी भी जगह से धन की चोरी ज्ञानपूर्वक करता है वह व्यक्ति एक वर्ष तक प्राजापत्य व्रत करते हुए प्रायश्चित करे इस प्रकार व्रत करने से शुद्ध हो जाता है।[3] याज्ञवल्क्य के एवं पाराशर स्मृतिकारों ने मन्दिर के धन की चोरी में पृथक् रूप से कोई प्रायश्चित्त विधान नहीं बतलाया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों दोनों ही के मत से चोरी करने वाला पापी व्यक्ति व्रत आदि करने से पाप से मुक्त हो जाता है। इसलिए जो मनुष्य मन्दिर के धन की चोरी करता है तो वह पाप का भागी होता है। मन्दिर हिन्दू समाज में एक सर्वश्रेष्ठ एवं पवित्र स्थान है। ऐसी जगह से स्तेय आदि कर्म को करने से मनुष्य पाप का भागी होता है क्योंकि स्तेय कर्म किसी भी स्थल पर किया जाये दुष्कर्म ही कहलायेगा।

---

१. तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवासा द्विजोऽण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम।। *(मनु ११/१०१)*

२. विष्णु धर्मसूत्र।। (५२/५/१३)

३. धान्यन्नधनस्त्रीर्या कृत्वा कामाद् द्विजात्तमः।
श्वजातीय गृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुध्यति।। *(मनु ११/१६२)*

इसलिये व्यक्ति को मन्दिर जैसे स्थान पर स्तेय जैसे कर्म कर अपने चित को दूषित करके मनुष्य अपने आपको पाप कर्म में डाल देता है। और उपवास आदि कर्म करके अपने शरीर को यातनाये देकर वह पाप से मुक्त हो सकता है।

## (३) सुवर्ण आदि रत्न व धातुओं की चोरी में प्रायश्चित्त विधानः

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार यदि व्यक्ति सुवर्ण आदि रत्न व धातुओं की चोरी करता है तो उसे उस दुष्कर्म (स्तेय) का फल भुगतना पड़ता है। इसके लिये आपस्तम्ब का कथन है कि व्यक्ति रत्न आदि के स्तेय कर्म करने पर पाप का भागी होता है। आपस्तम्ब ने इस पाप से मुक्त होने के लिये उस पापी व्यक्ति को एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करने को कहा है जिससे वह कर्म अनुसार इस व्रत का विधान करके इस पाप से मुक्त हो सकता है। सूत्रकारों के अनुसार दिन के चौथे काल में थोड़ा खाना चाहिए। दिन में चार बार स्नान करना चाहिए। दिन में खड़ा रहना चाहिए। रात्रि में बैठा रहना चाहिए। इस प्रकार करते-करते दिन वर्षों के उपरान्त वह पापी व्यक्ति अपने पाप से मुक्त हो जाता है।[१]

बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ ने सुवर्ण एवं रत्न, धातुओं की चोरी में पृथक रूप से प्रायश्चित्त विधान नहीं किया है। मनु के अनुसार रत्नों, मोतियों, मूंगा, ताम्र, चांदी, लोहा कास्य या पत्थरों की चोरी पर कोदो चावलों का पन्द्रह दिनों तक भोजन करे।[२] इस प्रकार प्रायश्चित्त करता हुआ पाप से मुक्त हो सकता है। मनु के मतानुसार जो व्यक्ति मणि (पन्ना, माणिक्य आदि) मोती, मूंगा, तांबा, चांदी, लोहा, कांसा और पत्थर इन सब रत्न व धातुओं के स्तेय करने पर वह व्यक्ति पापी माना जाता है मनु के अनुसार व्यक्ति पाप ग्रसित होने पर बारह दिन तक अन्न का कण (खुद्दी) ही खाये। इस प्रकार

---

१. कृच्छ्रसंवत्सरं वा चरेत्। अथाप्युदाहरन्ति। स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरूदारं च गत्वा ब्रह्माहत्याकृत्वा चतुर्थकाला मितभोजनाः स्युरपोभ्यवेयुः सवनानुकल्पम्। सवनासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैरप पापं नुदन्ते। *(आप० ध०सू० १/९/२५/८-१०)*

२. *(मनु० ११/१६२-१६८)*

प्रायश्चित्त करने पर व्यक्ति पाप से छुटकारा पा सकता है।[१]

याज्ञवल्क्य के कथानुसार जो व्यक्ति किसी भी प्रकार के रत्न को चुराता है यदि वह ब्राह्मण के यहां रत्न की चोरी करता है तो वह ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी की समान ही माना जाता है।[२] याज्ञवल्क्य का मत है कि वह पाप से मुक्ति पाने के लिए वही प्रायश्चित विधान करें। जो ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी करने पर करना पड़ता। इस प्रायश्चित्त को करने से पाप से छुटकार पा सकता है।[३]

## (४) अन्न की चोरी में प्रायश्चित्त विधान

मनु के मतानुसार जो व्यक्ति ब्राह्मण के घर से धान्य, अन्न की चोरी करता है। उस व्यक्ति को एक वर्ष तक प्राजाप्त्य व्रत करने से शुद्ध हो जाता है।[४] जो व्यक्ति भक्ष्य (मिठाई लड्डू आदि) भोज्य (खीर आदि) को चुराता है उस व्यक्ति को पंचगव्य पीकर अपने को शुद्ध करना चाहिए।[५]

मनु के कथानुसार ही यदि व्यक्ति सूखा अन्न (गेहूं, धान या चावल आदि) गुड़ को चुराता है। इनके चुराने पर तीन रात उपवास करे।[६] इस प्रकार प्रायश्चित करने पर व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। अन्न की चोरी में आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ, स्मृतिकार याज्ञवल्क्य एवं पाराशर ने पृथक रूप से कोई प्रायश्चित विधान नहीं किया है।

## (५) पशु-पक्षी की चोरी में प्रायश्चित्त विधान

मनु के मतानुसार यदि व्यक्ति दो खुरों वाले (गाय, बैल, भैंस आदि)

---

१. मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता।। (मनु० ११/१६७)

२. अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा।
निक्षेपस्य च सर्वे हि सुवर्णस्तेयसंमितम्।। (याज्ञ० ३/२३०)

३. ब्राह्मणस्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत्
स्वकर्म ख्यापयंस्तेन हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः।। (वही ३/२५७)

४. धान्यान्नवधवौर्याणि कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः।
स्वजातीय गृहादेव कृत्छ्राब्देन विशुध्यति।। (मनु० ११/१६२)

५. भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पंचगव्यं विशोधनम्।। (मनु० ११/१६५)

६. तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्।। (वही ११/१६६)

एक खुरवाले (घोड़ा, गधा, आदि) पशु, पक्षी इनको चुराता है। उस व्यक्ति को पापी माना जाता है मनु के कथानुसार पापी व्यक्ति के लिए प्रायश्चित विधान इस प्रकार है। वह व्यक्ति तीन दिन तक केवल दुग्धपान करे। इस प्रकार वह पाप से छुटकारा पा सकता है। वह व्यक्ति चोरी की गई वस्तु को वापस लौटाकर प्रायश्चित्त कर सकता है।[१]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार यदि कोई व्यक्ति पशु में घोड़ा या गाय को ब्राह्मण के घर से चुराता है। तब भी वह सुवर्ण के चुराने पर जितना पापी माना जाता है उतना ही तब पाप का भागी होता है इसलिए उसे ब्राह्मण सुवर्ण के स्तेय में विहित प्रायश्चित विधान करना चाहिए।[२] इससे वह पाप से छुटकारा पा सकता है। अथवा वह सुरापान में विहित प्रायश्चित्त विधान को भी करने से पाप से मुक्त हो जाता है।[३] सूत्रकारों एवं पाराशर ने स्मृति ने इसका पृथक रूप से प्रायश्चित्त विधान नहीं किया है।

## (६) रेशमी वस्त्रों की चोरी में प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्रकारों ने रेशमी वस्त्र की चोरी में कोई प्रायश्चित विधान नहीं किया है विष्णु भी मनु के कथन से सहमत है।

मनु के अनुसार यदि व्यक्ति किसी भी प्रकार के कपड़े की चोरी करता है वह पापी माना जाता है।

मनु के अनुसार उस व्यक्ति को प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार करना चाहिए। किसी प्रकार के कपड़े में स्तेय करने पर तीन रात उपवास करें।[४] सूती, रेशमी, ऊनी कपड़े के स्तेय में तीन दिन तक केवल दुग्धपान करे।[५]

---

१. अनिवेद्य नृपे शुद्धयेत्सुरापव्रतमाचरन्।
आत्मतुल्यं सुवर्णे वा दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत।। *(याज्ञ० ३/२५८)*

२. कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्जाश्चैव त्र्यंह पयः।। *(मनु० ११/१६८)*

३. ब्राह्मणस्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत्।
स्वकर्म ख्यापंयस्तेन हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः।। *(याज्ञ० ३/२५७)*

४. तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्।। *(मनु० ११/१६६)*

५. कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः।। *(वही ११/१६८)*

याज्ञवल्क्य के अनुसार किसी भी प्रकार के वस्त्रों को चुराने वाला व्यक्ति पाप का भागी माना जाता है। याज्ञवल्क्य के कथनानुसार पापी व्यक्ति को तर्जनी एवं अगूंठा काट लेना चाहिए। दुबारा अपराध में उसकी एक हाथ एक पैर काट देना चाहिए। इस प्रायश्चित्त को करने पर वह पाप से मुक्त हो जाता है।[१]

पाराशर स्मृति में सूत्रकार ने रेशमी वस्त्रों के स्तेय में कोई प्रायश्चित्त विधान स्पष्ट रूप से नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि यदि व्यक्ति किसी का रेशमी, सूती, ऊनी कपड़े का स्तेय करे तो वह हल्के पाप का भागी होता है। और जिस कर्म को वह अपने हाथ से करता है वह दुष्कर्म करने के लिए उसके हाथ ही न रहे ऐसा स्मृतिकार ने प्रायश्चित विधान दिया है क्योंकि यदि व्यक्ति एक बार दुष्कर्म करके उसका प्रायश्चित्त न करे तो उस कर्म को करने के लिये उसका चित पुनः उस कार्य के लिये प्रेरित हो सकता है। इसलिए जिस शरीर के उस अंग से विहीन होने पर वह उस दुष्कर्म को करने का साहस नहीं करेगा।

## (७) भूमि की चोरी में प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्रकारों आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ ने भूमि की चोरी के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन पृथक रूप से नहीं किया है।

स्मृतिकारों में मनु के कथानुसार यदि व्यक्ति किसी के खेत, भूमि का स्तेय करता है। मनु के अनुसार वह व्यक्ति पाप से ग्रसित होता है। उस व्यक्ति को पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है। मनु ने पापी व्यक्ति के लिये प्रायश्चित्त विधान में चान्द्रायण नामक व्रत को बतलाया है। इस व्रत को बतलाया है। इस व्रत को करने से वह व्यक्ति पाप से मुकत हो सकता है।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण जाति विशेष के यहाँ

---

१. उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसन्दशंहीनकौ।
कार्यो द्वितीयापराधें करपादैकहीनकौ।। *(याज्ञ० २/२७४)*

२. मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चाद्रायणं स्मृतम्।। *(मनु० ११/१६३)*

भूमि की चोरी करता तो वह व्यक्ति सुवर्ण स्तेय के समान पापी माना जाता है। याज्ञवल्क्य के कथानुसार उस पापी व्यक्ति को ब्राह्मण सुवर्ण के स्तेय में विहित प्रायश्चित्त करना चाहिए।[१] जिससे वह पाप से शुद्ध हो जाता है क्योंकि याज्ञवल्क्य भूमि की चोरी, ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी के समान मानते है।[२]

पाराशर के कथानुसार यदि कोई व्यक्ति किसी भी वर्ण के पुरुष की भूमि का हरण कर ल तो वह पापी माना जाता है।

पाराशर के मतानुसार स्तेय कर्म से दूषित व्यक्ति के लिये प्रायश्चित विधान इस प्रकार है। पापी को बावड़ी, कुआ, तालाब आदि के निर्माण से सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से तथा करोड़ो गौओं के दान करने से ही पाप से मुक्त नहीं हो पाता है।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि भूमि के स्तेय जैसे कर्म को करने से मनुष्य दुष्कर्म से दूषित हो जाता है। सूत्रकारों के अनुसार व्यक्ति इस पाप से मुक्त होने के लिये चांद्रायण व्रत को करके तथा दान एवं कुआ, बावड़ी, तालाब आदि का निर्माण करने से वह शुद्ध हो जाता है। अर्थात् उस व्यक्ति के परिश्रम से कमाये हुए धन का व्यय होना ही पाप से शुद्ध होना होता है। क्योंकि व्यक्ति जिस पैसे को परिश्रम से कमाता है और वह धन व्यर्थ ही नष्ट हो जाये तो उसका चित दुखित होता है। और इस कर्म के स्मरण से वह घबराता है क्योंकि यदि वह पुनः इस कर्म को करेगा तो उसे अपना धन व्यय करना पड़ेगा। इस कारण से वह इस दुष्कर्म को करने के लिये पुनः प्रेरित नहीं हो सकता। इस तरह वह अपने पाप से मुक्त हो सकता है।

## (८) लकड़ी की चोरी में प्रायश्चित्त विधान

मनु के कथनानुसार जो व्यक्ति तृण, लकड़ी, पेड़ का स्तेय करता है उस व्यक्ति को तीन रात उपवास करना चाहिए। इस प्रकार वह पाप से

---

१. ब्राह्मणस्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत्।
स्वकर्म ख्यापयंस्तेन हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः।। *(याज्ञ० ३/२५७)*

२. अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा।
निक्षेपस्य च सर्वे हि सुवर्णस्तेयसंमितम्।। *(याज्ञ० ३/२३०)*

३. वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेयशतैर्मखैः।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति।। *(परा० १२/४९)*

छुटकारा पा सकता है।[१]

चारों सूत्रकारों एवं याज्ञवल्क्य व पाराशर ने लकड़ी की चोरी में प्रायश्चित विधान स्पष्ट नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि काष्ठ की चोरी में केवल उपवास करने से ही व्यक्ति अपने को शुद्ध कर सकता है क्योंकि वह अपने शरीर को यातना देकर इस पाप से छुटकारा पा सकता है।

## (९) धरोहर की चोरी में प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्रकारों के अनुसार धरोहर की चोरी में कोई प्रायश्चित स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं है।

स्मृतिकारों के अनुसार मनु का कथन है कि व्यक्ति किसी भी धरोहर चाहे वह किसी रूप में हो का स्तेय करता है उस व्यक्ति को ब्रह्महत्या के समान प्रायश्चित करना चाहिए। इसके करने से वह पाप से शुद्ध हो जाता है।[२]

ब्रह्महत्या को सूत्रकारों ने महापातक में सर्वप्रथम स्थान दिया है। और इस महापातक को करने पर व्यक्ति मृत्युपर्यत्न तक ही प्रायश्चित करने पर ही पाप से मुक्त हो सकता है और इसी के समान किसी भी व्यक्ति का कोई भी समान यदि व्यक्ति के पास धरोहर के रूप में रखा हो और वह व्यक्ति लालचवश उस धरोहर का हरण कर ले तो वह पाप का भागी हो जाता है क्योंकि स्त्री जैसे पात्र को वैदिक साहित्य ने सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। तो धरोहर में स्त्री जैसा भी कोई पात्र हो सकता है इसलिए इसका प्रायश्चित ब्रह्महत्या के समान ही माना गया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति की धरोहर का अपहरण ब्रह्महत्या महापातक के समान ही माना जाता है। इसके लिए जिस प्रकार ब्रह्म हत्या में प्रायश्चित्त विधान विहित है उसी प्रकार प्रायश्चित्त को करके पापी व्यक्ति पाप से मुक्त हो सकता है। क्योंकि ब्रह्म हत्या के लिए

---

१. तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरामं स्याद भोजन।। *(मनु० ११/१६६)*

२. उक्तवा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरूं तथा।
अपहृत्य च निःक्षेप कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम्।। *(मनु० ११/८८)*

शास्त्रकारी एवं स्मृतिकारों ने कठोर से कठोर प्रायश्चित विधान बताये है।

## (१०) खाट वा आसन के स्तेय में प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्रकारों ने खाट व आसन के स्तेय कर्म में प्रायश्चित विधान का वर्णन नही किया है।

स्मृतिकारों में मनु के अनुसार यदि व्यक्ति शय्या का खाट, आसन, फल, फूल, मूल, सवारी आदि को चुराता है। तब भी वह व्यक्ति पापी माना जाता है। पाप से छुटकारा पाने के लिए उसे प्रायश्चित्त इस प्रकार करना चाहिए। इन सब वस्तुओं का स्तेय का दुष्कर्म करके व्यक्ति पंचगव्य पीने से पाप से मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति को किसी भी वर्ण, जाति, उम्र के व्यक्ति की शय्या, आसन, आदि का स्तेय नहीं करना चाहिए। क्योंकि इन वस्तुओं के स्तेय होने पर व्यक्ति परेशान हो जाता है। भ्रमित होकर इधर-उधर होकर उस वस्तु की खोज करता है और न मिलने पर वह हृदय से विचलित हो जाता है। और स्तेय करने वाले को इस बात का आभास नहीं होता कि वह इस कर्म को करने पर कितने व्यक्तियों को परेशान करता है। इसलिये उसे गाय के द्वारा बने पंचगव्य को पीना पड़ता है जिससे उसे प्रतीत होता है कि उसने कोई दुष्कर्म किया है और पुनः इस कर्म को न करने के लिये वह तैयार हो जाता है। इससे ही वह अपने पाप से मुक्त हो जाता है।

## (११) परस्त्री के अपहरण में प्रायश्चित्त विधान

मनु के अनुसार यदि कोई व्यक्ति परस्त्री अर्थात् दूसरे की स्त्री का अपहरण कर लेता है। तब भी वह पापी माना जाता है। मनु के अनुसार इस पाप से मुक्त होने के लिये प्रायश्चित विधान इस प्रकार है। उस व्यक्ति को अपनी शुद्धि के लिये चान्द्रायण कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।[२] इस व्रत को करने से वह पाप से मुक्त हो जाता है।

---

१. भक्ष्यभोज्यपहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम्।। *(मनु० ११/१६५)*

२. मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च।
कूपवारी जलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् *(मनु० ११/१६३)*

याज्ञवल्क्य ने कथनानुसार यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण की स्त्री का अपहरण करता है तो वह पापी माना जाता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार वह व्यक्ति उतना ही पापी माना जाता है जितना कि ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी में। इसलिये याज्ञवल्क्य का कथन है कि वह पाप से मुक्त होने के लिये वही प्रायश्चित्त करे जो ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी में व्यवस्थित है। सूत्रकारों एवं पाराशर ने पृथक रूप से परस्त्री का अपहरण नामक पाप का प्रायश्चित विधान नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि वेदों में स्त्री पूज्यनीय है। सूत्रकार एवं स्मृतिकारों ने स्त्री को मां, बहन, पत्नी, आदि के रूप में दृष्टिगत किया है। यदि व्यक्ति इस पूजनीय व्यक्तित्व के साथ कोई दुराचार या उसका अपहरण करे तो वह ब्राह्मण सुवर्ण के स्तेय की तरह पाप का भागी बनेंगा और उसको इस पास से मुक्त होने के लिये कोई न कोई प्रायश्चित विधान करना पड़ेगा। सूत्रकारों के अनुसार चांद्रायण व्रत एवं ब्राह्मण के सुवर्ण के स्तेय में विहित प्रायश्चित विधान को करना पड़ेगा जिससे वह इस व्रत को करने से पाप से मुक्त हो जायेगा क्योंकि उपवास आदि कर्म से व्यक्ति का चित शुद्ध हो जाता है।

## (ख) शास्त्र विरुद्ध संभोग में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार शास्त्र विरुद्ध संभोग निम्न प्रकार है।

गुरु की भार्या के साथ संभोग द्विज की स्त्री के साथ संभोग, नीच जाति की नारी के साथ संभोग, मित्र की स्त्री से संभोग, पुत्र की पत्नी से संभोग, चाण्डाल कन्या से संभोग, कुंवारी कन्या के संभोग करने में, रजस्वला स्त्री से संभोग, स्वयं में (सहोदर बहना से संभोग, वीर्यपात तथा उसके साथ संभोग,) मद्यपान करने वाली स्त्री के साथ संभोग, दिन में संभोग करने से व्यक्ति, पापी माना जाता है। गुरु की भार्या से संभोग करने पर व्यक्ति धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार महापातक की श्रेणी में आ जाता है। इस प्रकार वह महापापी माना जाता है। इस पाप से छुटकारा पाने के लिये

---

१. भक्ष्यभोज्यपहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम्।। *(मनु० ११/१६५)*

२. मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च।
कूपवासी जलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम्।। *(मनु० ११/१६३)*

प्रायश्चित्त विधान का वर्ण धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार आगे किया जा रहा है।

## (१) गुरु की भार्या के साथ संभोग करने पर प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्रकारों में वसिष्ठ ने तथा स्मृतिकारों में मनु याज्ञवल्क्य एवं पाराशर के अनुसार गुरु की भार्या के साथ संभोग करने में व्यक्ति महापातक से ग्रसित हो सकता है इस पाप से शुद्ध होने के लिये प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार गुरुपत्नी के साथ संभोग करने पर पापी को भीतर प्रवेश करने योग्य खोखली, लोहे की बनी स्त्री मूर्ति में प्रवेश करके दोनों और से अग्नि प्रज्जवलित कराकर अपने को जला डालें।[१] गुरु पत्नी के साथ मैथून करने वाला महापातक अण्डकोष सहित जननेन्द्रिय को काटकर अपनी अञ्जलि में रखकर बिना रुके दक्षिण दिशा को तब तक चलता जाय जब तब गिर कर मृत्यु नहीं प्राप्त कर लेता।[२] अथवा जलती हुई लोहे की या तांबे की स्त्री प्रतिमा का आलिङ्गन न करके जीवन समाप्त करें।[३] पापी व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाते है।

बौधायन के कथनानुसार गुरुपत्नी का संभोग करने वाला जलती हुई लोहे की शय्या पर लेटकर जीवन समाप्त कर दे।[४] अथवा जलती हुई लोहें की स्त्री प्रतिमा का आलिङ्गन कर मृत्यु प्राप्त करें।[५] अथवा आपस्तम्ब धर्मसूत्र के कथनानुसार अण्डकोष के सहित लिंग को काटकर उसे अंजलि पर रख कर दक्षिण और पश्चिम दिशा के मध्य नैर्ऋत्य कोण को तब तक चलता रहे जब तक मृत्यु न हो जाये।[६]

---

१. गुरुतल्पगामी तु सुषिरां सूर्मि प्रविश्योभयत आदीप्याऽभिदहेदात्मानम्।। *(आप०ध०सू० १/१०/२८/१५)*

२. गुरुतल्पगामी सवृषणं शिश्नं परिवास्याऽञ्जलावा धाम दक्षिणां दिशमनावृतिं व्रजेत्।। *(वही १/९/२५/१)*

३. ज्वलिता वा सूर्मिं परिष्वज्य समाप्नुयात्।। *(वही १/९/२५/२)*

४. गुरुतल्पगस्तप्ते लोहशयने शयीत।। *(बौ०ध०सू० २/१/१२)*

५. सूर्मि ज्वलन्तीं वा श्लिष्येत्।। *(बौ०ध०सू० २/१/१३)*

६. लिंङ्ग वा सवृषणं परिवास्याऽञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीच्योर्दिशोरन्तरेण गच्छेदा निपतनात्।। *(वही २/१/१४)*

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार गुरुपत्नी के साथ संभोग करने में वही प्रायश्चित करें जो पहले आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं बौधायन धर्मसूत्र ने बताये है अथवा मृत्यु के बाद वह पाप से मुक्त होता है।[१]

वसिष्ठ धर्मसूत्र ने पहले तीन सूत्रकारों द्वारा कथित प्रायश्चित विधान में एक उक्ति और जोड़ दी है कि गुरु की पत्नी के साथ मैथुन करने वाला व्यक्ति पहले आपस्तम्ब, बौधायन व गौतम द्वारा कथित प्रायश्चित्त को करे।[२] (निष्काल को) अर्थात् उस समय तक तप्त घी को पीकर मृत्यु होने से ही पाप से शुद्ध होता है।[३]

मनु के अनुसार गुरु पत्नी से मैथुन करने वाला व्यक्ति को अपने पाप को कहकर, तपाये गये लोहे की शय्या पर सोवे तथा जलती हुई लोहमयी स्त्री प्रतिमा का आलिङ्गन कर मरने से वह पापी शुद्ध, पापहीन होता है।[४] अथवा लिंङ्ग सम्बन्धी पहले सूत्रकारों द्वारा बताये प्रायश्चित्त को करें।[५] अथवा खट्वाङ्ग धारण करता हुआ पुराना वस्त्र पहने एवं केश तथा नख बढ़ाये हुए उस संभोग कर्त्ता को निर्जन वन में सावधान होकर एक वर्ष तक प्राजापत्य नामक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।[६]

अथवा गुरुपत्नी संभोगजन्य पाप की निवृति के लिये जितेन्द्रिय होकर हविष्यान से नीवार आदि की यवागू (लपसी) से तीन मास तक चान्द्रायण व्रत करें।[७]

---

१. मृतः शुध्येत्।। *(गौ० धू० सू०)*

२. गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुद्धत्याञ्जावाधाय दक्षिणमुखो।
गच्छेद्यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेकदाप्रलयम्।। *(वसिष्ठ धू० सू० २०/१३)*

३. निष्कालको वा घृताभ्यक्तस्तप्तां सूर्मी परिष्वजेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते।। *(वही २०/१४)*

४. गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये।
सूर्मी ज्वलन्ती स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्धयति।। *(मनु० ११/१०३)*

५. स्वयं वा शिश्नवृषणावृत्कृत्याधाय चाञ्जलौ।
नैर्ॠर्तीं दिशमातिष्ठेदानिपाताग जिह्मगः ।। *(वही ११/१०४)*

६. खटवाङ्गी चीरवासा बा श्मश्रुलो विजने बने।
प्राजापत्यं चरेंत्कृच्छ्रमब्दमेक समाहितः।। *(वही ११/१०५)*

७. चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नितेन्द्रियः।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये।। *(वही ११/१०६)*

याज्ञवल्क्य के मतानुसार नारी की तप्त लौहमूर्ति के साथ सोवे तथा लोहे की जलती हुई शय्या पर अथवा लिङ्ग और अण्डकोश काटकर हाथ में लेकर नैर्ऋत्य दिशा को चलता चलता शरीर त्याग देने पर शुद्ध होता है।[१] अथवा गुरुपत्नी का भोग करने वाला तीन वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करें अथवा तीन मास तक वेद संहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करें।[२] याज्ञवल्क्य के कथानुसार संभोगकर्त्ता 'सहस्रशीर्षा' आदि सोलह ऋचाओं से सूक्त का जप करने पर पाप से मुक्त होता है। अथवा तीन रात्री व्रत के अन्त में दूध देने वाली गाय का दान करना चाहिए।[३]

पराशर ने गुरुपत्नी के संभोग करने में पृथक रूप से प्रायश्चित्त वर्णन नहीं किया है। पराशर ने अगम्या स्त्री का समागम करने से जो पाप होता है उसके लिये प्रायश्चित्त विधान बतलाया है। गुरु की पत्नी का भी संभोग नहीं करना चाहिए अगर कोई व्यक्ति गुरु की भार्या का गमन करता है तो उसे प्रायश्चित इस प्रकार करना चाहिए। पाराशर ने चान्द्रायण नामक उपवास का विधान इस प्रकार किया है कि कृष्ण पक्ष में भोजन करते समय अपने भोजन में से एक एक ग्रास प्रत्येक दिन कम करता रहे, तथा शुक्ल पक्ष में प्रत्येक दिन एक एक ग्रास की वृद्धि करता रहे पर ञ्च अमावस्या के दिन कुछ भी भक्षण नहीं करना चाहिए। इस प्रकार चान्द्रायण व्रत को करें।[४]

अथवा प्रत्येक ग्रास को मुर्गी के अण्डे के समान बड़ा बनावे। इसके विपरीत आचरण धर्म के विरुद्ध है तथा न इससे शुद्धि हो सकती है।[५] संभोग कर्त्ता को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। तत्पश्चात दो गायें दक्षिणा में देनी

---

१. तप्येऽयःशयने सार्धमायस्य योषिता स्वपेत्।
गहीत्वोत्कृत्य वृषणौ नैर्ऋत्यां चोत्सृजेत्तनुम्।। *(याज्ञ० ३/२५९)*

२. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसहिताम्।। *(याज्ञ० ३/२६०)*

३. सहस्रशीर्षा जापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः।
गोर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी।। *(वही ३/३०४)*

४. एकैकं ह्रासयेद् ग्रास कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्।
अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चान्द्रायणो विधिः।। *(पाराशर स्मृति १०/२)*

५. कुक्कुटाण्डप्रमाण तु ग्रासं वै परिकल्पयेत्।
अन्यथा जातदोषेण न धर्मों न च शुद्ध्यते।। *(वही १०/३)*

चाहिये। ऐसा करने से निस्संदेह पाप की शुद्धि हो जाती है।[१]

इस प्रकार से पाप का प्रायश्चित्त करने पर ब्राह्मण को भोजन कराये, तथा दो गायें व एक जोड़ा वस्त्र ब्राह्मण को दक्षिणा के रूप में देना चाहिए। इस प्रकार प्रायश्चित्त करने पर वह पाप से मुक्त हो जाता है।[२]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि गुरु की भार्या से साथ संभोग करने पर मृत्यु ही मुख्य प्रायश्चित्त है। यह प्रायश्चित्त से अधिक कठिन है। जिस प्रकार मनुष्य एक कठिन कार्य करने के बजाय भिन्न-भिन्न सरल कर्म करने की विचारधारा बनाता है उसी प्रकार संभोग कर्त्ता भी लोह से तप्त प्रतिमा का आलिङ्गन करते हुए मर जाये या फिर वह चांद्रायण आदि व्रतों को नियमानुसार करने से पाप से छूट सकता है। अर्थात् मुक्ति पा सकता है।

अतः यह कहना उचित होगा कि इस प्रसंग में वर्णित तप्त लोहे द्वारा मृत्यु एवं चांद्रायण व्रत ऐसे प्रायश्चित्त विधान है जो गुरु की भार्या के संभोग कर्त्ता को मुक्ति दिला सकते है।

## (२) द्विज की स्त्री के साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार द्विज की स्त्री के साथ संभोग करने पर व्यक्ति पापी माना जाता है। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। जो व्यक्ति ब्राह्मण की स्त्री के साथ मैथुन करे वह व्यक्ति शुद्रजाति का हो तो पापी व्यक्ति गुरु पत्नी संभोग के लिए प्रजनेन्द्रियों के कटवा लेने का प्रायश्चित्त करें।[३]

सूत्रकार के अनुसार अगर ब्राह्मण ही ब्राह्मण की स्त्री का मैथुन करता है वह पतित शूद्र व्यक्ति के लिए विहित प्रायश्चित्त का चतुर्थांश करे अर्थात् पतित के लिए बारह वर्ष की प्रायश्चित्त अवधि है ऐसे ब्राह्मण को तीन वर्ष

---

१. गुरुपत्नी स्नुषां च प्राजापत्यत्रय चरेत्।
गोद्वयं दक्षिणां दत्वा मुच्यते नात्र संशय।। *(परा० १०/१४)*

२. प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
गोद्वय वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्।। *(परा० स्मृति १०/४)*

३. वध्यश्शूद्र आर्यायाम्।। *(आप० २/१०/२७/९)*

की प्रायश्चित्त अवधि है ऐसे ब्राह्मण को तीन वर्ष तक प्रायश्चित करना होता है।[१] उदाहरणार्थ चान्द्रायण व्रत आदि को नियमानुसार करना। इसी प्रकार अपराध के पुनः पुनः करते पर पतित के बताये प्रायश्चित्त का चतुर्थांश और करे।[२] यदि वह अपराध चौथी बार करे तो उसे सूत्रकार के कथनानुसार प्रायश्चित्त को १२ बारह वर्षों तक करें।[३] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार द्विज की स्त्री के साथी संभोग करने में पृथक रूप से कोई प्रायश्चित विधान नहीं है।

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार द्विज की स्त्री के संभोगकर्त्ता को तीन तक वर्ष ब्रह्मचार्य धर्म का पालन करना पड़ता है। तब पापी व्यक्ति संभोग के पाप से मुक्ति पा सकता है।[४] वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार द्विज की स्त्री के साथ संभोग करने पर संभोगकर्त्ता को तीन प्राणायाम के सम्यक् सम्पादन से रात या दिन में किये गये संभोग के पाप से मुक्त हो जाता है।[५] यदि संभोगकर्त्ता ब्राह्मण हो तो वैदिक मन्त्रों के जप एवं होम से छुटकारा पा सकता है।[६]

मनु के अनुसार जो द्विज की पत्नी का संभोग करता है वह व्यक्ति खट्वाङ्ग धारण करते हुए पुराना वस्त्र पहने हुए एवं केश तथा नख बढ़ाये हुए उस संभोगकर्त्ता को निर्जन वन में सावधान होकर एक वर्ष तक प्राजापत्य नामक व्रत को इस विधि से करे।[७]

संभोगकर्त्ता पहले तीन दिन प्रातः काल, तीन दिन सांयकाल तीन दिन

---

१. सवर्णायामन्यपूर्वायां सकृत्तसन्निपाते पादः पततीत्युपदिशन्ति। *(वही २/१०/२७/११)*

२. एवमभ्यासे पादः पादः।। *(वही २/१०/२७/१२)*

३. चतुर्थे सर्वम् *(वही २/१०/२७/१३)*

४. त्रीणि श्रौत्रियस्य।। *(गौ० ध० सू० ३/४/३०)*

५. प्राणायामान्धारयेत्त्रीन्यो यथाविंध्यतन्द्रितः।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।।
कर्मणा मनसा वाचा यदह्ना कृतमैनसम्।
आसीनः पश्चिमां संध्या प्राणायायैर्व्यपोहति।।
कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्र्या कृतमैनसम्।।
उतिष्ठन्पूर्वसन्ध्यां तु प्राणायामैर्प्यपोहति।। *(वसिष्ठ ध० सू० २६/१,२,३)*

६. क्षत्रिय बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपैर्होमैर्द्विजोत्तमः।। *(वही २६/१६)*

७. खट्वाङ्गी चीरवासा व श्मश्रुलो विजने वने।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः।। *(मनु० ११/१०५)*

बिना मांगे भोजन करे और तीन दिन उपवास करे।[1]

याज्ञवल्क्य ने भी मनु के मतानुसार प्रायश्चित वर्णन किया है याज्ञवल्क्य ने प्राजापत्य व्रत के साथ तीन मास तक वेद संहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करे।[2] यह व्रत इस प्रकार करना चाहिए। पापी व्यक्ति शुक्ल पक्ष में तिथि की वृद्धि के साथ मयूर के अण्डे के बराबर एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए फिर कृष्णपक्ष में एक-एक ग्रास घटाते हुए भोजन करने पर पाप से मुक्ति मिलती है।[3] पाराशर स्मृति के अनुसार द्विज की पत्नी के साथ संभोग करने पर पृथक रूप से प्रायश्चित्त नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि द्विज की नारी के साथ संभोग करने में व्यक्ति उतना ही पापी माना जाता है जितना कि गुरु की भार्या के संभोग में। पापी को पाप से छुटकारा पाने के लिये चान्द्रांयण, कृच्छ्र आदि व्रतों का पालन करने पर ही मुक्ति मिल सकती है। मनु व याज्ञवल्क्य ने तो गुरुतल्पगमन तथा द्विज की भार्या के साथ संभोग में एक सा ही प्रायश्चित्त का वर्णन किया है। इससे यह स्पष्ट है कि गुरु की भार्या का संभोगकर्त्ता को व्रत आदि से पाप से मुक्ति मिल सकती है। इस प्रकार कठोर व्रतादि से चित्त शुद्धि सम्भव है।

## (३) नीच जाति की नारी से संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जिस प्रकार गुरु की भार्या, द्विज की पत्नी के साथ संभोग करने में व्यक्ति पापी माना जाता है उसी प्रकार नीच वर्ण की स्त्री से भी संभोग करने में व्यक्ति पापी हो जाता है। पाप से छुटकारा पाने के लिये प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार यदि कोई व्यक्ति शूद्रा के साथ संभोग करता है तो पापी व्यक्ति को घास पर सूर्योदय के समय में बैठकर अपनी

---

१. त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सांय त्र्यहमधादयचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजपत्यं चरन्द्विज।। *(वही ११/२११)*

२. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा व गुरुतल्पगः।
चान्द्रायण वा त्रीन्मासानभ्यरोद्वेदसंहिताम्।। *(याज्ञ० ३/२६०)*

३. तिथिवृद्धया चरेत्पिण्डान् शुक्ले शिखण्डसंमितान्।
एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरन्।। *(याज्ञ० ३/२२३)*

पीठ तपावे।[१] अथवा ब्राह्मण शूद्र से एक रात्री में संभोग का दोष प्रति चौथे भोजन काल पर स्नान करके तीन वर्ष में पाप दूर कर लेता है।[२] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार संभोग कर्त्ता को 'सुरभिमती' आदि पवित्र करने वाले मन्त्रों द्वारा जल का मार्जन करते हुए, रूद्र के ग्यारह अनुवाकों का जप करते हुए पवित्र मन्त्रों के उच्चारण के साथ घृत की आहुति करते हुए सुवर्ण गौ तथा तिल का दान सात दिन तक करें।[३] अथवा जो व्यक्ति गाय के मूत्र, गोबर के रस, दधि, घृत से मिश्रित पके हुए यावक का भक्षण करता है वह शीघ्र ही पाप से मुक्त हो जाता है।[४]

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार जो व्यक्ति निम्न अर्थात् नीच वर्ण की स्त्री से संभोग करता है। संभोग कर्त्ता पाप से छुटकारा पाने के लिए एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे।[५] अथवा शूद्रा से संभोग करने वाले को 'आप' या 'वरुण' के प्रति उक्त मन्त्रों या अन्य पवित्र करने वाले मन्त्रों के उच्चारण के साथ स्नान करे और अपने ऊपर जल छिड़के।[६] अथवा अनिच्छा पूर्वक किय गये संभोग में संभोग कर्ता बारह दिन-रात का कृच्छ्र का तप करे।[७] इन प्रायश्चित्त को करने से पापी व्यक्ति पाप से छूट जाता है।

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार नीच स्त्री के साथ सम्भोग करने पर स्पष्ट तथा पृथक् रूप से प्रायश्चित्त नहीं है।

मनु के अनुसार नीच स्त्री संभोग में, गुरु की भार्या से संभोग के प्रायश्चित से कुछ कम करना पड़ता है। संभोगकर्त्ता को विजन वन में रहना

---

१. अनार्या शयने बिभ्रद्ददद्वृद्धिं कषायपः।
अब्राह्मण इव वन्दित्वा तृणेष्वासीत पृष्ठतप्।। *(आप० ध० सू० १/९/१०)*

२. यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्ण ब्राह्मणस्सेवमानः।
चतुर्थकाल उदकाभ्यवायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपहन्ति पापम्।। *(वही १/९/११)*

३. पवित्रैर्मार्जनं कुर्वन् रूदैकर्दिशिकां जपन्।
पवित्राणि घृतैर्जुहत् प्रयच्छन् हेमगोतिलान्।। *(बौ० ध० सू० ४/६/४)*

४. योऽश्नीयाद्यावकं पक्वं गोमूत्रे सशकृद्रसे।
सदधिक्षीरसर्पिष्के मुच्यते सोऽहसः क्षणात्।। *(बौ० ध० सू० ४/६/५)*

५. अन्त्यावसायिनीगमने कृच्छ्राब्दः।। *(गौ० ध० सू० ३/५/३२)*

६. अनार्जवपैशुन प्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राशनेषु शूद्रायां च रेतः सिक्त्वाऽयोनौ च दोषवती च कर्मण्यपि संधिपूर्वेऽब्लिङ्गाभिरप उपस्पृशेद्वारूणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः।। *(वही ३/८/७)*

७. अमत्या द्वादशत्रः।। *(वही ३/५/३३)*

चाहिए, चिथड़े धारण करने चाहिए।[१] और तीन मासों का चान्द्रायण व्रत करें, उसे याज्ञिक पदार्थ (यथा-फल, मूल नीवार अन्न) या जौ की लपसी या मांड खाने को कहा है।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार नीच वर्ण की स्त्री का संभोग कर्त्ता एक वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत प्रायश्चित्त स्वरूप करना चाहिए। अथवा तीन मासों का चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। तीन मास तक वेद संहिता का पाठ करना चाहिए इस प्रकार प्रायश्चित्त को करने से पापी व्यक्ति संभोग से मुक्ति पा सकता है।[३] मनु एवं याज्ञवल्क्य दोनों ही स्मृतिकारों ने गुरु की भार्या के संभोग सम्बन्धित प्रायश्चित से थोड़ा ही कम नीच की स्त्री के संभोग में प्रायश्चित्त विधान किया है। इस प्रायश्चित्त में पापी मृत्यु से बच जाता है।

पाराशर स्मृति के अनुसार नीच वर्ण की नारी के साथ संभोग करने में पृथक रूप से कोई प्रायश्चित्त विधान नहीं है।

उपर्युक्त अवलोकन से ज्ञात होता है कि गुरु, द्विज व नीच तीनों प्रकारों में से किसी भी वर्ण की स्त्री के साथ संभोग निषेध है। स्मृतिकारों ने तो गुरु, द्विज की भार्या के साथ संभोग पर मिलता जुलता प्रायश्चित्त विधान बताया है और नीच वर्ण की स्त्री के साथ संभोग करने पर उनसे कुछ कम तथा व्रत आदि से पाप की निवृति हो सकती है। इस प्रकार नीचवर्ण की स्त्री का संभोग करता चान्द्रायण कृच्छ्र आदि व्रत से छुटकारा पा सकता है।

## (४) मित्र की स्त्री के साथ संभोग में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार मित्र की स्त्री के साथ संभोग करने पर भी व्यक्ति पापी माना जाता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने संभोग कर्त्ता के विषय में पृथक रूप से कोई प्रायश्चित्त विधान नहीं बतलाया है।

बौधायन धर्मसूत्र ने भी मित्र की स्त्री के साथ संभोग मे पृथक रूप

---

१. खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः।। *(मनु० ११/१०५)*

२. चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तेय।। *(वही ११/१०६)*

३. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्।। *(याज्ञ० ३/२६०)*

से प्रायश्चित विधान न देकर यह कथन किया है कि जिससे मैथुन वर्जित है उसे इस प्रकार प्रायश्चित्त करना चाहिए। संभोग कर्त्ता पवित्र करने वाले (सुरभिमती आदि मन्त्रों से) जल का मार्जन करे। रूद्र के ग्यारह अनुवाकों का जप करते हुए पवित्र मन्त्रों से उच्चारण के साथ घृत की आहुति करते हुए तथा सुवर्ण, गौ तथा तिल का दान करे।[१] अथवा जो व्यक्ति गाय की मूत्र, गोबर के रस, दधि, दूध, घृत से मिश्रित पके हुए यावक का भक्षण करता है। वह शीघ्र ही पाप से मुक्त हो जाता है।[२] सात दिन में यह विधि करने पर पाप से मुक्त होता है।[३]

गौतम धर्मसूत्र ने मित्र की पत्नी के साथ संभोग करने वाले को जलती हुई लोहे की चारपाई पर शयन करे।[४] अथवा तपा कर लाल की गई लोहे की स्त्री प्रतिमा का आलिङ्गन करें।[५] अथवा वह अपनी अण्डकोष सहित जननेन्द्रिय काटकर अञ्जलि में रख कर दक्षिण पश्चिम दिशा को सीधा उस समय तक चलता रहे जब तक गिरकर मर न जाय।[६] मृत्यु के बाद वह पाप से मुक्त होता है।[७]

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार मित्र की स्त्री से मैथुन करने वाला व्यक्ति अपने लिंङ्ग एवं अण्ड कोशों को काटकर उन्हें हाथ में लिये हुए दक्षिण पूर्व की दिशा में तब तक सीधे चलता रहे जब तक मृत होकर न गिर पड़े।[८]

स्मृतिकारों में मनु के मतानुसार मित्र की स्त्री का संभोग तथा गुरु की

---

१. पवित्रैमार्जनं कुर्वन् रूदैकार्देशिकां जपन्।
पवित्राणि घृतैर्जुह्त् प्रयच्छन् हेमगोतिलान्।। *(बौ० ध० सू० ६/४/४)*

२. योऽश्नीयाद्यावकं पक्वं गोमूत्रे सशकृद्रसे।
सदधिक्षीरसर्पिष्के मुच्यते सोंऽहसः क्षणात्।। *(बौ० ४/६/५)*

३. प्रसूतो यश्च शूद्रायां येनाऽगम्या च लाङ्घिता।
सप्तरात्रात्प्रमुच्येते विधिनैतेन तावुभौ।। *(वही० ४/६/६)*

४. लप्ते लोहाशयने गुरुतल्पगः शयीत।। *(गौ० ध० सू० ३/५/८)*

५. सूर्मी वा श्लिष्येज्ज्वलन्तीम्।। *(वही ३/५/९)*

६. लिंङ्ग वा सवृषणमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीची
व्रजेदजिह्ममाशरीरनिपातात्।। *(वही ३/५/१०)*

७. मृतः शुध्येत्।। *(वही ३/५/११)*

८. गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुद्धत्याञ्जलावाधाय दक्षिणामुखो।
गच्छेद्यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयम्।। *(वसिष्ठ ध० सू० २०/१३)*

भार्या के साथ संभोग एक ही प्रकार के पाप है इसलिए दोनों का प्रायश्चित विधान भी मनु ने एक ही बतलाया है। कि जिस प्रकार गुरु की भार्या का संभोग कर्त्ता प्रायश्चित्त करता है वही प्रायश्चित्त मित्र की स्त्री के साथ संभोग करने पर करना चाहिए। प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। संभोग कर्त्ता प्राजापत्य नामक कृच्छ्र व्रत को करें।[१] पिपीलिका मध्य चान्द्रायण व्रत करे।[२] अथवा यति चान्द्रायण व्रत को करता हुआ संयतेन्द्रिय द्विज (शुक्लपक्ष या कृष्ण पक्ष से आरम्भ करे)। एक मास तक प्रतिदिन मध्याह्नकाल में ८-८ ग्रास भोजन करें।[३]

याज्ञवल्क्य के अनुसार मित्र की स्त्री के साथ मैथुन करने वाला व्यक्ति वही प्रायश्चित्त करे जो याज्ञवल्क्य ने गुरु की पत्नी के साथ संभोग करने पर बताया है। प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। जलती हुई शय्या पर लेटे, तप्त लोहे की स्त्रीमूर्ति के साथ सोवे तथा लिंङ्ग और अण्डकोष को काटकर हाथ में लेकर नैऋत्यि दिशा को चलता-चलता शरीर को त्याग दे।[४] अथवा तीन वर्ष तक कृच्छ्र व्रत (प्राजापत्य) को करे अथवा तीन मास तक वेदसंहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करें।[५] इस प्रकार प्रायश्चित्त करने पर पाप से मुक्त हो जाता है।

पाराशर स्मृति के अनुसाए मित्र की स्त्री से संभोग करने पर पृथक रूप से कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है। पराशर के कथानुसार संभोगकर्त्ता यदि चान्द्रायण व्रत को निम्न विधि से करे तो पाप से मुक्त हो सकता है। प्रायश्चित्त विधि इस प्रकार है। संभोग कर्त्ता कृष्ण पक्ष में भोजन करते समय अपने भोजन में से एक एक ग्रास प्रत्येक दिन कम करता रहे तथा

---

१. त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः।। *(वही ३/५/११)*

२. एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
उपस्पृशंस्त्रिषणवधमेतत्तचान्द्रायणं स्मृतम्।। *(वही ११/२१६)*

३. अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिडान्मध्यदिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन्।। *(मनु० ११/२१८)*

४. तप्तेऽयःशयने सार्धमायस्या योषिता स्वपेत्।
गृहीत्वोत्कृत्त्य वृषणौ नैर्ऋत्यां चोत्सृजेत्तनुम्।। *(याज्ञ० ३/२५९)*

५. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्।। *(वही ३/२६०)*

शुक्ल पक्ष में प्रत्येक दिन एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे, परञ्च अमावस्या के दिन कुछ भी भक्षण नहीं करना चाहिए। इस प्रकार नियमानुसार चान्द्रायण व्रत करे।[१] अथवा प्रत्येक ग्रास को मुर्गी के अंडे के सामान ही बड़ा बनाये। इसके विपरीत आचरण धर्म के विरुद्ध है तथा न इससे शुद्धि ही हो सकती है।[२] इस प्रकार से पाप का प्रायश्चित्त करने पर ब्राह्मण को भोजन को दक्षिणा के रूप में देना चाहिए।[३] इस प्रायश्चित्त को करके संभोग के पाप से पापी मुक्त हो जाता है।

प्रस्तुत प्रायश्चित्त पराशर ने चारों वर्णों के पुरुष के लिये बतलाया है।

उपर्युक्त धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के विवेचन से ज्ञात होता है कि प्रायश्चित्त में व्रत का अधिक महत्व है। चान्द्रायण व्रत को करने वाला व्यक्ति अपने को मुक्त कर सकता है या तप्त लोहे आदि से अपने शरीर को कष्ट देकर मृत्यु को प्राप्त करता हुआ अपने पाप से मुक्त हो जाता है।

## (५) पुत्र वधू के साथ संभोग में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में पुत्र वधू के साथ संभोग करने में व्यक्ति पाप का भागी माना जाता है लेकिन धर्मसूत्रकारों ने संभोगकर्त्ता के लिये पृथक या स्पष्ट रूप से प्रायश्चित्त विधान को करना चाहिए।[४] बौधायन के कथनानुसार शूद्रा के साथ संभोग में जो प्रायश्चित्त विधान है उसे करने से पुत्र-वधू के साथ किये गये संभोग के पाप से छुट सकता है।[५]

गौतम के अनुसार भी गुरु की भार्या के साथ संभोग करने पर जो

---

१. एकैकं ह्रासयेद् ग्रास कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्।
अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चान्द्रायणो विधिः।। *(पाराशर स्मृति १०/२)*

२. कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत्।
अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते।। *(वही १०/३)*

३. प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
गोद्वय वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्।। *(पारा०)*

४. गुरुतल्पगामी तु सुषिरां सुर्मि प्रविश्योभयत आदीप्याऽभिदहेदात्मानम्।। *(आप० ध० सू० १/१०/२८/१५)*

५. पवित्रैर्मार्जनं कुर्वन् रूदैकर्दिशिकां जपन्।
पवित्राणि घृतैर्जुह्वत् प्रयच्छन् हेमगोतिलान्।। *(बौ० ध० सू० ४/६/४)*

प्रायश्चित होता है वहीं करना चाहिए।[1]

वसिष्ठ ने भी गुरु की भार्या के साथ संभोग करने में जो प्रायश्चित्त विधान है उसी को करने से पाप से मुक्त हो सकता है।

स्मृतियों के अनुसार पुत्र वधू के साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। मनु के मतानुसार पुत्र-वधू मैथुन करने में संभोग कर्त्ता को वही प्रायश्चित्त करना चाहिए जो गुरु की भार्या के संभोगकर्त्ता को करना पड़ता है। संभोगकर्त्ता को अपना पाप कहकर, तपाये गयी लोहे की शय्या पर सोवे तथा जलती हुई लोहमयी स्त्री प्रतिमा को आलिङ्गन कर मरने से पापी व्यक्ति मुक्त हो जाता है।[2] अथवा पुत्रवधू संभोग जन्य पाप की निवृत्ति के लिये जितेन्द्रिय होकर हविष्यान्न से नीवार आदि की यवागू (लपसी) से तीन मास तक चान्द्रायण व्रत करे।[3]

याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्र-वधू संभोगजन्य पाप की निवृति के लिए तीन वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करे अथवा तीन मास तक वेद संहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करे।[4] इससे वह संभोग के पाप से मुक्त हो सकता है। दोनों स्मृतिकारों ने गुरु की भार्या संभोगजन्य पाप के प्रायश्चित्त को ही पुत्र-वधू के संभोगजन्य पाप की निवृत्ति के लिये माना है।

पाराशर के मतानुसार पुत्र-वधू संभोगजन्य पाप से छुटकारा पाने के लिए पृथक रूप से प्रायश्चित्त विधान नहीं है। अथवा जो अधिक निकट सम्बन्धी स्त्रियां है उनके साथ संभोग में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है उसी प्रायश्चित्त से संभोगकर्त्ता छुटकारा पा सकता है। संभोगकर्त्ता को तीन प्राजापत्य व्रत करने चाहिए तत्पश्चात दो गाये दक्षिणा में देनी चाहिए। ऐसी करने से निस्संदेह उसके पापों की शुद्धि हो जाती है।[5]

---

१. मृतः शुध्येत्। *(गौ० ध० सू०)*

२. गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तते स्वप्यादयोमये।
सूर्मी ज्वलन्ती स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्धयति।। *(मनु० ११/१०३)*

३. चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये।। *(वही ११/१०६)*

४. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायण वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्।। *(याज्ञ० ३/२६०)*

५. मातुलानी सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत्।
गोद्वयं दक्षिणा दत्वा मुच्यते नात्र संशय।। *(पारा०)*

उपर्युक्त प्रायश्चित्त विवरण से ज्ञात होता है कि पुत्रवधू के साथ सम्भोग करने में पापी व्यक्ति उतना ही पतित माना जाता है जितना की अन्य नारियों के साथ सम्भोग करने में पाप से छुटकारा पाने के लिए प्राजापत्य व्रत और दान की विधि अपनाकर पापी व्यक्ति पाप से निवृत्त हो जाता है।

## (६) चाण्डाल कन्या के साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार चाण्डाल कन्या के साथ संभोग करने पर व्यक्ति पापी माना जाता है। पाप से छुटकारा पाने के लिये पापी व्यक्ति को निम्न प्रकार प्रायश्चित्त करना चाहिए।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार चाण्डाल कन्या के संभोग कर्त्ता को घास पर (सूर्योदय के समय से) बैठकर अपनी पीठ को तपाये।[१] अथवा कृष्ण वर्ण (शूद्र) की एक दिन रात सेवा करने के दोष को ब्राह्मण वर्ण का पुरुष प्रति चौथे भोजनकाल पर स्नान करे तीन वर्ष में दूर कर देता है।[२]

बौधायन धर्मसत्र के अनुसार कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत करने पर अज्ञानवश चाण्डाल जाति की स्त्री से मैथुन करने पर ब्राह्मण संभोगकर्त्ता शुद्ध हो जाता है।[३] किन्तु जानबूझ से कर्म करे तो वह उसके समान ही हो जाता है अर्थात् चाण्डाल ही हो जाता है।[४]

गौतम ने चाण्डाल कन्या के साथ मैथुन करने में प्रायश्चित्त विधान विशेषतः उल्लेख नहीं किया है।

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार अगर कोई व्यक्ति चाण्डाली की कन्या से संभोग करता है तो उसे कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।[५] अथवा, शिशुकृच्छ्र व्रत

---

१. अनार्या शयने बिभ्रद्ददद्वृद्धि कषायपः।
अब्राह्मण इव वन्दित्वा तृणेष्वासीत पृष्ठतप्।। *(आप० ध० सू० १/९/२७/१०)*

२. यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्ण ब्राह्मणस्सेवमानः।
चतुर्थकाल 'उदकाभ्यवायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपहन्ति पापम्।। *(मनु० ११/९/२७/११)*

३. अगम्यानां गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति प्रायश्चित्तिः।। *(बौ० ध० सू०२/२/१२)*
एतेन चाण्डालीव्यवायो व्याख्यातः।। *(वही २/२/१३)*

४. चाण्डालीं ब्राह्मणो गत्वा भुक्त्वा प्रतिगृह्य च ।
अज्ञानात् पवितो विप्रो ज्ञानात्तु समतां व्रजेत्।। *(बौ० ध० सू०२/२/१४)*

५. अथापरः कृच्छ्राविधि साधारणो व्यूढः।। *(वसिष्ठ ध० सू०२३/४२)*

करना चाहिए जो इस प्रकार है। संभोगकर्त्ता को एक दिन केवल दिन में एक दिन केवल रात में, एक दिन एक दिन में बिना मांगे केवल एक बार भोजन किया जाता है और एक दिन पूर्ण उपवास किया जाता है। अथवा पराक व्रत की अवधि में शिशुकृच्छ्र व वृद्ध कृच्छ्र व्रत को करे। वृद्धकृच्छ्र में संभोग कर्त्ता दो दिन केवल दिन में, दो दिन रात्री में दो दिनों तक बिना मांगे भोजन किया जाता है और दो दिन पूर्ण उपवास रखा जाता है। इस प्रकार पराक की अवधि में ४ दिन शिशुकृच्छ्र एवं ८ दिन वृद्धकृच्छ्र नामक व्रत को करने से संभोग के पाप से छुटकारा पा सकता है।[1]

स्मृतिकारों के अनुसार चाण्डाल कन्या के साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है।

मनु के कथनानुसार जो ब्राह्मण एक रात चाण्डाली के साथ सम्भोग करके जो पाप उपार्जित करता वह तीन वर्ष तक भिक्षा मांगकर भोजन करे तथा गायत्री जप से नष्ट करता है।[2]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार चाण्डाली कन्या का संभोग करने वाला तीन वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करे अथवा तीन मास तक वेदसंहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करें।[3]

पाराशर के कथनानुसार चाण्डाल की कन्या के साथ संभोग करने पर वर्ण के अनुसार पापी के लिए प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है जो ब्राह्मण चाण्डाली या श्वपची स्त्री के साथ समागम करता है वह ब्राह्मण के आदेशानुसार तीन रात्रि पर्यन्त व्रत करें।[4] तत्पश्चात् सम्पूर्ण केशों को और शिखा को भी कटवा दें, तथा प्राजापत्य नामक दो उपवासों को करे, इसके बाद ब्रह्मकूर्च

---

१. अहः प्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितम्।
अहः पराकं तन्त्रैकमेवं चतुरहौ परौं।।
अनुग्रहार्थे विप्राणां मनुर्धर्मभृतां वरः।
बालवृद्धातुरेष्येवं शिशुकृच्छ्रमुवाच ह।। *(वही २३/४३)*

२. यर्तकरोत्येकरात्रेण वृषवीसेवनाद् द्विजः।
तद् भैक्षभग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति।। *(मनु० ११/१७८)*

३. प्राजापत्य चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्।। *(याज्ञ० ३/२६०)*

४. चाण्डालीं वा श्वपाकीं वा अनुगच्छति यो द्विजः।
त्रिरात्रभुपवासी च विप्राणामनुशासनात्।। *(पारा० १०/५)*

करके बाद में भोजनादि तर्पण क्रिया से विप्रवर्ग को संतुष्ट करे।[१] तदुपरान्त उस ब्राह्मण को नित्यप्रति गायत्री मन्त्र का जप करते रहना चाहिए और एक वृषभ तथा एक धेनु ब्राह्मण को दक्षिणास्वरूप देना चाहिए। ऐसा करने से वह ब्राह्मण निस्संदेह शुद्धि को प्राप्त करता है।[२] पराशर जी का कथन है कि दो गायों को दक्षिणा में देने से शुद्धि हो जाती है।[३]

पराशर के कथनानुसार यदि कोई क्षत्रिय या वैश्य किसी चांडाली के साथ समागम करे तो उसे प्राजापत्य नामक दो व्रतों को करना चाहिए और गाय तथा बैल का एक जोड़ा दक्षिणा में देना चाहिए।[४]

पराशर के मतानुसार ही यदि शूद्र किसी श्वपाकी या चाण्डाली स्त्री के साथ गमन करता है तो प्रायश्चित के हेतु प्राजापत्य नामक व्रत को करके चार गाय व बैल ब्राह्मणों को दक्षिणा में देनी चाहिए।[५] जिससे शूद्र व्यक्ति चाण्डाल के संभोगजन्य पाप से शुद्ध हो सकता है।

उपर्युक्त पराशर द्वारा बताये गये चाण्डाली के संभोग जन्य पाप से प्रायश्चित्त से ज्ञात होता कि प्रायश्चित्त भी वर्णो के अनुसार बड़े व लघु होते है। यहाँ दान व व्रत आदि कर्मों को करके पाप से छुटकारा मिल सकता है। जिसने उच्च वर्ण का होगा संभोगकर्त्ता को उतना ही ज्यादा प्रायश्चित्त करना पड़ता है। निम्न या शूद्र वर्ण का होने पर उसे लघु प्रायश्चित्त करने से ही मुक्ति मिल जाती है।

## (७) कुंवारी कन्या के साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार कुंवारी अर्थात् अविवाहित कन्या के

---

१. सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत्।
ब्रह्मकूर्च ततः कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणतर्पणम्।। *(पारा० १०/६)*

२. गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद् गोमिथुनद्वयम्।
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नीत्यसंशयम्।। *(वही १०/७)*

३. गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत। *(वही)*

४. क्षत्रिय वाथ वैश्यो वा चाण्डालीं गच्छतो यदि।
प्राजापत्यद्वयं कुर्याद् दद्याद् गोमिथुनद्वयम्।। *(वही १०/८)*

५. श्वपाकीं वाथ चाण्डालीं शूद्रो वा यदि गच्छति।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं दहेत्।। *(वही १०/९)*

साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार जो व्यक्ति चाहे वह किसी वर्ण का हो यदि उसने कुंवारी कन्या के साथ संभोग किया है तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर उसे देश से निष्कासित कर देना चाहिए।[१]

बौधायन के मतानुसार कुंवारी कन्या के साथ संभोग में संभोग कर्त्ता को कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिए।[२] इस प्रायश्चित्त को करने से व्यक्ति कुंवारी कन्या से संभोग जन्य पाप से मुक्त हो जाता है।

गौतम के अनुसार कुंवारी कन्या के साथ संभोग में पृथक रूप से प्रायश्चित्त विधान न करके कृच्छ्र, चान्द्रायण व्रत आदि को करें। गौतम के कथनानुसार चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त के लिए इस प्रकार करना चाहिए। संभोगकर्त्ता को केश मुड़ा देने चाहिए।[३] पौर्णमासी के एक दिन पहले उपवास करे।[४] **'आप्यास्व सं ते पयांसि नवो नव'** मन्त्र से जल का तर्पण करे, घृत का होम करे, हवि का अनुमन्त्रण करें एवं चन्द्रमा की पूजा करे।[५] **'यददेवा देवहेऽनम्'** आदि चार ऋचाओं का उच्चारण करते हुए आज्य की आहुति करे।[६] आज्य होम के उपरान्त **'देवकृतस्यं'** आदि मंत्रों से समिधाओं का होम करे।[७]

प्रत्येक ग्रास का मन में इन मंत्रों का जप करके अभिमंत्रण करे। **यओ, भूः भुवः स्वः, तपः, सत्यं, यशः श्रीः ऊर्गिड, औजस, तेजस्, वर्चस्, पुरुष, धर्मः, शिपः।**[८] अथवा नमः स्वाहा कहकर सभी ग्रासों को अभिमन्त्रित

---

१. कुमार्या तु स्वान्यादाय नाश्यः।। *(आप० ध० सू० २/१०/२१)*
२. अगम्यानां गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति प्रायश्चितिः।।*(आप० ध० सू० २/२/१३)*
३. वपनं व्रतं चरेत्।।
४. श्वोभूतां पोर्णमासीमुपवसेत्।। *(गौ० ध० सू० ३/९/३-४)*
५. आप्यायस्व सं ते पयांसि नवो नव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो।
हविषश्चानमन्त्रणमुपस्थानं चन्द्रमसः।। *(वही ३/९/५)*
६. यद्देवा देवेऽनमिति चतसृभिर्जुहुयात्।
७. देवकृतस्येतिचान्तो समिद्धि।। *(वही ३/९/६/७)*
८. ओं भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीरूर्गिऽैजस्तेजो वचः
पुरुषो धर्मः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रणं प्रतिमन्त्रं मनस।। *(वही ३/९/८)*

करे।[१] जितना ग्रास ग्रहण करने से मुख विकृत न हो उतने ही परिमाण का ग्रास होना चाहिए।[२]

गौतम के कथानुसार पौर्णमासी के दिन पन्द्रह ग्रास खाकर मास के कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक-एक ग्रास कम करता जाये।[३] अमावस्या के दिन उपवास करे और शुक्लपक्ष में प्रति दिन एक-एक ग्रास बढ़ाता जाये।[४]

इस प्रकार प्रायश्चित्त के लिए चान्द्रायण मास होता है। जो इस व्रत को पूरा कर लेता है वह कुंवारी कन्या के संभोगजन्य पाप से मुक्त हो जाता है।[५] वसिष्ठ अनुसार कुंवारी कन्या के सम्भोग जन्य पाप के लिए पृथक् रूप से प्रायश्चित्त विधान नहीं है।

वसिष्ठ के कथनानुसार कुंवारी कन्या के समागम करने वाला व्यक्ति कृच्छ्र व्रत को करें।[६]

मनु के मतानुसार कुंवारी कन्या चाहे वह किसी वर्ण की हो, यदि वह उसके साथ समागम करता है तो उसे वही प्रायश्चित्त करना पड़ता है जो गुरु की भार्या के समागम में करना पड़ता ह जो इस प्रकार है। पापी व्यक्ति अपने पाप को कहकर तपाये गये जो गुरु की भार्या के समागम करने पर किया जाता है।[७] तीन वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करे अथवा तीन मास तक वेद संहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करें।[८] लोहे की शय्या पर सोवे तथा जलती हुई लोहमयी स्त्री प्रतिमा को आलिङ्गन कर मरने से वह पाप से शुद्ध होता है।[९]

अथवा पाप की निवृत्ति के लिये जितेन्द्रिय होकर हविष्यान्न से नीवार

---

१. नमः स्वाहेति वा सर्वान्।। *(गौ० ध० सू० ३/९/९)*

२. ग्रासप्रमाणमास्याविकारेण।। *(वही ३/९/१०)*

३. पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासान्भुक्त्वैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात्।। *(वही ३/९/१२)*

४. अमावस्यामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षम।। *(गौ० ध० सू० ३/९/१३)*

५. एवमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हन्ति।। *(वही ३/९/१६)*

६. योनिषु गुर्वी सखीं गुरुसखीमपात्रां पतिवां च गत्वा कृच्छ्राब्दपादं चरेत्।। *(वही ३/९/१२)*

७. तप्तेऽयःशयने सार्धमायस्या योषिता स्वपेत्।।
गृहीत्वोत्कृच्य वृषणौ नेर्ऋत्यां चोत्सृजेत्तनुम्।। *(याज्ञव ३/२५९)*

८. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्।। *(याज्ञव ३/२६०)*

९. गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये।
सूर्मी ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्धयति।। *(मनु ११/१०३)*

आदि की यवागू (लपसी) से तीन मास तक चान्द्रायण व्रत करें।[१]

याज्ञवल्क्य के मत से भी पापी व्यक्ति को भी वहीं प्रायश्चित्त करना चाहिए।

पाराशर स्मृति में पराशर के कथनानुसार कुवारी कन्या के समागन में पापी व्यक्ति को तीन कृच्छ्र नामक उपवास को करना चाहिए। अथवा तीन चान्द्रायण नामक व्रतों को करने के उपरान्त सिर को छेदन करने से शुद्धि हो जाती है।[२]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि कुंवारी कन्या के साथ समागम और गुरु की भार्या के समागम में व्यक्ति को एक समान पाप लगता है इसलिए दोनों में प्रायश्चित्त विधान भी एक ही प्रकार से किया जाता है। जिससे पापी व्यक्ति पाप से छूट जाता है इनमें चान्द्रायण, प्राजापत्य कृच्छ्र आदि व्रत का विधान किया गया है।

इन कठोर व्रतों के आचरण से पापी व्यक्ति के अन्तः करण में काम भावना आदि के जो दोष आ गये थे उनका परिष्कार या शुद्धिकरण हो जाता है।

## (८) रजस्वला स्त्री के साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जो स्त्री रजस्वला हो उसके साथ संभोग करना निषिद्ध है। यदि फिर भी कोई व्यक्ति रजस्वला स्त्री से संभोग करता है तो वह व्यक्ति पाप का भागी होता है अर्थात् पापी माना जाता है। पापी व्यक्ति को पाप से छुटकारा पाने के लिए धर्मसूत्रकारों को पाप से छुटकारा पाने के लिए धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतियों के अनुसार प्रायश्चित्त इस प्रकार है।

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार जो व्यक्ति मासिक धर्म के समय स्त्री से संभोग करता है। उस पापी को तीन दिन रात कृच्छ्र व्रत करना पड़ता है

---

१. चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये।। *(वही ११/१०६)*

२. एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्रणि संचरेत्।
चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिरश्छेदेन शुद्धयति।। *(परा० १०/१०)*

जिसके करने से वह पाप से मुक्त हो जाता है।[१] अथवा मासिक धर्म के समय स्त्री के साथ समागम करने पर जल स्पर्श एवं वस्त्रसहित स्नान से शुद्धि होती है।[२] यह प्रायश्चित्त व्यक्ति अपनी पत्नि के समागम करने पर भी कर सकता है इससे वह पाप से मुक्त हो सकता है।[३] वसिष्ठ ने भी रजस्वला स्त्री से समागम में पृथक रूप से प्रायश्चित्त वर्णन न देते हुए कृच्छ्र व्रत से पाप की निवृति बतलायी है।

स्मृतियों के अनुसार रजस्वला स्त्री से संभोग करने पर प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है कि मनु के मतानुसार यदि व्यक्ति रजस्वला स्त्री से संभोग करता है तब उस पापी व्यक्ति को गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, और कुशा का जल, इनमें से प्रत्येक को एक-एक दिन भोजन करे। इस प्रकार ६ दिन इन्हें भोजन कर, सातवें दिन उपवास करे।[४] इस प्रकार 'कृच्छ्र सान्तपन' व्रत को करते हुए पाप से मुक्त हो जाता है।[५]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार अपनी पत्नी के भी या अन्य स्त्री के रजस्वला होने पर संभोग करे तो तीन दिन उपवास करके और घृत खाकर शुद्ध होवे।[६]

पराशर ने रजस्वला स्त्री के साथ मैथुन करने में कोई प्रायश्चित्त विधान का वर्णन नहीं किया।

उपर्युक्त अवलोकन से ज्ञात होता है कि पंचगव्य को पीकर तथा कृच्छ्र सान्तपन' नामक व्रत को करने से पाप से छुटकारा पा सकते है। रजस्वला के साथ संसर्ग से शास्त्रों में अनेक प्रकार के रोगों का वर्णन है। पञ्चगव्य विभिन्न प्रकार से विभिन्न रोगों का नाश करता है। सम्भवतः इसलिए पंचगव्य आदि का विवेचन किया गया है।

---

१. उदक्यागमने त्रिरात्र (स्त्रिरात्रः)। *(गौ० ध० सू० ३/५/३४)*
२. ऋत्वन्तरारमण उदकोपस्पर्शनाच्छुद्धिमेके।। *(वही ३/६/४)*
३. स्त्राषु।। *(वही ३/६/५)*
४. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पि कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्।। *(मनु० ११/२१२)*
५. अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् *(वही ११/१७३)*
६. त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गत्वोदक्यां विशुद्धयति।। *(याज्ञ० ३/२८७)*

## (९) स्वयं में (सहोदर बहन) के साथ संभोग में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार स्वयं में (सहोदर बहन) के साथ संभोग निषिद्ध माना गया है। यदि कोई व्यक्ति अपनी बहन के साथ संभोग करता है तो वह पापी माना जाता है। इस पाप के लिए धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त बताये है। जो इस प्रकार है–

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार अपनी बहन अगम्य है और पिता की बहन, बहन की पुत्री, मामा की बहन, मामी आदि सभी को अगम्य माना है।[१] यदि कोई व्यक्ति बहन के साथ समागम करता है तो उस व्यक्ति को कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इससे वह पाप से छुटकारा पा सकता है।[२]

गौतम ने बहन के साथ संभोग करना गुरु की भार्या के साथ संभोग करने के समान माना है।[३] गौतम के कथनानुसार संभोग कर्त्ता को गुरु की भार्या के संभोग में किये गये प्रायश्चित्त को ही करना चाहिए जो इस प्रकार है। पापी व्यक्ति जलती हुई लोहे की शय्या पर शयन करे।[४]

अथवा वह अपने अण्डकोष सहित जनेन्द्रिय काटकर अञ्जलि में रखकर दक्षिण-पश्चिम दिशा को सीधा उस समय तक चलता रहे जब तक गिरकर मर न जाय।[५] इस प्रकार प्रायश्चित्त करने से वह पाप से मुक्त हो जाता है।[६]

वसिष्ठ के कथनानुसार संभोग कर्त्ता कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत को प्रायश्चित्त

---

१. मातुलपितृष्वसा भगिनी भगिनेयी स्नुषा मातुलानी सखिवधूरित्यगम्याः।।
*(बौ० ध० सू० २/२/११)*

२. अगम्याना गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायणमिति प्रायश्चित्तिः।। *(वही २/२/१२)*

३. सखीसयोनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषाषां गवि च गुरुतल्पसमः।।
*(गौ० ध० सू० ३/५/१२)*

४. लप्ते लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत।। *(वही ३/५/८)*

५. लिङ्ग वा सवृषणमुत्कृत्याञ्जलावाधाय।
दक्षिणाप्रतीची व्रजेदजिह्माशरीर निपातात्।। *(वही ३/५/१०)*

६. मृतः शुध्येत्।। *(वही ३/५/११)*

रूप में करने पर पाप से मुक्त हो सकता है।[1]

स्मृतियों के अनुसार बहन के साथ संभोग निषिद्ध है यदि कोई व्यक्ति बहन के साथ संभोग करता है तो उसकी पाप निवृति के लिये प्रायश्चित विधान इस प्रकार है।

मनु के अनुसार सगी बहन से संभोग करने पर गुरुपत्नी के साथ संभोग करने का प्रायश्चित्त करना चाहिए।[2]

बुआकी, मौसी की, मामा की पुत्री से संभोग कर, मनुष्य अर्थात् पापी दोष की निवृति के लिए प्रायश्चित्त इस प्रकार करें।[3] पापी व्यक्ति त्रिकाल स्नान करता हुआ कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन एक एक ग्रास भोजन घटाता जाए, तथा शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन बढ़ाता जाए, यह चान्द्रायण व्रत की विधि करते हुए पाप से छुटकारा मिल सकता है।[4] याज्ञवल्क्य के कथनानुसार बहन के साथ संभोग करने वाले पापी के लिङ्ग को काटकर उसका वध कर देना चाहिए।[5] अथवा गुरु पत्नी की भार्या के साथ संभोग करने में विहित प्रायश्चित्त विधान को करना चाहिए।[6] यदि स्त्री स्वेच्छा से संभोग करती है तो उसके लिए भी वध ही प्रायश्चित्त है।

पराशर के मतानुसार यदि व्यक्ति मोह के कारण बहन का समागम करता है। उसको तीन कृच्छ्र नामक उपवासों को करना चाहिए। अथवा तीन चान्द्रायण व्रतों को करने के उपरान्त सिर का छेदन करने से शुद्धि हो जाती

१. त्रयहं प्रातस्तथा सायमयाधितं पराक इति कृच्छ्रो यावत्सकृदाददीत।
तावदश्रनीयात्पूर्ववत्सोतिकृच्छ्रः।। *(वसिष्ठ २४/२)*

२. गुरुतल्पव्रतं कुयद्रितः सिक्त्वा स्वयोनिषु।
सरव्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।। *(मनु० ११/१७०)*

३. पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च।
मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत्।। *(वही ११/१७१)*

४. एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
उपस्पशंस्त्रिषवणमेतत्तचान्द्रायणं स्मृतम्।। *(वही ११/२१६)*

५. आचार्यपत्नी स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः।
लिङ्गं छित्त्वा वधस्तस्य सकामायाः स्त्रिया अपि।। *(याज्ञ० ३/२३३)*

६. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समा वा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासनभ्यसेद्वेदसंहिताम्।। *(वही ३/२६०)*

है।[१] अथवा बहन के साथ समागम करने वाले पुरुष की आत्मशुद्धि तो अपनी लिङ्गेन्द्रिय काटने पर ही सम्भव होती है।[२] संभोगजन्य पाप से शुद्धि हो जाती है।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति अपनी बहन के संभोग करता है पापी व्यक्ति चान्द्रायण, कृच्छ्र व्रत से शुद्ध हो जाता है, अर्थात् व्रत आदि से पाप की शुद्धि हो जाती है लेकिन पराशर के कथनानुसार ज्ञान प्राप्त होता है कि मृत्यु की अर्थात् वध ही मुक्ति का साधन हो सकती है।

## (१०) वीर्यपात तथा उसके साथ संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार वीर्य पात तथा उसके साथ संभोग निषिद्ध कर्म बताया है। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार का दुष्कर्म करता है तो धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार दुष्कर्म का प्रायश्चित्त इस प्रकार है।

धर्मसूत्रों में, आपस्तम्ब के कथनानुसार जो व्यक्ति वीर्य स्खलन करके दोषयुक्त जान बूझकर शत्रु के नाश के लिए अथवा अनजाने में ही अभिचारिक कर्म करने पर **आपोहिष्ठा मयोभुव** आदि तीन मन्त्रों से[३] तथा **हिरण्यवर्णाश्शुचयः पावकाः** आदि चार मन्त्रों से स्नान तथा जल से अभिषेक करें, अथवा वरुण के मन्त्रों **इमं में वरूण, तत्वा यामि, त्वन्नो अग्ने** आदि मन्त्रों या पवमानस्सुवर्जनः' अनुवाक से अपरध की मात्रा के अनुसार स्नान करें।[४]

बौधायन के अनुसार जो व्यक्ति वीर्यपात करता है। बौधायन ने दिन

---

१. भ्रातरं यदि गच्छेतु भागिनीं स्वसुतां तथा।
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्रणि संचरेत।
चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्छेदेन शुद्धयति।। *(पारा० ७०/११)*

२. अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चान्द्रायणद्वयम्।
दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रतीत्।। *(वही १०/१३)*

३. यासां राजा वरुणं, यसां देवा दिवि शिवेन मा चक्षुषा इत्यग्रियं ऋक्त्रयम। *(तै० स० ६/६/१)*

४. अनार्यवपैशुनप्रतिषिद्धाचारेष्वभक्ष्या भोज्यापेयप्राशने शूद्रयां च रेतस्सिक्वाऽयोनौ च दोषच्च कर्माभिसन्धिपूर्व कृत्वाऽनभिसन्धिपूर्व वाऽब्ङिभिरप उपस्पृशो द्वारणीभिपडिन्यैर्वा पवित्रमन्त्रैर्यथा कर्माभ्यासः।। *(आप० ध० सू० १/९/२६/७)*

के समय वीर्यपात करने पर **'रेतस्'** शब्द मन्त्रों का उच्चारण करते हुए तीन बार हृदय तक पहुंचने वाले जल का पान करें।[1] **'रेतस्'** शब्द से युक्त ऋचाएं तैतिरीय आरण्यक में आती है।[2]

गौतम भी इस प्रकार कथन करते है कि वीर्यपात करने वाला या भय या रोग के कारण (बिना ज्ञान के) अथवा स्वप्न में वीर्य स्खलन होने पर, तथा सात दिन अग्निकर्म एवं भिक्षाचरण न करने पर ब्रह्मचारी घृत का होम करे अथवा आदि मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि में दो समिधाएं रखें।[3]

वसिष्ठ के कथानानुसार जो दिन में वीर्यपात में या स्वप्न में वीर्यपात करता है वह पापी व्यक्ति **'रेतस्'** शब्द से मन्त्रों का उच्चारण करे।[4]

मनुस्मृति में भी वीर्यपात को निषेध माना है। मनु ने पापी व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त वर्णन इस प्रकार किया है। यदि व्यक्ति पानी में वीर्यपात करता है तो उस पापी व्यक्ति को गोमूत्र, गोबर, दूध, दही और कुशा का जल, इनमें से प्रत्येक का एक एक दिन भक्षण करे। इस प्रकार छः दिन इन्हें भक्षण कर सातवें दिन उपवास करे। यह कृच्छ्र सान्तपन' व्रत कहा गया है। इस प्रायश्चित्त को करके पापी पाप से मुक्त हो जाता है।[6]

याज्ञवल्क्य के अनुसार वीर्यपात होने पर पापी व्यक्ति **यन्मेद्य रेतः पृथिवीमस्कन् पुनर्मायैत्विन्द्रियम** इन मंत्रों से वीर्य का अभिमन्त्रण करे और उससे दोनों छाती और दोनों माहों के मध्यभाग का कनिष्ठिका अंगुली द्वारा

---

१. दिवा रेतस्सिक्त्वा त्रिरपो हृदयङ्गमा पिबेद्रेतस्याभिः।। *(बौ० ध० सू० २/१/२८)*

२. "पूनर्मामौत्विन्द्रियम। पुनरायुः पुनर्भगः। पुनर्ब्राह्मणमैतं मा। पुनर्द्रविणमैतु मा। यन्मेऽघ रेतः पृथिवीमस्कान। यद्रोषवीरप्यसरद्यदापः। इदं तत् पुनराददे। दीर्धायुत्वाय वर्चसे। यन्मे रेतः। प्रसिच्यते। यन्मे आजायते पुनः। तेन मामकृतं कृधि। तेन सुप्रजसंकृधि।" *(तै० आ० १/३०)*

३. रेतः स्कन्दने भये रोगे स्वप्नेऽग्नीन्धनभैक्षचरणानि सप्तरात्रमकृ (त्रं कृ) त्वाऽऽज्यहोमः समिधो वा रेतस्याभ्याम्।। *(बौ० ध० सू० २/१/२८)*

४. एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे दिवा स्वप्नेव्रतान्तरेषु वा समावर्तनात्।। *(वसिष्ठ ध०सू० ३/५/२०)*

५. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं सर्पिः कशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम्।। *(११/२१२)*

६. अमानुषीषु पुरुष उदक्यायाययोनिषु।
रेतः सिक्त्ववा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्।। *(११/७३)*

स्पर्श करे।'' इस प्रकार प्रायश्चित्त करने से पापी व्यक्ति शुद्ध हो जाता है।[१]

पाराशर के अनुसार यदि गृहस्थ मनुष्य वीर्य स्खलन करता है तो वह एक हजार गायत्री मन्त्र का जप करे तथा तीन प्राणायाम करे। इस प्रकार पापी व्यक्ति अपने दुष्कर्म के पाप से शुद्ध हो जाता है।[२]

उपर्युक्त दिये हुए प्रायश्चित्त विधान से ज्ञात होता है कि मन्त्रों के उच्चारण से भी संभोग जैसे दुष्कर्म के पाप से मुक्त हो सकते है।

## (११) दिन में संभोग करने में प्रायश्चित्त विधान

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार जब कोई व्यक्ति दिन में अपनी ही स्त्री के साथ संभोग करता है तो वह संभोग जन्य पाप करने का पापी माना जाता है। बौधायन के अनुसार पापी व्यक्ति को रेतस् शब्द से युक्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए तीन बार हृदय तक पहुंचने वाले जल का पान करें।[३] रेतस् शब्द सेयुक्त ऋचाएं का वर्णन इस प्रकार है। **पूनर्मामौत्विन्द्रियम्। पुनरायुः पुनर्भगः। पुनर्ब्राह्मणमैतु मा। पुनर्द्रविणमैतु मा। मन्मिऽद्यः रेतः पृथिवीमस्कान। यद्रोषधीरप्यसरद्यदापः। इदं तत् पुनराददे। दीर्घायुत्वाय वर्चसे। यन्में रेतः प्रसिच्यते। यन्मे अजायते पुनः। तेन मामकृतं कृधि। तेन सुप्रजंस कृधि।**

आपस्तम्ब एवं वसिष्ठ ने दिन में अपनी ही स्त्री के साथ, या किसी अन्य स्त्री के साथ संभोग में विहित प्रायश्चित्त विधान का वर्णन पृथक व स्पष्ट नहीं किया है।

मनु के अनुसार अगर कोई ब्राह्मण दिन में किसी स्त्री के साथ मैथुन करता है तो पापी ब्राह्मण को जप से छुटकारा पाने के लिए वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए। ऐसा प्रायश्चित्त करने से वह पाप से शुद्ध हो जाता है।[४]

याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई व्यक्ति दिन में ही अपनी पत्नी के

---

१. यन्मेऽय रेत इत्याभ्यां स्कन्नं रेतोऽभिमन्त्रयेत्।
स्तनान्तरं भ्रुवोर्मध्यं तेनाऽनामिकया स्पृशेत।। *(याज्ञ० ३/२७८)*

२. गृहस्थः कामतः कुयद्रितसः स्खलनं यदि।
सहस्रन्तु जपेद्देव्याः प्राणायामस्त्रिभिः सह।। *(पारा० १२/६२)*

३. दिवा ऐतास्क्त्वा त्रिरपो हृदयङ्गमाः पिबेद्रेतस्याभिः।। *(बौ० ध० सू० २/१/२८)*

४. मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत्।। *(मनु० ११/१७४)*

साथ संभोग करता है तो पापी माना जाता है। पाप से शुद्ध होने के लिए प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। पापी को जल में प्रवेश कर प्राणायाम करने एवं स्नान करने से शुद्धि प्राप्त होती है।[१]

पाराशर स्मृति में दिन में किसी प्रकार की स्त्री के साथ संभोग करने का पृथक रूप से प्रायश्चित्त विधान नहीं दिया गया है।

ग्रन्थों में बताया गया कि जहां नारी को नहीं पूजा जाता वहां देवता निवास नहीं करते। फिर भी यदि कोई व्यक्ति नारी को सम्मान देने के स्थान पर उसके साथ दिन में संभोग जैसा दुष्कर्म करें तो वह व्यक्ति कितना नीच हो सकता है अर्थात् वह कर्तव्य से विमुख हो जाता है और पाप का भागी बनता है। इस पाप से छुटकारा पाने के लिये व्यक्ति कितने प्रकार के प्रायश्चित्त का सहारा लेता है। इसमें प्रमुख रूप से अगर कोई भी व्यक्ति दुष्कृत्य को करता है तो उसे प्राणों को वश में करके इन्द्रियों पर संयम करके होम आदि कार्यों में बोलो जाने वाले मन्त्रों का उच्चारण करके जिसमें उसका मन वचन दोनों ही शुद्ध होते है। और उसका चित्त ऐसे दुष्कृत्य से हट जाता है। पुनः इस दुष्कृत्य को करने से डरता है अर्थात् दृढ निश्चय करके वह अपने को पाप से मुक्त कर सकता है।

## (१२) चार महापातकियों से संसर्ग में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जो व्यक्ति पहले वर्णित चार महापातक ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, संभोग कर्म को करते है। वे पापी माने जाते है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे किसी व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है जिसने ब्रह्महत्या की है या सुरापायी है या किसी ब्राह्मण के सुवर्ण का स्तेय किया है चौथे कर्म गुरु की भार्या के साथ दुष्कर्म किया हो तो वह व्यक्ति भी पापी माना जाता है। ऐसे व्यक्ति को भी पाप से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों ने प्रायश्चित्त इस प्रकार वर्णित किये है। मनु एवं याज्ञवल्क्य के मतानुसार महापातकियों के संसर्ग में आने वाले व्यक्ति को

---

१. प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्र्यानगः।
नग्नः स्नात्वा च भुक्त्वा च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम्।। *(याज्ञव ३/२९०)*

महापातकों के समान ही गिना है।[१] मनु एवं याज्ञवल्क्य का कथन है कि जो भी कोई महापातकियों का संसर्ग वर्ष भर करता है उसे संसर्ग पाप से मुक्त होने के लिए महापातक वाला ही व्रत करना पड़ता है।[२] मनु, याज्ञवल्क्य एवं पाराशर के मतानुसार जो व्यक्ति महापातकियों के संसर्ग में रहता है उसे व्यक्ति को भी महापातकी के समान अश्वमेघ या तीर्थयात्रा नामक प्रायश्चित्त करके ही पाप से मुक्ति मिल सकती है। मनु एवं याज्ञवक्ल्य के कथनानुसार इस पाप के लिए प्रायश्चित्त थोड़ा कम, अर्थात् १/४ कम होता है।[३]

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ ने महापातकियों के संसर्ग में आने वाले व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त विधान का वर्णन स्पष्ट नहीं किया। मनु याज्ञवल्क्य एवं पाराशर ने पापी व्यक्ति के लिए महापातकी सम्बन्धी प्रायश्चित्त विधान ही, संसर्ग में आये व्यक्ति के लिए चौथा भाग अर्थात् थोड़ा सा कम करने का विधान बतलाया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति अगर किसी महापातकी से सम्बन्ध रखने पर वह व्यक्ति भी महापातक के पाप से ग्रसित माना जाता है।

---

१. अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया।। (मनु० ११/५५)
ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट्।। (वही ११/५६)
निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च।
भूमिव्रजमणीनां च रूक्मस्तेयसमं स्मृतम्।। (वही ११/५७)
रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः।। याज्ञ०३/२२८-३३)
(वही ११/५८)

२. यो येन पतितेनैषां संसर्गे याति मानवः।
स तस्यैव व्रतं कुर्यातत्संसर्गविशुद्धये।। (मनु० ११/१८१, याज्ञ० ३/२६१)

३. चातुर्विद्यापन्ने तु निधने ब्रह्मघातके।
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत्।। (पारा० १२/५८)

**—इति तृतीयोध्याय—**

ओ३म्

चतुर्थ अध्याय

# प्रमुख उपपातकों के प्रायश्चित का वर्णन

- ❒ अपवित्रता में प्रायश्चित्त विधान
- ❒ आजीविका में प्रायश्चित्त विधान
- ❒ त्याग सम्बन्धी प्रायश्चित्त विधान
- ❒ आश्रम सम्बन्धी प्रायश्चित्त विधान

## चतुर्थ अध्याय

# प्रमुख उपपातकों के प्रायश्चित का वर्णन

## (क) अपवित्रता में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार महापातक के बाद उपपातकों का वर्णन किया गया है। यदि कोई व्यक्ति पंच महापातक में से किसी एक पाप कर्म का आचरण करता है तो उसी के अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त करने पर वह पंच महापातक के पाप से शुद्ध होता है।

महापातकों के प्रायश्चित्त विधान के विवेचनोंपरान्त इस अध्याय में उपपातकों के प्रायश्चित्त का वर्णन किया गया है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में निम्नलिखित अपवित्र कर्म बताये है। जिनसे व्यक्ति अपवित्र माना जाता है। जो इस प्रकार हैं। पशुओं के काटने व स्पर्श में अशुद्धि, पक्षियों के काटने व स्पर्श में अशुद्धि, मृतक आशौच, शूद्र आदि नीच व्यक्ति के अन्न खाने में, चांडाल के गृह प्रवेश में व स्पर्श पर, निषिद्ध भोजन खाने पर, पातकी के साथ एक ही पंक्ति में खाने पर, निषिद्ध प्याज, लहसुन, मांस का भक्षण करने पर, नीच लोगों से मित्रता करने पर, निषिद्ध दान लेने पर ये सभी कर्म मनुष्य को अपवित्र कर देते है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जो मनुष्य इन सब कर्मों में से किसी भी एक से अपवित्र हो जाता है। तो उसे शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है। धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने इन सब कर्मों के करने पर प्रायश्चित्त विधान किया है। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन इस प्रकार है।

### (१) पशुओं के काटने एवं स्पर्श से अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान–

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार कुत्ते के काट लेने पर प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। जिस ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया हो वह समुद्र में मिल जाने वाली नहीं में स्नान कर सौ बार प्राणायाम कर, घी का भक्षण करने पर शुद्ध होता है। अथवा सोने या चांदी के बर्तनों में लाये गये या गाय के सींग में लाये गये जल से

अथवा मिट्टी के नये घड़ों में लाये गये जल से स्नान करने पर तत्काल शुद्ध होता है।[१]

बौधायन के कथनानुसार यदि कुत्ते का स्पर्श हो जाय तो व्यक्ति को वस्त्र सहित स्नान करने पर शुद्ध माना जाता है।[२] अथवा जिस अंग को कुत्ते ने स्पर्श किया हो उसे धोकर फिर उसे अग्नि से स्पर्श कराये, पैरों को धोकर आचमन करने पर शुद्ध होता है।[३]

गौतम के कथनानुसार यदि किसी व्यक्ति को मांसभक्षी पशु, ऊँट, गदहा, व्याघ्र आदि द्वारा काटे जाने पर तीन प्राणायाम और घृत-प्राशन से शुद्धि होती है।[४]

वसिष्ठ के मतानुसार कुत्ते आदि पशु के द्वारा काट लिये जाने पर और वह व्यक्ति ब्राह्मण हो तो उसे इस प्रकार प्रायश्चित करना चाहिए। जो नदी समुद्र में मिलती हो, में स्नान करें, सौ बार प्राणायाम करें, घी का भक्षण कर शुद्धि पाता है।[५] अथवा अज्ञानी प्राणी कालशुद्धि, अग्नि, मन, जल देना, सूर्य के दर्शन करने पर छः विधि से शुद्ध होता है।[६]

वसिष्ठ के कथनानुसार यदि व्यक्ति को कुत्ता स्पर्श कर ले तो वह सवस्त्र स्नान करने से शुद्ध हो जाता है।[७]

मनु के कथनानुसार पशु से अपवित्रता में किस प्रकार व्यक्ति अशुद्ध हो जाता है। मनु का मत है कि कुत्ता, सियार, गधा, कच्चे मांस खाने वाले ग्राम्य पशु (बिल्ली आदि) घोड़ा, ऊँट और सूअर इनके काटने

---

१. शुना दष्टस्तु यो विप्रो नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति।।
सुवर्णरजताभ्यां वा गवां श्रृङ्गोदकेन वा।
नवैश्च कलशैस्स्नात्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्।। (बौ०ध०सू० १/५/३९)

२. शुनोपहतस्सचेलोऽवगाहेत।। (वही १/५/३७)

३. प्रक्षाल्य वा तं देशमग्निना संपृभ्य पुनः
प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रयतो भवति।। (वही १/५/३८)

४. पूर्वश्च दष्टस्य।। (गौ० ध० सू० ३/५/७)

५. ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य ततः शुचिरिति।। (वसि०ध० सू० २२/३१)

६. कालोग्निर्मनसः शुद्धिरूदकार्कावलोकनम्।
अविज्ञानं च भूतानां षड्विधा शुद्धिरिष्यत इति।। (वही २२/३२)

७. श्वचाण्डालपतितोपस्पर्शने सचैलं स्नातः सद्य पूतो भवतीति विज्ञायते।।
(वही २२/३३)

पर (द्विज) प्राणायाम करने से शुद्ध होता है।[१]

मनु, स्मृति में टीकाकार कहते है कि कुत्ते के सूंघे, चाटे और दांतों से काटे गये पदार्थ की शुद्धि पानी से धोने और आग में जलाये (तपाने) से कही गयी है।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार बन्दर, गदहा, ऊँट, घोड़ा सियार आदि कौआ द्वारा दांत या चोंच से काटे जाने पर जल में खड़ा होकर प्राणायाम करने और घी खाने पर शुद्धि होती है।[३]

पराशर के अनुसार जिस ब्राह्मण को भेड़िया, कुत्ता, गीदड़ आदि के काट लिया हो तो वह ब्राह्मण स्नान करके पवित्र वेदमाता गायत्री का जप करें।[४] गौओं के श्रृंगोदक से स्नान कर लेने पर अथवा महानदियों के संगम में स्नान करने अथवा समुद्र दर्शन करने से कुत्ते के द्वारा काटा हुआ व्यक्ति शुद्ध होता है।[५]

वेदपाठी ब्राह्मण को यदि कुत्ते ने काट लिया हो तो वह जल में सुवर्ण डालकर पुनः उस जल से स्नान करके पश्चात् घी पीकर शुद्ध होता है।[६]

पराशर के अनुसार ही यदि व्रतपरायण ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया है तो तीन रात्री तक उपवास करे, घी और कुशोदक पीकर शेष व्रत को समाप्त करे।[७] यदि किसी व्रतरहित को कुत्ते के द्वारा काटा जाय, तो वह ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम करके उनके द्वारा विशुद्ध दृष्टि से देखा जाता हुआ पवित्र हो जाता है।[८]

---

१. श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति।। (मनु० ११/१९९)

२. शुनाऽऽघ्रातावलीढस्य दन्तैर्विदलितस्य च।
अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम्।। (मनु० पृ० ६१५)

३. पुंश्चलीवानरखरैर्दष्टश्वोष्ट्रदिवायसैः।
प्राणायामं जले कृत्वा घृतं प्राश्च विशुध्यति।। (याज्ञ० ३/२७७)

४. वृकश्वानश्रृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः।
स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम्।। (पारा० ५/१)

५. गवां श्रृङ्गोदकस्नानान्महानद्योस्तु सङ्गमें।
समुद्रदर्शनादवापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत।। (वही ५/२)

६. वेद विद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजौ यदि।
सहिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति।। (पारा० ५/३)

७. सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपावसेत्।
घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत्।। (वही ५/४)

८. अव्रतः सव्रतो वापि शुनः दष्टो भवेद् द्विजः।
प्राणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुनिरीक्षितः।। (वही ५/५)

पराशर के कथनानुसार कुत्ते के द्वारा सूंघ लेने पर अथवा चाटने की स्थिति होने पर या उसके नाखूनों से चिन्ह होने पर अङ्गों को जल से प्रक्षालित कर अग्नि से संतप्त करना चाहिए।[१]

यदि ब्राह्मणी को कुत्ते, श्रृंगाल या भेड़िये ने काट लिया हो तो उदित ग्रह नक्षत्र को देखकर शीघ्र ही शुद्धि हो जाती है।[२] कदाचित्, कृष्ण पक्ष में चन्द्र दर्शन न हो तो जिस दिशा में गर्वितागत चन्द्र का गमन प्राप्त हो उस दिशा का दर्शन करें।[३] जिस गांव में श्रेष्ठ ब्राह्मण न हो और किसी ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया हो तो वह ब्राह्मण शीघ्र स्नान करके और वृषभ की प्रदक्षिणा करके शुद्ध हो जाता है।[४]

उपर्युक्त पशुओं की अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान से ज्ञात होता है कि नदियाँ, प्राणायाम, सूर्य, चन्द्रदर्शन आदि सभी पवित्र माने गये है। स्नान करके तथा घी को पीकर भी व्यक्ति अपवित्रता से शुद्ध हो जाता है।

पशुओं के स्पर्श, आघ्राण तथा काटे जाने पर जो प्रायश्चित्त साधन दिये गये है, वे जहां पवित्रता कारक है साथ ही विषघ्न या विष को शान्त करने के उपाय भी प्रतीत होते है। जैसे जल से स्नान तथा जल में खड़े होकर जप प्राणायाम आदि से संलग्न विष का प्रभाव दूर हो सकता है। घृत प्राशन की विषशामक शक्ति सर्वविदित है। विषाक्त अंगों का अग्नि में प्रतापन भी विषहारक है। इस प्रकार उक्त प्रायश्चित विधान उपादेय एवं युक्तिसंगत है।

## (२) पक्षियों के काटने एवं स्पर्श से अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान–

मनु के अनुसार पक्षियों के काटने या स्पर्श होने मात्र से भी मनुष्य अशुद्ध हो जाता है। यदि ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति कुक्कर (मुर्ग) का स्पर्श कर लेता अंग-प्रक्षालन करके' आचमन करने से व्यक्ति मुक्त हो जाता है।[५] विष्णु न

---

१. शुना घ्राताऽवलीढस्य नखैर्विदलितस्य च।
अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम्।। (पारा० ५/६)

२. ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा।
उदित ग्रह-नक्षत्र दृष्ट्वा सघः शुचिर्भवेत्।। (मनु० ५/७)

३. कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन।
या दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चावलोकयेत्।। (वही ५/८)

४. असद्ब्राह्मण के ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः।
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत्।। (वही ५/९)

५. मनु० १०/१९-४९

विभिन्न प्रकार के पक्षियों के खाने पर तीन दिनों या एक दिन के उपवास की व्यवस्था दी है।[१]

आपस्तम्ब के अनुसार कौआ, गिरगिट, मोर, चक्रवात, हंस को मारने पर शूद्र हत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जैसे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, दस गाय एक साँड दान में देने से जिस प्रकार मनुष्य शूद्र की हत्या से मुक्त हो जाता है उसी प्रकार प्रायश्चित को करने से व्यक्ति पक्षियों के काटने से जन्य पाप से मुक्त हो जाता है।[२]

वसिष्ठ, गौतम, बौधायन एवं पाराशर, याज्ञवल्क्य ने पक्षियों के काटने एवं स्पर्श से अशुद्धि में प्रायश्चित विधान स्पष्ट नहीं किया है।

पक्षियों के स्पर्श, आघ्राण तथा काटे जाने पर जो प्रायश्चित साधन दिये गये है वे जहां पवित्रता कारक है साथ ही विषघ्न या विष को शान्त करने के उपाय भी प्रतीत होते है। जैसे जल से स्नान तथा जल में खड़े होकर जप प्राणायाम आदि से संलग्न विष का प्रभाव दूर हो सकता है। अंग प्रक्षालन करके आचमन करके और ब्रह्मचर्य व्रत में अपने इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर व्यक्ति मुक्त हो सकता हैं।

## (३) मृतक आशौच में प्रायश्चित्त विधान

**मृतक आशौच–**

याज्ञवल्क्य मनु, गौतम ने कई प्रकार के मृतक आशौच का वर्णन इस प्रकार किया है, गौतम धर्म सूत्र के अनुसार ऋत्विज: यज्ञ में दीक्षित, तथा ब्रह्मचारी को छोड़कर सपिण्डो के लिए मृत्यु विषयक आशौच दस दिन (और रात) का होता है।[३] (दीक्षित ब्रह्मचारी आदि के अतिरिक्त) क्षत्रिय को सपिण्ड की मृत्यु पर ग्यारह रात्रि का आशौच होता है।[४] इसी प्रकार वैश्य को बारह रात्रियों का आशौच होता है। कुछ आचार्यों के अनुसार वैश्य को आधे मास का आशौच होता है।[५] शूद्र के लिए एक मास का आशौच होता है। महाप्रस्थान (स्वेच्छा से मरने वालों), उपवास,

---

१. वि० ध० सू० ५/२९-३१

२. आप० ध०सू० ७/९/२५/१४

३. शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डानाम्।।४।।
(गौ०ध०सू० ५ अध्याय)

४. एकादशरात्रं क्षत्रिस्य।।५।। (वही ५/२)

५. द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्धमासमेके।।६।। (वही ५/३)

शस्त्र, अग्नि, विष, जल, बन्धन (फांसी), एवं गिरने से इच्छापूर्वक (अथवा अनिच्छापूर्वक) आत्म घात करने वालो के सपिण्डो को शव संस्कारोत्तर स्नान तक आशौच रहता है।[१]

गौतम के मतानुसार ही मृत्युविषयक दस रात्रियों का आशौच समाप्त होते ही किसी सपिण्ड की मृत्यु का समाचार सुने तो पक्षिणी (दो दिन और उनके मध्य रात्रि अथवा दो रात्रियों और उनके मध्य के दिन का) आशौच होता है।[२] इसी प्रकार मनु, याज्ञवल्क्य, बौधायन, वसिष्ठ आदि ने भी मृतक आशौच की इस प्रकार व्यवस्था दी है। गौतम के अनुसार यदि असपिण्ड और योनि सम्बन्ध वाले (मातामह, मौसी, उनके पुत्र आदि विवाहिता के पिता आदि, बहन आदि) एवं एक साथ गुरु के यहां अध्ययन करने वाले की मृत्यु पर पक्षिणी आशौच होता है।[३] (एक साथ ब्रह्मचर्याश्रम में रहने वाले) समान ब्रह्मचारी की मृत्यु पर दिन रात का आशौच होता है।[४] घर में निवास आदि द्वारा आश्रित वेदज्ञ की मृत्यु पर भी आशौच होता है।[५] यदि वेतनादि प्रयोजन से शव का उपस्पर्शन किया गया हो तो उसके लिए दस दिन का आशौच होता है।[६] मनु भी गौतम के कथन से सहमत है।

यदि कोई निम्न वर्ण का व्यक्ति किसी उच्च वर्ण के व्यक्ति का शव ले जाय अथवा कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति निम्नवर्ण के व्यक्ति का शव ले जाय तो उस मृत के वर्ण के अनुसार आशौच काल होता है। क्षत्रिय, ब्राह्मण का शव ले जाय तो उसे दस दिन-रात का आशौच होता है।[७] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार मृतक आशौच एक ही बार दस (दिन एवं) रात्रि का आशौच होता है। याज्ञवल्क्य ने पाखण्डी, विशेष प्रकार की मृत्यु का आशौच, आत्महत्या करने वाले का

---

१. प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपंतनैश्चेच्छताम्।।११।। (वही ५/११)

२. श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणीम् ।।१७।।
(गौ०ध०सू० पांचवा अध्याय)

३. असपिण्डे योनिसंबन्ध सहाध्यायिनी च।।१८।। (गौतम धर्मसूत्र पांचवा अध्याय)

४. सब्रह्मचारिणयेकाहम्।।१९।। (वही ५/१९)

५. श्रौत्रिये चोपसंपन्ने ।।२०।। (गौतम ध०सू० पांचवा अध्याय)

६. प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमाशोचमभिसंधाय चेत्।।२१।।(गौतम धर्मसूत्र पांचवा अध्याय)

७. अवरश्चेद्वर्णाः पूर्ववर्णमुपस्पृशेत्पूर्वो वाऽवरं तत्र शवोक्तमाशौचम्।।
(गौ० ध०सू० ५/११)

आशौच, माता-पिता की मृत्यु का आशौच, गुरु, पिता मामा, श्वसुर, पत्नी के शव के साथ जाने पर, राजा आदि की मृत्यु पर दास, ऋत्विज के मृत्यु पर आशौच का वर्णन किया है। मनु के मत से गुरु की मृत्यु, आचार्य, पुत्र, पिता, राजा, अध्यापक आदि की मृत्यु पर अशौच की व्यवस्था दी है। इन सबकी शुद्धि के लिए धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त इस प्रकार है–

**प्रायश्चित विधान–**

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार मृतक आशौच के प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है गौतम ने व्यवस्था दी है कि शव स्पृष्टि (जिसने इनको स्पर्श कर लिया है) तृत्स्पृष्टि (जिसने उसको स्पर्श कर लिया हो) को स्पर्श करने पर वस्त्र के साथ स्नान कर लेना चाहिए। यही बात मनु और याज्ञवल्क्य ने भी कही है।[१] याज्ञवल्क्य के अनुसार अपरिणीता कन्या के वाग्दान के पहले मरने पर एक दिन रात में ही आशौच की शुद्धि होती है। इसी प्रकार गुरु, शिष्य, वेदाङ्ग के प्रवक्ता मामा और श्रौत्रिय के मरने पर एक रात एक दिन में शुद्धि होती है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि आशौच के दिनों का बढ़ाना नहीं चाहिए और वेदज्ञों एवं आहिताग्नियों की एक दिन का ही शौच करना चाहिए। मनु के कथन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में आवागमन के साधन सीमित थे। अतः पास में रहने वाले सम्बन्धियों के यहां भी जनन-मरण के समाचार बहुत देर में पहुंचते थे, इसलिए आशौच नियमों से सम्बन्धित अवरोध लोगों को बहुत बुरा नहीं लगता था। भारतवर्ष में जो आशौच सम्बन्धी जो नियम देखने में आते है वे अन्यत्र दुलर्भ है। आज कल डाक, रेल, वायुयान एवं तार की सुविधाओं के कारण प्राचीन एवं मध्यकाल के आशौच नियम लोगों को बहुत अखरते है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित आशौच प्रायश्चित व्यवस्था यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों पर आधृत प्रतीत होती है। तथापि पवित्रता सम्बन्धी नियम शाश्वत प्रतीत होते है।

## (४) जन्म आशौच में प्रायश्चित्त विधान

**जन्म आशौच–**

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में जन्म आशौच का वर्णन इस प्रकार किया है। गौतम के मत से जिस प्रकार मृत्यु का आशौच होता है उसी प्रकार जन्म का भी आशौच

---

१. निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च।
सवासा जलामाप्लुत्य शुद्धो भवती मानवः।।७७।। (मनु० पंचम अध्याय)

होता है। गौतम का बौधायन, याज्ञवल्क्य, अंगिरा आदि के समान की कथन है कि जन्म का सूतक माता और पिता को होता है, अथवा केवल माता को ही होता है।[१] बौधायन धर्मसूत्र में जन्म के अवसर पर माता और पिता के लिए दस दिन का आशौच तो होता ही है।[२] कुछ लोगों का मत है कि जन्म के अवसर पर आशौच केवल प्रसूता माता के लिए होता है क्योंकि उसी से स्पर्शादि का परहेज रखा जाता है। कुछ अन्य लोगों का मत है कि जन्म के अवसर पर पिता का ही आशौच होता है।[३] क्योंकि सन्तानोत्पति में पिता के वीर्य की ही प्रधानता होती है। बौधायन का कथन है कि अन्तिम मत यही है कि माता और पिता दोनों के लिए आशौच होना चाहिए क्योंकि सान्तानोत्पति में दोनों का समान संसर्ग होता है।[४] याज्ञवल्क्य के अनुसार जन्म का सूतक (अस्पृश्यत्व) माता-पिता का ही होता है। (सभी सपिण्डों का नहीं) उसमें भी माता का रुधिर दिखाई पड़ने से उसे निश्चित रूप से दस दिन तक का सूतक होता है। जिस दिन बालक का जन्म होता है वह दिन दान आदि के लिए अशुद्ध नहीं होता, क्योंकि पूर्व पुरुष (पितर) ही पुत्र के रूप में जन्म लेते है। मनु ने जिस प्रकार यह मरणाशौच मह सपण्डिों में कहा है, उसी प्रकार जन्म (बच्चा पैदा) होने पर भी पूर्ण शुद्धि चाहने वाले सपिण्डों का आशौच होता है।[५] कुल्लूक भट्ट ने जननाशौच में कुलवाले का अन्न दस दिन तक नहीं खाया जाता है तथा दान लेना, यज्ञ और वेद का स्वाध्याय छोड़ दिया जाता है।[६] इस प्रकार धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों ने जन्म में आशौच का वर्णन किया है। मनुष्य इस आशौच से किस प्रकार शुद्ध होता है। उनका प्रायश्चित वर्णन इस प्रकार है।

**प्रायश्चित वर्णन–**

धर्मसूत्रों के अनुसार जन्म से उत्पन्न आशौच वाले व्यक्ति इसी प्रकार के अन्य सम्बन्धियों को नहीं स्पर्श कर सकते। यदि वे ऐसा करते है तो उन्हें प्राजापत्य

---

१. मातापित्रोस्तन्मातुर्वा।।१४।। (गौ०ध०सू० ५/१४)

२. जनने तावन्मातापित्रोर्दशाहमाशौचम् ।।१७।। (बौ०ध०सू० १/५/१७)

३. पितुरित्यपरे शुक्लप्राधान्यात्।।१९।। (वही १/५/१९)

४. मातापित्रोरेव तु संसर्ग सामान्यात् ।।२१।। (वही १/५/२१)

५. यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते।
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ।।६१।। (मनु० ५/६१)

६. अत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो यज्ञः स्वाध्यायश्च निवर्तते।। (मनु० पृ०२५)

या सान्तपन नामक व्रत का प्रायश्चित करना पड़ता है। याज्ञवल्क्य के मत से यज्ञ के लिए वरण किये हुए पुरोहितों को जब उन्हें मधुपर्क दिया जा चुका हो तो जन्म की स्थिति में सद्यः शौच (स्नान द्वारा शुद्धि) करनी चाहिए।

यही बात उन व्यक्तियों के लिए भी है जो सोमयाग जैसे वैदिक यज्ञो के लिए दीक्षित हो चुके है जो किसी दानगृह में भोजन दान करते रहते है जो चान्द्रायण व्रत या स्नातक धर्म में लगे रहते है। गौतम का कथन है कि सूतिका को स्पर्श करने पर वस्त्र सहित स्नान करने से अशुद्ध व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। प्रो० सुरेन्द्र कुमार ने जन्म के आशौच से शुद्ध होने का प्रायश्चित्त इस प्रकार कहा है कि पिता तो जल में स्नान करके ही शुद्ध हो जाता है।[१] गर्भस्राव हो जाने पर जितने मास का गर्भ हो उतनी ही रात्रियों में स्त्री शुद्ध हो जाती है। पतिव्रता रजस्वला स्त्री रज बन्द होने जाने पर स्नान करने से शुद्ध हो जाती है।[२] याज्ञवल्क्य के मत से यज्ञ के लिए वरण किये गये पुरोहित को जब उन्हें मधुपर्क दिया जा चुका हो, जनन की स्थिति में सघः शौच (स्नान दारा शुद्धि) करना पड़ता है। यही बात उन लोगों के लिए भी है जो सोमयाजी ही किसी दानगृह में भोजन दान करते रहते है, जो चान्द्रायण जैसे व्रत या स्नातक धर्म पालन में लगे रहते है, जो ब्रह्मचारी है, जो प्रतिदिन गौ, सोने आदि के दान में लगे रहते है, जो ब्रह्मज्ञानी है, दान देते समय, विवाह, वैदिक यज्ञो, युद्ध देश में विप्लव के समय दुर्भिक्ष या आपात्काल में सद्यः शौच होता है।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जन्म के साथ उत्पन्न होने वाला आशैच से व्यक्ति स्नानादि क्रिया को करने पर तथा प्राजापत्य जिसमें तीन-तीन दिन तक बिना मांगे खाना इस प्रकार के व्रत को करने पर जननाशौच से व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

जन्म आशौच व्यक्ति का स्पर्शादि निषेध जहां नवजात शिशु नव प्रसूता की सुरक्षा में सहायक है। वहीं उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अनेक तरह की

---

१. सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम्।
सूतकं मातुरेवस्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः।।६२।। (मनु० ५/६२)

२. रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्धयति।
रजुस्युपश्ते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला।। (मनु० ५/६६)

३. ऋत्विजां, दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम्। सत्रिव्रतिब्रह्म चारिदातृब्रह्मविदां तथा ।।२८।।
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे। आपद्यपि हि कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते।।२९।। (याज्ञ० ३/२८-२९)

अशुद्धियों से बच सकते है। नवजात शिशु जहां स्पर्श जन्य अनेक संक्रामक रोगों से प्रभावित होता है। वही घर के वातावरण दुर्विचारों तथा दुर्दृष्टि से भी सुरक्षित होना चाहिए। इस दृष्टि से अस्पृश्यता विधान युक्ति संगत प्रतीत होता है।

## (५) शूद्र के अन्न भक्षण करने में प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार यदि व्यक्ति उच्चवर्ण का है तो उसके लिए शूद्र के अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिए। क्योंकि शूद्रों वर्णों में सबसे निम्न कोटि का माना है। यदि व्यक्ति अज्ञानवश या ज्ञानपूर्वक भी शूद्र के अन्न का भक्षण करता है तो वह पाप से ग्रस्त माना जाता है और अपवित्र हो जाता है। इस अपवित्रता से मुक्त होने के लिए सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के मतानुसार प्रायश्चित विधान इस प्रकार हैं।

बौधायन के कथनानुसार शूद्र के अन्न का भक्षण करने से जो अपवित्रता उत्पन्न हो गयी है। 'प्रसृतयावक' नामक प्रायश्चित साधन से इस पाप से मुक्त हो सकता है।[१] पापी व्यक्ति कहे कि यव घृत है, यव मधु है, यव जल है, यव अमृत है। तुम मेरे शूद्र के अन्न के भक्षण से उत्पन्न मेरे पाप को नष्ट करों। इस प्रकार प्रायश्चित करता हुआ वह पाप से मुक्त हो सकता है।[२]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि यदि व्यक्ति शूद्र के यहां भोजन करता है या उसके अन्न का भक्षण करता है तो वह उच्च वर्ण वाला व्यक्ति अशुद्ध अर्थात् अपवित्र माना जाता है। जो व्यक्ति 'लपसी' जौ से बनायी गयी हो उसे खाता है। तो वह इस पाप से मुक्त हो सकता है। उसे प्रसृतयावक या प्रसृतियावक नामक व्रत करना चाहिए। मन्त्रों का उच्चारण, होम आदि यज्ञ क्रियायें करके अपने को शुद्ध कर सकता है। क्योंकि होम से वातावरण भी शुद्ध होता है। और अन्तरात्मा भी। अन्न और मन का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है। यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध हैं। जैसा खाये अन्न वैसा हो मन। यह बात आज वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर भी प्रमाणित हो चुकी है।

अन्न कई प्रकार से दूषित माना जाता है। यथा वासी, विकृत, दृष्टि दूषित, संसर्ग दूषित दुर्भावनाओं से युक्त मन से बनाया जाता है। इसी प्रकार पाप कर्मों

---

१. श्वसेरावधूतं यत्काकोच्छिष्टोपहतं य यत्।
मातापित्रोरशुश्रूषां सर्व पुनथ में यवाः।। (बौ०ध०सू० ३/६/६)

२. घृतं यवा मधु यवा आपो यवा अमृतं यवाः।
सर्व पुनथ में पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।। (वही ३/६/७)

से अर्जित धन भी दूषित है। सम्भवतः इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर शूद्रान्न भक्षण में प्रायश्चित का विधान किया गया है।

## (६) चाण्डाल का घर में प्रवेश व स्पर्श जन्य अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रकारों में गौतम के अनुसार चाण्डाल का स्पर्श करने पर व्यक्ति अशुद्ध हो जाता है। इस अपवित्रता से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति वस्त्र सहित स्नान कर लेने से पवित्र हो सकता है।[१] आपस्तम्ब के अनुसार यदि एक ही जगह पर कोई ब्राह्मण एवं चाण्डाल बिना एक-दूसरे को स्पर्श किये बैठे हो तो ब्राह्मण केवल स्नान द्वारा शुद्ध हो सकता है। याज्ञवल्क्य ने भी गौतम के कथन का समर्थन किया है।

बौधायन वसिष्ठ एवं स्मृतिकार पाराशर ने प्रस्तुत पाप का प्रायश्चित विधान का वर्णन स्पष्ट एवं पृथक रूप से नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि चाण्डाल को अपवित्र माना है और यदि कोई व्यक्ति उसे घर में प्रवेश कराये या उसके घर में प्रवेश करे या उससे स्पर्श हो जाय तो वह अपवित्र हो जाता है। इससे वस्त्रों सहित स्नान करने से उसका शरीर शुद्ध हो जाता है। स्नान स्पर्श जन्य अपवित्रता आदि दोषों को दूर करने में सक्षम हैं।

## (७) निषिद्ध भोजन के खाने से अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान

प्रमुख धर्मसूत्र एवं स्मृतियों में निषिद्ध भोजन का भक्षण करने पर व्यक्ति को अपवित्र माना है। सुरा के लिए प्रयुक्त किसी पात्र में जल पीना, किसी चाण्डाल या धोबी या शूद्र के घर में जल पीना, न पीने योग्य दूध का सेवन आदि का भक्षण कर लेने पर व्यक्ति अपवित्र हो जाता है। बृहस्पति के कथनानुसार खाने एवं चाटने की निषिद्ध वस्तुओं के सेवन या मानव वीर्य, मूत्र या मल के सेवन पर चान्द्रायण व्रत द्वारा शुद्धि होती है। संवर्त-शंख जैसे ऋषियों ने उदार मत भी दिया है और

---

१. गौतम धर्म सूत्र १४/२८

गोमांस एवं मानव मांस के सेवन करने पर चान्द्रायण व्रत की व्यवस्था दी है।[१]

मनु के अनुसार एक सामान्य नियम इस प्रकार है कि यदि व्यक्ति आंतरिक शुचिता चाहता है तो उसे निषिद्ध भोजन नहीं करना चाहिए, यदि वह अज्ञानवश ऐसा कार्य अर्थात् ऐसा भोजन कर ले तो उसे प्रयास करके वमन कर देना चाहिए और यदि वह ऐसा न कर सके तो उसे शीघ्रता से प्रायश्चित कर लेना चाहिए। अज्ञान से निषिद्ध भोजन कर लेने पर हल्का प्रायश्चित होता है।[२]

मनु ने कहा है कि जब कोई व्यक्ति विपत्ति काल में (जब कि जीवन भय भी उत्पन्न हो गया हो) किसी से भी कुछ ग्रहण कर लेता है तो उसे पाप नहीं लगता, क्योंकि आकाश में पंक नहीं रहता।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि यदि कोई व्यक्ति निषिद्ध भोजन का भक्षण करता है तो वह अपवित्र हो जाता है और चान्द्रायण व्रत को अर्थात् अपने शरीर को कष्ट देकर नियमित भोजन से इन्द्रियों को पीड़ित करके उसका शरीर पवित्र हो जाता है। अन्न दोषों से उत्पन्न मनोविकार निराहार से दूर किये जा सकते है। गीता भी इस सिद्धान्त को प्रमाणित करती है। **विषयाविनिवर्त्तन्ते निराहारस्यरेहितः**। अतः उक्त विधान युक्ति संगत है।

## (८) पातकी के साथ एक पंक्ति में बैठकर खाने में प्रायश्चित्त विधान

पाराशर के अनुसार पातकी के साथ एक पंक्ति में बैठकर खाने से जो पाप जन्य होता है उससे मुक्त होने के लिए व्यक्ति को चान्द्रायण व्रत, यव का भोजन, तुला पुरुष का दान, गौओं के पीछे चलने से व्यक्ति को इस प्रकार प्रायश्चित विधान करना पड़ता है। जिससे व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

---

१. अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे। रेतोमूत्रपुरीषाणां स्मृतम्।।
(अपरार्क पृ० ११६४, परा०मा०२, भाग १, पृ० ३६७)
गोमांसं मानुषं चैव सूनिहस्तात्समाहतम्। अभक्ष्यं तद् भवेत्सर्व भुक्त्वाचान्द्रायणं चरेत्।।
संवर्त (१९७ अपरार्क पृ० ११६५; परा०मा०२, भाग १, पृ० ३६७)
श्रृगालकुक्कुटदंष्ट्रि-क्रव्याद-वानर-खरोष्ट्र-गजवाजि-विड्वराह-गोमानुमांसभक्षणे चान्द्रायणम्।
शंखलिखित (अपरार्क पृ० ११६४, परा०मा०२, भाग १, पृ०३६८)
(गौ० ध० सू० २३/४-३, वसिष्ठ २३/३०, मनु० ११/१५६, विष्णु ५१/३-४)

२. (मनु० ११/१६०)

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ एवं मनु, याज्ञवल्क्य ने भी पाराशर की बात का समर्थन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति पातकी है अर्थात् पाप से युक्त है यदि उसके साथ कोई व्यक्ति संसर्ग करता है तो वह भी पातकी हो जाता है अर्थात् वह चान्द्रायण व्रत से अपने इन्द्रियों पर संयम करके गौओ के पीछे चलकर अपने को शारीरिक दुःख देकर व्यक्ति पाप से शुद्ध हो जाता है क्योंकि व्रत आदि करने से व्यक्ति का चित्त शुद्ध होता है। और चित्त की शुद्धि होने पर व्यक्ति पाप के लिए प्रेरित नहीं होता है तथा ऐसा सोचने या विचार करने से भी भयभीत होता है।

## (९) निषिद्ध प्याज, लहसुन आदि का भक्षण करने से अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों ने निषिद्ध प्याज, लहसुन आदि में भक्षण का विधान नहीं किया है और ना ही इसके भक्षण में विहित प्रायश्चित्त विधान को वर्णित किया है।

स्मृतियों में पाराशर के अनुसार यदि उच्च वर्ण अर्थात ब्राह्मण लहसुन, बैगन, गाजर, प्याज, वृक्ष का गोंद, देवद्रव्य, पृथ्वी की दाल, ऊँटनी का दूध, भेड़ का दूध इन चीजों का यदि प्राशन करे। तब शुद्ध हो जाता है। मनु, याज्ञवल्क्य ने प्याज, लहसुन आदि के भक्षण में प्रायश्चित विधान पृथक रूप से नहीं किया है।[१]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है जो पदार्थ ब्राह्मण वर्ण के लिए निषिद्ध माने गये है यदि अज्ञानवश ब्राह्मण उनका भक्षण कर ले तो व्यक्ति क्रम से इन्द्रिय पर नियन्त्रण करके अपने भोजन का भक्षण करें तो उस क्रिया से व्यक्ति का मन तथा आत्मा दोनों ही शुद्ध होती है और पंचगव्य जैसी पवित्र पेय पदार्थ जो पीकर मनुष्य की अन्तरामा शुद्ध हो सकती है।

---

१. पीयूषं श्वेतलशुनं वृन्ताकफलगृञ्जने।
पलाण्डुवृक्षनिर्यासान् देवस्वं कवकानि च।।
उष्ट्रीक्षीरमवीक्षोरमज्ञानाद् भुञ्जते द्विजः।
त्रिरात्रमुपवासेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। (पारा० ११/१०,११)

## (१०) नीच लोगों से मित्रता करने से अशुद्धि में प्रायश्चित्त विधान

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार चाण्डाल आदि नीच कोटि के व्यक्तियों से मित्रता करने पर व्यक्ति अशुद्ध हो जाता है।

पाराशर के अनुसार चाण्डाल आदि से मित्रता करने वाला व्यक्ति भी पापी माना जाता है। यदि व्यक्ति ब्राह्मण वर्ण का हो तो एक बार गायत्री जप और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के सम्पर्क में रहने तथा उनसे बातचीत करने पर शुद्ध हो जाता है।[१] तथा अन्य वर्ण का व्यक्ति यदि नीच व्यक्ति के साथ शयन, दर्शन, स्पर्श, उनके यहां बनी बावड़ी या जलाशय का जल ग्रहण करने पर व्यक्ति को प्रायश्चित करना पड़ता है। वह व्यक्ति तीन रात्री तक उपवास करें। गायत्री का स्मरण करें, वस्त्रसहित स्नान करे एवं एक दिन-रात्रि निराहार रहने से शुद्धि हो जाती है।[२]

उनके साथ दैनिक क्रिया में से किसी भी क्रिया को करने पर गोमूत्र और जौ का भोजन करे, ब्राह्मण यदि उनके यहां जल ग्रहण करे तो तत्क्षण मुख से बाहर कर दे शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत करें।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्रत, उपवास, स्नान आदि सभी पवित्र क्रियाओं को करने से व्यक्ति की आत्मशुद्धि एवं चित्त शुद्धि होती है जिससे व्यक्ति दुष्कर्म करने में सहायक नहीं होता है।

## (११) निषिद्ध दान लने में प्रायश्चित्त विधान

ब्राह्मण ग्रन्थकारों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण वर्ण का हो विपत्ति

---

१. श्वपाकं चापि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि।
द्विजसंभाषणं कुर्यात् सावित्री च सकृज्जपेत्।।२२।। (पारा० ६ अध्याय)

२. चाण्डालैः सह सुप्तं तु त्रिरात्रमुपवासयेत्।
चाण्डालकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः।।
चाण्डालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत्।
चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत्।। (पारा० ६/२३-२४)

३. चाण्डालभाण्डसंपृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम्।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात्।।
चाण्डालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबेत द्विजः।
तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत्।। (पारा० ६/२६,२७)

न पड़ने पर किसी क्षत्रिय से दान ग्रहण करता है तो एक मास तक केवल दिन में एक बार भोजन करना चाहिए।[1] जल में खड़े होकर **'महत् तत् सोमो महिषश्चकार'** का पाठ करना चाहिए और यदि यह किसी वर्जित व्यक्ति से दान लेता है तो उसे कृच्छ्र प्रायश्चित करना चाहिए तथा **'त्रिकद्रकेपु'** का पाठ करना चाहिए।[2]

याज्ञवल्क्य का कथन है कि ब्राह्मण को कृपण या लोभी एवं शास्त्र विरुद्ध कार्य करने वाले राजा से दान नहीं लेना चाहिए।[3] मनु के मत से न लेने योग्य दान के ग्रहण एवं गर्हित व्यक्ति के दान ग्रहण से जो पाप लगता है उससे छुटकारा पाने के लिए तीन सहस्र गायत्री जप से या एक मास में केवल दूध पर रहने या एक मास गौशाला में रहने से हो जाता है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण को किसी से भी दान लेने या भोजन ग्रहण करने, किसी को पढ़ाकर जीविका चलाने की अनुमति दी है और कहा है कि ब्राह्मण तो गंगा के जल एवं अग्नि के समान पवित्र है उस पर इस कृत्य से पाप नहीं लगता।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञाता होता है कि जो दान में निषिद्ध है उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि कभी परिस्थिति वश या मोह वश निषिद्ध दान को ग्रहण कर लेता है। यदि व्यक्ति ज्ञान या अज्ञान में ऐसा कार्य करता है तो उस व्यक्ति को पापी माना जाता है।

स्नान आदि क्रिया तथा गायत्री जप आदि ऐसे प्रायश्चित विधान है जो व्यक्ति को बाह्य रूप से ही नहीं अपितु आन्तरिक रूप से भी शुद्ध कर देता है तथा मनुष्य पाप करने का विचार भी मन में न ला सके। उसका मन इन क्रियाओं को करने से पाप भावना या पाप को करने के लिए प्रेरित नहीं करता और व्यक्ति अपने आपको निषिद्ध दान ग्रहण आदि क्रियाओं से बचा सकता है।

## (ख) आजीविका सम्बन्धी प्रायश्चित्त विधान

### (१) अविक्रय सौदे को बेचने में प्रायश्चित विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार व्यक्ति को अविक्रय सौदा अर्थात् जो

---

१. सामवेद १/६/१/५/१०, पृ० सं० ५४२

२. याज्ञ० १/१४०

३. मनु० ११/१९४

वस्तु जैसे तिल, तैल, दधि, क्षौद्र, (मधु), नमक, अंगूर मद्य, पक्वान्न, पुरुष या नारी, दासी, हाथी, घोड़ा, सुगन्धि पदार्थ, रस, क्षौम, (रेशमी वस्त्र) कृष्णाजिन (काले हरिण की खाल), सोम, उदक (जल), नीली (नीला रंगा) इन सब वस्तु का विक्रय करने पर ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति पाप युक्त हो जाता है।[१]

मनु के अनुसार जो ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति अविक्रय सौदे का विक्रय करता है उस व्यक्ति को पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित विधान करना पड़ता है। प्रायश्चित स्वरूप उस व्यक्ति को सिर मुंडवा कर साल भर तक तप्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिए, दिन में तीन बार प्रवेश करना चाहिए, एक ही गीला वस्त्र पहने रहना चाहिए। मौन व्रत धारण करना चाहिए। वीरासन करना चाहिए, रात में बैठना एवं दिन में खड़े रहना चाहिएऔर गायत्री का जप करना चाहिए इस प्रकार प्रायश्चित विधान को करके मनुष्य प्रस्तुत पाप से मुक्त हो जाता है। अन्य सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने इस विषय पर पृथक् रूप से प्रायश्चित विधान नहीं दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति व्रत, स्नान, मौन, वीरासन, विश्राम का त्याग करने पर इन्द्रियों पर संयम कर लेता है। और इन्द्रियों पर संयम करने से व्यक्ति पाप को करने के लिए प्रेरित नहीं होता और इस तरह वह अपने मन को शुद्ध कर लेता है।

## (१) अविक्रय सौदे को बेचने में प्रायश्चित विधान–

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मतिकारों के अनुसार उच्च वर्ण के व्यक्ति अर्थात् ब्राह्मण को सोमलता नामक मद्य का विक्रय नहीं करना चाहिए। वर्जित वस्तु को विक्रय करने पर ब्राह्मण पाप से युक्त हो जाता है।

मनु के अनुसार उस पापी व्यक्ति को प्रायश्चित स्वरूप सिर मुंडवाकर साल भर तक तप्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिए, दिन में तीन बार जल प्रवेश करना चाहिए, एक ही गीला वस्त्र पहने रहना चाहिए, मौन व्रत धारण करना चाहिए, वीरासन करना चाहिए, रात में बैठना दिन में खड़े रहना चाहिए और गायत्री का जप करना चाहिए।

अन्य सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने प्रस्तुत पाप के लिए प्रायश्चित विधान को स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया है।

---

१. मनु १०/१०९

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्रत आदि से स्नान से जप ये सभी कर्म चित्त की शुद्धि करने में सहायक होते है। दुष्कर्म जन्य पाप करने पर मनुष्य जल में प्रवेश कर तथा रात्रि में नींद का त्याग करने पर जो वह कष्ट का अनुभव करता है तो वह सोमलता के विक्रय जल से दुष्कर्म को करने के लिए पुनः प्रेरित नहीं होता है क्यों कि सोमलता का पान पहले निषिद्ध नहीं था परन्तु सोमलता का विक्रय निषिद्ध है।

### (३) निन्दित धन से जीविकोपार्जन में प्रायश्चित विधान–

धर्मसूत्रकारों में वसिष्ठ ने निन्दित धन का जीविकोपार्जन अपवित्र करने वाला कर्म माना है यदि व्यक्ति जीविका वृत्ति को लेकर अर्थात् वृत्ति या भरण पोषण से परेशान होकर कोई पाप कर देता है तो वह व्यक्ति पाप से मुक्त होने के लिए गोचर्म के बराबर भूमि दान में देकर शुद्ध हो सकता है।[१]

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एव मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर ने प्रस्तुत पाप के लिए कोई प्रायश्चित विधान पृथक् रूप से स्पष्ट नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि निन्दित धन से जीविकोपार्जन नहीं करना चाहिए। यदि ज्ञान, अज्ञान में व्यक्ति इस पाप को कर लेता है तो वह अपने आपको, भूमि को दान में देकर पाप से मुक्त कर सकता है।

## (ग) स्वकर्त्तव्य त्याग में प्रायश्चित्त विधान

### (१) वेद स्वाध्याय त्याग में प्रायश्चित्त्स विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों के अनुसार स्वाध्याय का त्याग करने पर भी मनुष्य को पापी माना जाता है। स्मृतिकारों में याज्ञवल्क्य ने व्यक्ति किसी व्यसन में फंसकर स्वाध्याय का त्याग कर देता है तो उसका प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या के समान प्रायश्चित्त कहा गया है। यदि अन्य शास्त्र की जिज्ञासा वश वेद का स्वाध्याय त्याग किया हो तो त्रैमासिक व्रत का आचरण करता हुआ उपपातकों के समान प्रायश्चित करना चाहिए। इस प्रसंग में वसिष्ठ लिखते है। वेद का स्वाध्याय त्याग करने वाला बारह रात्रि पर्यत्न कृच्छ्र व्रत का आचरण करें। फिर से आचार्य से वेद का अध्ययन

---

१. यत्किंत्किुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति।। (वसिष्ठ धर्म सूत्र २९/१६)

प्रारम्भ करें।[१]

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम, वसिष्ठ एवं मनु, पाराशर ने स्वध्याय त्याग में प्रायश्चित विधान पृथक् रूप से वर्णित नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि यदि मनुष्य अज्ञान में या किसी मोह में फंसकर स्वाध्याय का त्याग कर दे तो वह सिर मुडंन कराकर तथा बारह वर्ष तक वन में जाकर कुटि बनाकर रहे जिससे वह एकाग्रचित होकर त्यागे गये कार्य का स्मरण कर उस कार्य को करने के लिए प्रेरित होता है और फिर उस कर्म में तत्पर हो जाये ऐसा करने से वह पाप से मुक्त हो जाता है।

## (२) पुत्र, बान्धव त्याग में प्रायश्चित विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों के अनुसार पुत्र अथवा बान्धव अर्थात् भाई बहन या निकट सम्बन्धी व्यक्तियों का त्याग करने पर व्यक्ति पाप से युक्त हो जाता है। स्मृतिकारों में याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्र का त्याग करने वाल, बन्धुओं का त्याग करने वाला, तीन मास तक गोवध में विहित प्रायश्चित को करे। जैसे कृच्छ्र चांद्रायण व्रत, मृग चर्म को धारण करे तथा गायों का अनुसरण करे आदि जैसे कर्मों को करता हुआ पाप से मुक्त हो जाता है। केशों को मुंडवा कर द्विगुणित दक्षिणा को देकर भी मनुष्य जिस प्रकार गौ हत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। वैसे ही पुत्र बान्धवों के त्याग करने से उत्पन्न पाप से भी व्यक्ति मुक्त हो जाता है। अनिच्छा वश या अज्ञान में यदि व्यक्ति इस कर्म को करता है तो अपनी शक्ति के अनुसार योगेश्वर के द्वारा विहित चार व्रतों का आचरण करें। इससे व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्रत आदि से चित्त की शुद्धि होती है। दक्षिणा आदि से मनुष्य की जीविका को चलाने वाले धन में कमी होने पर उसे अपनी गलती का अहसास होता है। इस प्रकार वह अपने पाप को समझ व्रत आदि का आचरण करके अपने पाप से शुद्ध हो जाता है।

## (ध) भिन्न-भिन्न आश्रमों में प्रायश्चित विधान

---

१. ब्रह्मोज्झः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरूपयुञ्जीत वेदमाचारयात्।

(याज्ञ० ५७९ पृ०)

## (१) ब्रह्मचारी के लिए प्रायश्चित विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों के अनुसार यदि कोई ब्रह्मचारी किसी भी प्रकार से अपने ब्रह्मचर्य व्रत का उल्लंघन करता है तब वह पापी माना जाता है। और उसका ब्रह्मचर्य व्रत भंग हो जाता है। आपस्तम्ब के अनुसार यदि ब्रह्मचर्य को भंग करने वाला अवकीर्ण ब्रह्मचारी निऋति के लिए पाप यज्ञ की विधि से गदहे की बलि प्रदान करें।[१] अथवा उस गदर्भ की बलि का हवन करने से अवशिष्ट मांस का शूद्र पुरुष को भक्षण करावे।[२] जैसे गर्दभेज्यः-अवकीर्णी गर्दा की बलि प्रदान कर अपने दोष से मुक्त हो जाता है। यह बात युक्ति संगत नहीं प्रतीत हो रही है। इस संदर्भ में स्वामी समर्पूर्णानन्द सरस्वती (पण्डित बुद्ध देव विद्यालंकार ने) गर्दभेज्या के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अवकीर्ण व्यक्ति को गर्दभ के जीवन सदृश कठोर व्रत धारण करना चाहिए। अर्थात् जिस तरह से गर्दभ रूखा सूखा खाकर कठोर परिश्रम करता है। अल्पविश्राम करता है, उसी प्रकार अवकीर्णी घृत दुग्धादि पुष्टि कारक पदार्थ त्यागकर रूखा सूखा आहर ले तथा सतत् परिश्रमशील रहे। जिससे वह अपने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने में समर्थ होगा न कि गधे को काट कर आहूति प्रदान करने से।

ये दोनों प्रायश्चित विधान आपस्तम्ब ने उस ब्रह्मचारी के लिए बतलाये है। जो स्त्री सम्पर्क में ब्रह्मचर्य को भंग करता है।

आपस्तम्ब के अनुसार नियम का उल्लंघन करके अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी के दोष का प्रायश्चित इस प्रकार है।[१] एक वर्ष तक चुपचाप गुरु की सेवा करे, और केवल प्रतिदिन के स्वाध्याय के समय आचार्य, आचार्य पत्नी से किसी आवश्यक कार्य का निवेदन करते समय, और भिक्षाचरण के समय ही बोले।[२]

इसी प्रकार उन्हीं दोषों के लिए तथा अन्य दोषों से युक्त कर्मों के लिए प्रायश्चित इस प्रकार है।

---

१. गर्दभेनाऽवकीर्णी निर्ऋति पाकयज्ञेन यजेत्।। (आपस्तम्ब १/९/२६/८)

२. तस्य शूद्रः प्राश्नीयात्।। (वही १/९/२६/९)

३. मिथ्याधीतप्रायश्चितम्।। (वही १/९/२६/१०)

४. संवत्सरमाचार्यहिते वर्तमानो वाचं यच्छेत्स्वाध्याय एवोत्सृजमानो वाचमाचार्य आचार्यदारे वा भिक्षाचर्ये च।। (वही १/९/२६/१)

पापी व्यक्ति को काम और मन्यु के लिए **'कामोऽकार्षीत'** (ऐसा काम ने किया है।) **'मन्युरकार्षीत्'** (ऐसा मन्यु ने किया है।) कहते हुए हवन करे[१] अथवा काम और मन्यु के मन्त्र का केवल जप करे।[२] ब्रह्मचारी पर्वों पर (पौर्णमासी तथा अमावस्या को) का भक्षण करके अथवा उपवास काके, दूसरे दिन स्नान करे, प्राणायाम करके गायत्री मन्त्र को एक हजार बार जप करे अथवा बिना प्राणायाम किये ही गायत्री मन्त्र का एक हजार बार जप करें।[३]

आपस्तम्ब के कथनानुसार ही श्रावण महीने की पौर्णमासी को तिल का भक्षण करके या उपवास करके दूसरे दिन किसी बड़ी नदी में स्नान करे अथवा एक सहस्र बार गायत्री मंत्र का जप करें[४] अथवा अपनी शुद्धि के लिए (मृगरादि) इष्टियां, सोमभाग अग्निष्टोम आदि यज्ञ करें।[५]

ब्रह्मचारी यदि निषिद्ध भोजन का भक्षण करले तो ब्रह्मचारी तब तक उपवास करे जब तब पेट मलरहित नहीं हो जाता।[६] अथवा हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में प्रातः और सांय ठण्डे जल से स्नान करे।[७] अथवा बारह दिन का कृच्छ्र व्रत करे।[८] ब्रह्मचारी के लिए कृच्छ्र व्रत का नियम इस प्रकार है। तीन दिनों सन्ध्या को भोजन न करें। फिर अगले तीन दिन भोजन न करे, फिर तीन दिन बिना मांगे प्राप्त अन्न खाकर रहे और उसके बाद तीन दिन तक कुछ न खाये। इस प्रकार बाहर दिन तक व्रत करें।[९]

ब्रह्मचारी के लिए अनेक ऐसे दोषयुक्त कर्म है। जिस कर्मो से पतन नहीं

---

१. काममन्युभ्यां वा जुहुयात्कामाऽकार्षीन्मन्युर कार्षी दिति।। (आप० १/९/२६/१३)
२. जपेद्वा।। (वही १/९/२६/१४)
३. पर्वणि वा तिलभक्ष उपोष्य वा श्वोभूत उदकमुपस्पृश्य सावित्रीं प्राणायाममंशस्सहस्रकृत्व आवर्तयेदप्राणायामशो वा।। (वही १/९/२६/१५)
४. श्रावण्या वो पौणमास्यां तिलभक्ष उपोष्य वा श्वो भूते माहानदमुदकमुपस्पृश्य सावित्र्या समित्सहस्रमादध्याज्जपेद्वा।। (वही १/९/२७/१)
५. इष्टियज्ञक्रतून्वा पवित्रार्थानाहरेत्।। (वही १/९/२६/२)
६. अभोज्यं भुक्त्वा नैष्पुरीष्यम्।। (आप० १/९/२७/३)
७. हेमन्तशिशिरयोर्वोभयोस्सन्ध्योर्वोदकमुपस्पृशेत्।। (वही १/९/२७/५)
८. कृच्छ्रद्वादशरात्रं वा चरेत्।। (वही १/९/२७/६)
९. त्रयहमनक्ताभ्यदिवाशी ततस्त्र्यहम् त्रयहमाचितव्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किचनेति कृच्छ्रद्वादशरात्रस्य विधि।। (वही १/९/२७/७)

होता, यदि उपवास करते हुए अपने वेद की सम्पूर्ण शाखा को निरन्तर तीन बार पारायण करे दो दोष से मुक्ति हो जाती है।[१]

ब्रह्मचारी यदि अनार्या अर्थात् शूद्रा से संभोग करने वाला, ब्याज पर धन देने वाला, या मादक द्रव का पान करने वाला हो, सबकी अब्राह्मण की तरह वन्दना करने वाला हो, तो वह घास पर (सूर्योदय के समय से) बैठकर अपनी पीठ को तपावे।[२]

ब्राह्मण ब्रह्मचारी शूद्र की एक रात सेवा करने से दोष को करने पर प्रति चौथे भोजन काल पर स्नान करके तीन वर्ष में दूर करता है।[३] इस प्रकार ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत के भंग से जन्य पाप से छुटकारा पा सकता है।

बौधायन के अनुसार यदि ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ब्रह्मचारी अपने माता-पिता या आचार्य के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के शव का कोई कर्म (वहन करना या दाहसंस्कार) करता है तो उसे अपना व्रत पुनः प्रारम्भ करना चाहिए।[४]

यदि ब्रह्मचारी दिन में वीर्यपात करता है तो 'रेतस्' शब्द से युक्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए तीन बार हृदय तक पहुंचने वाले जल का पान करे।[५] जो ब्रह्मचारी किसी स्त्री से मैथुन करता है वह अवकीर्ण कहलाता है।[६] ब्रह्मचारी को

---

१. अथाऽपरं बहून्यप्यपतनीयानि कृत्वा त्रिभिरनशनन् पारायणैः कृतप्रायश्चितो भवति।।

(वही १/९/२७/९)

२. अनार्या शयने विभ्रद्ददद्वृद्धि कषायपः।
अब्राह्मण इव वन्दित्वा तृणेष्वासीत पृष्ठतप्।।

(आप० १/९/२७/१०)

३. यदेरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्ण ब्राह्मणस्सेवमानः चतुर्थकाल 'उदकाभ्यवायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपहन्ति पापम्।।

(वही १/९/२७/११)

४. ब्रह्मचारिणश्शवकर्मणा व्रतावृत्तिरन्यत्र मातापित्रोराचार्यच्च।।

(बौ० ध० सू० २/१/२८)

५. दिवा रेतस्सिक्त्वा त्रिरपो हृदयङ्गमाः पिबेद्रेतस्याभिः।।

(वही २/१/२८)

६. यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयात्सोऽवकीर्णी।।

(वही २/१/२९)

पाप से निवृति के लिए गदर्भ पशु की बलि देना पड़ती है।[१] प्रायश्चित करने वाले भक्षण के लिए प्राशित्र पशु (गर्दभ) के शिश्न से ग्रहण किया जाता है तथा अन्य अवयवो को जल में अर्पित किया जाता है।[२]

अथवा अमावस्या की रात्रि में अग्नि का उपसमाधान कर तथा दर्विहोम की प्रारम्भिक क्रियाएं आज्य संस्कार इत्यादि अनुष्ठित कर **"कामावकीर्णोऽस्भ्यव-कीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा।"** तथा **"कामाभिद्रुग्धोऽस्मि कामाय स्वाहा।"** मन्त्रों से दो आज्य आहुतियां प्रदान करें।[३]

बौधायन के अनुसार ही हवन करने के बाद अञ्जलि बांध कर अग्नि से थोड़ा किनारे मुड़कर इस मन्त्र से प्रार्थना करे "सं.........................बृहस्पतिः। सं. ..................करोतु में" यह अग्नि मुझे दीर्घ जीवन प्रदान करे यह अग्नि मुझे आयुष्मान करें।[४]

यदि ब्रह्मचारी किसी महापातक को करता है तो ब्रह्मचारी के बन्धु बान्धव एकत्र होकर उसके लिए जलपात्र खाली करें और वह भी सभा में अमुक नाम के मैंने यह दुष्कर्म किया है। उसके प्रायश्चित कर लेने पर जल, दूध, घृत, मधु और नमक का स्पर्श कर लेने पर उसे ब्राह्मण इस प्रकार कहे "क्या तुमने प्रायश्चित कर लिया है।[५] अथवा प्रायश्चित करने वाले 'ओम' (हां मैंने यथाविधि प्रायश्चित कर

---

१. स गर्दभं पशुमालभेत।। वही

(वही २/१/३०)

२. शिश्नात्प्राशित्रमप्स्ववदानैश्चरन्तीति विज्ञायते।।

(वही २/१/३२)

३. अपि वाऽमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय दार्विहोमिकी परिचेष्टां कृत्वा द्वे आज्याहुति जुहोति।
"कामावकीर्णोऽस्भ्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा। कामाभिग्द्रधोऽस्म्यभिद्रग्धोस्मि कामकमाय स्वाहेति"।।

(बौ० ध० सू० २/१/३३)

४. हुत्वा प्रयताञ्जलिः कवातिर्यङऽग्निमुपतिष्ठेत "सं मा सिञ्चन्तु मरुतस्समिन्द्रस्सं बृहस्पतिः। सं माऽयमग्निस्सिञ्चन्त्वायुषा च बलेन चाऽऽयुष्मन्तं करोतुमे" ति।।

(वही २/१/३४)

५. अथ यस्य ज्ञातयः परिषघुदपात्रं निनयेयुरसावहमित्थंभूत इति। चरित्वाऽषः पयो घृतं मधु लवणमित्यारब्धवन्तं ब्राह्मणा ब्रूयुश्चरितं त्वयेति।।

(वही २/१/३५)

लिया है।) उत्तर दे।[१] जिस व्यक्ति ने यथाविधि प्रायश्चित कर लिया है उसको सभी प्रकार के यज्ञकार्मों में भाग लेने का अधिकारी समझना चाहिए।[२]

बौधायन के कथनानुसार यदि ब्रह्मचारी में अनजाने ही अपने गौत्र की कन्या से विवाह कर ले तो उसे माता के समान समझते हुए उसका भरण-पोषण करे। यदि इस प्रकार की स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो चुका हो तो तीन मास तक कृच्छ्र व्रत का आचरण कर **'यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत् पुनः अग्निः चक्षुरदादित्य'** आदि दो मन्त्रों से आहुति करें।[३] यदि ब्रह्मचारी अविवाहित ज्येष्ठ भ्राता से पहले विवाह कर ले, और विवाह के लिए कन्यादान दे, अथवा विवाह संस्कार सम्पन्न कराने वाला पुरोहित भी पापी व्यक्ति की श्रेणी में आ जाता है। ऐसे ब्रह्मचारी को पाप से निवृति के लिए बारह दिन तक कृच्छ्र व्रत करने पर शुद्धि मिलती है और जिस स्त्री का विवाह हुआ हो वह तीन दिन उपवास करने पर शुद्ध होती है।[४]

गौतम ने ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित करने वाला अवकीर्ण चौराहे पर निऋति के लिए गदहे की बलि प्रदान करे।[५] गौतम ने उपर्युक्त प्रायश्चित विधान में आपस्तम्ब व बौधायन के कथन का समर्थन किया है। उस गदहे के चमड़े को इस प्रकार धारण करे कि उसके बाल ऊपर रहे और लाल रंग की मिट्टी का पात्र हाथ में लेकर अपने कर्म को बताता हुआ सात घरों से भिक्षा मांगे।[६] इस प्रकार वह एक वर्ष

---

१. ओमितीतरः प्रत्याह।।

(बौ० ध० सू० २/१/३६)

२. चरित निर्वेशं सवनीयं कुर्युः।।

(वही २/१/३७)

३. सगौत्रां चेदमत्योपयच्छेन्मातृवेदनां बिभृयात्। प्रजाता चेत्कृच्छ्राब्दपांद चरित्वा यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत्पुनरग्निश्चक्षुरदादित्येताभ्यां जुहुयात्।।

(वही २/१/३८)

४. परिवित्तः परिवेता दाता यश्चाऽपि याजकः।
कृच्छ्रद्वादशरात्रेण स्त्री त्रिरात्रेण शुद्धयतीति।।

(वही २/१/३९)

५. गर्दभेनावकीर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत्।।

(गौ० ध० सू० ३/५/१७)

६. तस्याजिनमूर्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रः सप्तगृहान्भैक्षं चरेत्कमाऽऽचक्षाणः ।।

(गौ० ध० सू० ३/५/१८)

में शुद्ध होता है।[१]

भय या रोग के कारण (बिना ज्ञान के) अथवा स्वप्न में वीर्य स्खलन होने पर तथा सात दिन तक अग्नि कर्म एवं भिक्षाचरण न करने पर ब्रह्मचारी घृत का होम करे अथवा रेतस्य आदि मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि में दो समिधाएं रखें।[२]

यदि ब्रह्मचारी सूर्योदय के समय सोते रहे तो ब्रह्मचारी दिन भर मौन रहकर उपवास करते हुए खड़ा रहे और सूर्यास्त के समय सोने पर रात्रि भर गायत्री मंत्र का जप करता हुआ एक ही स्थान पर खड़ा रहे।[३] चाण्डाल आदि अपवित्र व्यक्ति को देखने पर ब्रह्मचारी प्राणायाम करके सूर्य का दर्शन करे।[४] अगर ब्रह्मचारी अभोज्य पदार्थ का भोजन कर ले तो उस समय तक उपवास करे जब तक पेट खाली न हो जाय।[५] इसके लिए वह कम से कम तीन दिन तक उपवास करे।[६] अथवा सात दिन-रात तक स्वयं गिरे हुए फलों को खाकर रहने से पवित्र होता है।[७] यदि ब्रह्मचारी दोष देकर भर्त्सना करे, झूठ बोलने और दूसरे की हिंसा करने पर तीन दिन रात व्रत करें।[८] आदि आक्रोश सत्य हो तो मन, के वरूण सूक्तों का उच्चचारण

---

१. संवत्सरेण शुध्येत्।।

(वही ३/५/१९)

२. रेतः स्कन्दने भये रोगे स्वप्नऽग्नीन्धनभैक्षचरणानि सप्तरात्रमकृ (त्रं कृ) वाऽऽज्यहोमः समिधो वा रेतस्याभ्याम्।

(वही ३/५/२०)

३. सूर्याभ्युदितो ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुञ्जानोऽभ्यस्तमितश्च रात्रिं जपन्सावित्रीम्।।

(गौ० ध० सू० ३/५/२१)

४. अशुचिं दृष्वाऽऽदित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वा।।

(वही ३/५/२२)

५. अभोज्यभोजनेऽमेऽमेध्यप्राशने वा निष्पुरीषिभावः।।

(गौ०ध०सू० ३/५/२३)

६. त्रिरात्रवर (म) भोजनम्।।

(वही ३/५/२४)

७. सप्तरात्रं वा स्वयंशीर्णन्युपभुञ्जानः फलान्यतिक्रामन्।।

(वही ३/५/२५)

८. आक्रोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः।

(गौ० ध० सू० ३/५/२७)

करते हुए होम करें।[1]

यदि ब्रह्मचारी निम्न वर्ण की स्त्री से संभोग करता है तो उसे पाप से निवृति के लिए एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करना पड़ता है।[2] अज्ञान वश निम्न वर्ण की स्त्री के साथ संभोग करने पर बारह दिन रात तक वही जप करे।[3] मासिक धर्म के समय स्त्री से संभोग करने पर तीन दिन-रात वह व्रत करे।[4]

वसिष्ठ के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने वाला व्यक्ति को गर्दभेष्टि करना चाहिए। गर्दभ तुल्य व्रत धारण करना चाहिए। जैसे गर्दभ अत्यन्त प्रयत्नशील एवं सामान्य शुष्क आहार से जीवन निर्वाह करता है उसी प्रकार अवकीर्ण ब्रह्मचर्य व्रत भंग करने वाले को दुग्ध, दही, आदि वस्तु ग्रहण करना चाहिए एवं **'ब्रह्म विद्या या कर्मात'** चिन्तन में अपना समय व्यतीत करना चाहिए। चौराहे पर गदहे की बलि प्रदान करे।[5] पाप की निवृति के लिए चरू दान करना चाहिए।[6] वह व्यक्ति मन्त्रों से भी पाप से निवृत हो सकता है।[7]

यदि ब्रह्मचारी दिन में वीर्यपात करता है तो उसे 'रेतस्' शब्द नामक मन्त्रों से हवन करे।[8]

वसिष्ठ के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत में यदि कोई व्यक्ति नीच योनि के साथ

---

१. सत्यवाक्ये वारूणीमानवीभिर्होमः।।

(वही० ध० सू० ३/५/२८)

२. अन्त्यावासाभिनीगमने कृच्छ्राब्दः।।

(वही० ध० सू० ३/५/३२)

३. अमत्या द्वादशरात्रः।।

(गौ० ध० सू० ३/५/३३)

४. उपक्यागमने त्रिरात्र (स्त्रिरात्रः)।।

(वही० ध० सू० ३/५/३४)

५. ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेग्नौ रक्षोदैवतं गर्दभं पशुमालभेत्।

(वसिष्ठ ध० सू० २३/१)

६. नैऋतं वा चरूं निर्वपेत्।।

(वही २३/२)

७. तस्य जुहुयात्कामाय स्वाहा कामकामाय स्वाहा नैर्ऋत्यै स्वाहा रक्षोदेवताभ्यः स्वाहेति ।।

(वही २३/३)

८. एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे दिवा स्वप्ने व्रतान्तरेषु वा समावर्त नात्।।

(वही २३/४)

सम्बन्ध करने वाले को सफेद बैल दान करना चाहिए।[१] ब्रह्मचारी जो गौ आदि के साथ दुष्कर्म करता है उसे शूद्र हत्या में कथित प्रायश्चित को करना चाहिए।[२] ब्रह्मचारी शव कर्म को करने पर व्रत से अपवित्रता से मुक्त हो जाता है।[३] माता-पिता से अन्य किसी के साथ भी शवकर्म में उपस्थित होने पर। यदि ब्रह्मचारी गुरु का झूठा भोजन करे तो वह किसी प्रकार की औषधी का प्रयोग कर सकता है यदि बीमार पड़ जाए तो किसी भी पदार्थ को औषधी के रूप में प्रयोग कर सकता है।[४]

ब्रह्मचर्य व्रत में गुरु के द्वारा लगाये हुए किसी भी कर्म को करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो चान्द्रायण आदि व्रत करे।[५] यदि ब्रह्मचारी उच्छिष्ट भोजन या मांस आदि का भक्षण करे तो उसके कृच्छ्र व्रत को करते हुए बारह रात्री तक शेष व्रत को करने से पाप से निवृति मिल सकती है।[६]

मनु के अनुसार ब्रह्मचर्य को भंग करने वाले किसी व्यक्ति के लिए प्रायश्चित विधान इस प्रकार है यदि ब्रह्मचारी मासिक श्राद्धान्न को खा लेता है और वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण जाति को हो तो उसे तीन दिन तक उपवास करना पड़ता है। एक दिन पानी में रहने पर पाप से छुटकारा पा सकता है।[७]

---

१. तिर्यग्योनित्यवाये शुक्लमृषभं दद्यात्।।

(वसि० ध० सू० २३/५)

२. गां गत्वा शूद्रावधेन दोषो व्याख्यातः।।

(वही २३/६)

३. ब्रह्मचारिणः शवकर्मणगो व्रतानिवृत्तिः।।

(वही २३/७)

४. स चेद्वाधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं संर्व प्राश्नीयात्।।

(वही २३/९)

५. गुरुप्रयुक्तश्चेन्म्रियेत त्रीन्कृच्छ्रांश्चरेद्गुरुः।।

(व० ध० सू० २३/१०)

६. ब्रह्मचारी चेन्मांसश्नीयादुच्छिष्टभोजनीयं कृच्छ्र द्वादशरात्रं चरित्वा व्रतशेषं समापयेत्।।

(वही २३/११)

७. मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः।
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके रसेत्।।

(मनु० ११/१५७)

जो ब्रह्मचर्यावस्था में रहना वाला द्विज किसी प्रकार अज्ञान व आपत्तिकाल में मधु का मांस का भक्षणं कर ले तो वह प्राजापत्य व्रत करके अपने शेष ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा करे।[१] मार्जार, कौवा, चूहा, कुत्ता, नेवला, इनका झूठा बाल और कीड़े आदि से दूषित भोजन को खाकर, उष्ण पानी पीकर पाप से मुक्त हो सकता है।[२]

याज्ञवल्क्य के कथनानुसार ब्रह्मचर्य अवस्था में व्रत को भंग करने वाले के लिए प्रायश्चित विधान इस प्रकार है। याज्ञवल्क्य के अनुसार ब्रह्मचारी किसी स्त्री का भोज करने पर अवकीर्ण हो जाता है वह निऋति, देवता के लिए गदहे द्वारा पशुयज्ञ करने पर शुद्ध हो जाता है।[३] बिना अस्वस्थता के सात दिन तक भिक्षाटन और अग्निकर्म छोड़ने पर **'कामावकीर्ण'** आदि **(कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा।)** इन दोनों मन्त्रों से दो आहुति करके **संमा सिंचन्तु मरुतः समिन्द्रः संबृहस्पतिः समायमग्निः सिंचन्तां यशसा ब्रह्मवर्चसेन''** मन्त्र से पुनः अग्नि की उपस्थान करे।[४]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार मधु और मांस खाने पर कृच्छ्र और अवशिष्ट व्रत करे। गुरु के विपरीत कार्य करने पर उन्हें प्रसन्न करने पर ब्रह्मचारी शुद्ध हो जाता है।[५]

---

१. ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मासं कथंचन।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशषं समापयेत्।।

(वही ११/१५८)

२. विडालकाकखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेंद् ब्रह्मसुवर्चलाभ्।।

(वही ११/१५९)

३. अवकीर्णा भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्।
गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुध्यति।।

(याज्ञ० ३/२८०)

४. भैक्षाग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमतातुरः।
कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम्।।

(वही ३/२८१)

५. उपस्थानं ततः कुर्यात्सं मा सिंचन्त्वनेन तु।
मधुमांसशने कार्यः कृच्छ्रः शेषव्रतानि च।।

(वही ३/२३२)

## (२) सन्यासी के लिए विहित प्रायश्चित विधान–

धर्मशास्त्रकारों के अनुसार जो व्यक्ति सन्यासी व्रत धारण करने के पश्चात् पुनः गृहस्थ हो जाता है तो उसके लिए संवर्त ने छः मासो का कृच्छ्र निर्धारित किया है। ऐसे व्यक्ति की प्रत्यवसित संज्ञा है। यम, वृहद्यम आदि ने प्रत्यवसतियों के नौ प्रकार दिये है यथा जो जल, अग्नि, उद्बन्धन (जिसके द्वारा वे अपनी हत्या कर डालना चाहते थे) वे बच निकले (लौट आये) है, वे जो सन्यास आश्रम से लौट आये है, या आमरण अनशन (उपवास) से हट गये है, जो विष प्रपात-पात, धर्णा (किसी के घर पर धरणा देने) से बच गये है (लौट चुके है), जो आत्महत्या के हेतु किसी शस्त्र के वार से बच गये है। ये ससर्ग के योग्य नहीं होते और इनकी शुद्धि चान्द्रायण या दो तप्त कृच्छ्रो से होती है।[१] जो सन्यासी पुनः गृहस्थी हो गये हो ऐसे व्यक्ति चाण्डाल माने जाते है। उन्होंने प्रायश्चित्त कर लिया हो तब भी और सन्यासच्युत हो जाने के उपरान्त उनकी उत्पन्न संतानों को चाण्डालों के साथ रहना चाहिए।

कर्मपुराण के अनुसार जो व्यक्ति सन्यासी होते है उनके लिए मृत्यु पर अशौच नहीं होता। याज्ञवल्क्य के अनुसार सन्यास के आश्रमों के विषय में या सन्यासियों के माता-पिता कि मृत्यु होने पर वस्त्र सहित स्नान मात्र से सन्यासी शुद्ध हो सकते है।[२]

जो सन्यासी लगातार दान कर्म में संलग्न रहते है या व्रतादि करते रहते है, केवल तभी आशौच नहीं लगता जबकि वे उन विशिष्ट कृत्यों में लगे रहते है किन्तु जब वे अन्य कर्मों में व्यस्त रहते है या अन्य लोगों के साथ दैनिक कर्म में संयुक्त रहते तब आशौच से मुक्ति नहीं मिलती है।[३]

---

१. जलाग्न्युद् बन्धनभ्रष्टाः प्रवज्यानाशकच्युताः। विषप्रतततनप्रायशस्त्रधतहताश्च ये।।
नवैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः चान्द्रायेण शुद्धयन्ति तप्त कृच्छ्रद्वयेन वा।।

(यम २२-२३, प्राय०सा०पृ०/१२६,)

२. याज्ञ० ३/२८ धर्मसिन्धु पृ ४४२

३. सत्रिणां व्रतिनां सत्रे व्रते च शुद्धिनं कर्ममात्रे संव्यवहारे वा............ब्रह्मविद्यतिः।
एतेषां च त्रयाणामाश्रमिणां सर्वत्र शुद्धिः। विशेषे प्रमाणाभावाद्।

(मिता० याज्ञ० ३-२८)

पाराशर के अनुसार सन्यासी व्रत का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए तथा तीर्थ यात्रा से ग्यारह वृषभ दान देने से व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। अर्थात् पाप से मुक्त हो जाता है।[1]

सन्यास व्रत से च्युति में विहित प्रायश्चित विधान कृच्छ्र चान्द्रायण आदि सन्यास आश्रम के उच्चादर्शो एवं लक्षण को पुनः प्राप्त करने में सहायक है। व्रत, तपश्चरण, जप आदि से ही सन्यास के आदर्शों से भ्रष्ट चित्त को पवित्र किया जा सकता है। इस प्रकार कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि प्रायश्चित विधानों को हम उपर्युक्त कह सकते है।

**–इति चतुर्थोध्याय–**

---

१. प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च।
वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्धयन्ति तेत्रयः।।

(पारा० १२/६)

ओ३म्

पंचम अध्याय

# प्रकीर्ण पापो के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन

पंचम अध्याय

# प्रकीर्ण पापों के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन

महापातक एवं उपपातक के पश्चात पंचम अध्याय में प्रकीर्ण पाप कर्मों के प्रायश्चित्त विधान का वर्णन किया है।

## (1) अग्निहोत्र न करने में प्रायश्चित्त विधान–

प्रमुख धर्मसूत्रों व स्मृतियों के अनुसार जो व्यक्ति अग्नि होत्र नहीं करते वे पापी माने जाते है। बौधायन के अनुसार जो व्यक्ति अग्निहोत्र न करने वाला हो अर्थात् अग्निहोत्र न करे वह व्यक्ति पाप से ग्रसित माना जाता है। यह अशुद्धि उत्पन्न करने वाला दुष्कर्म माना जाता है।[1]

बौधायन के मतानुसार अग्निहोत्र न करने वाले व्यक्ति को पाप से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित इस प्रकार करने चाहिए। बौधायन का कथन है कि प्रायश्चित दुष्कर्म की मात्रा के अनुसार बारह मास, बारह पक्ष, बारह-बारह दिनों की अवधि बारह छः दिनों की अवधि, बाहर तीन दिनों की अवधि, बारह दिन, छः दिनों, तीन दिन रात्रि या एक दिन व्रत करना होता है।[2]

इस प्रकार व्रत को करके व्यक्ति पाप से छुटकारा पा सकता है।

मनु के अनुसार जो अग्निहोत्र ब्राह्मण इच्छापूर्वक प्रातःकाल तथा सांयकाल अग्निहोत्र नहीं करे। वह व्यक्ति मनु के अनुसार वीर हत्या (पुत्र हत्या) के पापी व्यक्ति के समान होता है। इस पाप से छुटकारा पाने के लिए पापी को प्रायश्चित इस प्रकार करना चाहिए।[3]

मनु के अनुसार ऐसे व्यक्ति को पिपीलिका मध्य चान्द्रायण व्रत करना

---

१. द्यूतमभिचारोऽनाहिताग्नेरूञ्छवृत्तिता समावृतस्य भैक्षचर्या तस्य चैव गुरुकले वास ऊर्ध्व चतुर्भ्यो मासेभ्यतस्य चाऽध्यापनं नक्षत्रनिर्देशश्चेति।। (बौ० ध० सू० २/१/८)

२. तेषां तु निर्वेशो द्वादश मासान् द्वाद्वशाऽर्धमासान् द्वादश द्वाशाहान् द्वादश षडहान, द्वादश त्र्याहन् द्वादशाहं षडहं त्रयहमहोरात्रमेकाहमिति यथाकर्माभ्यासः।। (वही २/१/९)

३. अग्निहात्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारत।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत।। (मनु० ११/४१)

चाहिए।[१] याज्ञवल्क्य के अनुसार जो द्विज अग्निहोत्र त्याग दे वह पापी व्यक्ति बारहरात्री पर्यन्त कृच्छ्र व्रत का आचरण करे। इस पाप सम्बन्धी प्रायश्चित व्यवस्था में अग्नि त्याग के समय से अनुसार कठोर तथा सरल प्रायश्चितों का विधान किया है यदि दो मास से पूर्व अग्निहोत्र का त्याग किया है तो प्राजापत्य का आचरण करे, चार मास तक छोड़ने वाले व्यक्ति अति कृच्छ्र करे, छः मास तक अग्नि त्याग करने वाले 'पराक' व्रत का आचरण करें। छः मास से पूर्व त्याग करने वाला व्यक्ति उपपातकों में विहित प्रायश्चित्त का आचरण करे। एक वर्ष से ऊपर अग्निहोत्र न करने पर त्रैमासिक व द्विमासिक व्रत का आचरण करे।[२] वृद्ध हारीत के अनुसार एक वर्ष तक अग्नि होत्र न करने पर प्रायश्चित स्वरूप चान्द्रायण व्रत करके पुनः अग्निहोत्र करने का विधान किया है। दो वर्ष तक अग्निहोत्र का त्याग करने वाले के लिए सोमायन व चान्द्रायण व्रत का विधान किया है।[३] जो नास्तिकता के कारण अग्निहोत्र का त्याग करे उसे प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।[४]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात कि व्यक्ति को अग्निहोत्र संस्कार करना चाहिए यदि वह आलस्य या ज्ञानपूर्वक भी अग्निहोत्र नहीं करता तो वह व्यक्ति पाप से ग्रसित हो जाता है। और ऐसा व्यक्ति अपवित्र माना जाता है। व्रत आदि ऐसे कर्म है जो मनुष्य की अन्तरात्मा एवं चित की शुद्धि करते है और चित की शुद्धि होने पर ही मनुष्य आवश्यक कार्यों को ध्यान में रखता है अगर चित ही शुद्ध नहीं होगा तो व्यक्ति पवित्र कार्यों में प्रेरित किस प्रकार होगा। जैसे कहा भी गया है "जैसा खाये अन्न वैसा हो जाय मन" इस उक्ति से स्पष्ट है कि व्रत आदि जैसे कर्म को करके मनुष्य दुष्कर्म में प्रेरित होने से बच जाता है।

## (२) अपवाद करने में प्रायश्चित्त विधान–

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपवाद फैलाता है तो वह पापी माना जाता है।

---

१. एकैकं हासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेत्तत चान्द्रायणं स्मृतम्।।

(वही ११/२१६)

२. याज्ञवल्क्य पृ० ५८९।।

३. याज्ञवल्क्य पृ० ५८९

४. ते योऽग्निं त्यजति नास्तिक्यात्प्राजापत्यं चरेद् द्विजः इति।

(याज्ञ० पृ० ५९०)

जो व्यक्ति अपवाद करता है धर्मशास्त्र के अनुसार प्रायश्चित साधन प्राणायाम को नियम पूर्वक करके वह प्रस्तुत पाप से मुक्त हो जाता है।

धर्मशास्त्र के तृतीय भाग में स्पष्ट हैं कि यदि पाप के लिए कोई विशिष्ट प्रायश्चित निर्धारित न हो, तो उस पापी व्यक्ति को एक सौ प्राणायाम प्रायश्चित करके पाप से मुक्ति मिलती है[१] प्राणायाम का महत्त्व व विस्तार पूर्वक वर्णन प्रथम अध्याय के प्रायश्चित साधन में वर्णित किया गया है।

## (३) अनियमित ढंग से बातचीत में प्रायश्चित्त विधान—

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार अनियमित ढंग से बातचीत करने पर अनेक प्रायश्चित विधानों का वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य के अनुसार गुरु, पिता आदि श्रेष्ठ जनों को तू कहने पर (भर्त्सना करने पर) अथवा क्रोध से डांटने पर, उसके गले में वस्त्र बांधने पर प्रायश्चित स्वरूप शीघ्र उनके पैरों पर गिर उन्हें प्रसन्न करें।[२] इस प्रायश्चित कर्म को करने को करने से वह पाप से मुक्त हो जाता है।

पाराशर के अनुसार व्यक्ति को किसी से भी अनियमित ढंग से बातचीत नहीं करनी चाहिए। यदि व्यक्ति किसी से अनियमित ढंग से बातचीत करता है तो वह व्यक्ति इस तरह पापी माना गया है जैसे पानी में तेल का बिन्दु फैल जाता है।[३] उस पापी व्यक्ति को पाप से निवृति के लिए पाराशर के अनुसार ने चान्द्रायण व्रत, यव का भोजन, तुलापुरुष का दान, गौओं के पीछे चलना आदि पाप से मुक्त करने के साधन हैं।[४]

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि व्रत आदि का नियम से पालन करना साधारणतया गाय के मूत्र का भोग करना इन सबको करने पर व्यक्ति

---

१. धर्मशास्त्र का तृतीय भाग।।

२. गुरुं हुंकृत्य त्वंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः।
बद्ध्वा वा वाससा क्षिप्रं प्रसाद्योपवसेद्दिनम्।।

(याज्ञ० ३/२९१ पृ० ६०५)

३. आसनान्छयनाद्यानात्सम्भाषात्सहभोजनात्।
सङ्क्रामन्तीह पापानि तैल बिन्दुरिवाभ्यसि ।।७७।।

(पारा १२/७७)

४. चान्द्रायणं याज्ञकञ्च तुलापुरुष एच च।
गवाञ्चैवाऽनुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ।।७८।।

(वही १२/७८)

इन्द्रियों पर संयम कर लेता है और इन्द्रियों को वश में करने पर व्यक्ति किसी दुष्कर्म के लिए प्रेरित नहीं होता है।

## (४) व्रात्यता में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्र के अनुसार व्रात्यता की परिभाषा इस प्रकार है कि जो व्यक्ति उचित समय पर उपनयन संस्कार नहीं करता उसे व्रात्य या पतितसावित्रीक कहा जाता है। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार व्रात्यता की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है। मनु स्मृति के अनुसार यथा समय यज्ञोपवीत संस्कार से रहित ये तीनों वर्ण सावित्री से भ्रष्ट तथा शिष्टों से निन्दित होता व्रात्य कहलाता है।[१]

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ एवं स्मृतिकारों में मनु, याज्ञवल्क्य एवं पाराशर ने व्रात्यता में प्रायश्चित विधान इस प्रकार बतलाया है।

गौतम के अनुसार व्रात्यता से पतित व्यक्ति व्रात्यस्तोम यज्ञ करके भी (पुनः सवन करता है) पाप से मुक्त हो जाता है।[२]

वसिष्ठ के अनुसार उद्दालक व्रत को करना चाहिए इसका वर्णन इस प्रकार है दो मासों तक जौ की लपसी पर रहना चाहिए। एक मास तक दूध पर, आधे मास तक अभिक्षा पर आठ दिनों तक घी पर, छः दिनों तक बिना भिक्षा या बिना मांगे, तीन दिनों तक जल पर रहना चाहिए तथा एक दिन पूर्ण उपवास करके व्रात्यता के पाप से मुक्त हो सकता है।[३]

आपस्तम्ब ने भी वसिष्ठ व गौतम के मत का समर्थन किया।

मनु के अनुसार व्रात्यता अर्थात् उचित समय पर उपनयन संस्कार न करने की स्थिति में व्यक्ति को तीन कृच्छ्रों एवं पुनरूपनयन के सम्पादन की व्यवस्था की है।[४]

---

१. अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्यता भवन्त्यार्यविगर्हिताः।।३९

(मनु० २/३९/ पृ०/४६)

२. व्रात्यस्तोमैश्चेष्ट्वा।।८।।

(गौ० ध० सू० १९/८)

३. द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेन्मासं पयसार्धमासमाभिक्षायाष्टरात्रं घृतेन षडरात्रमयाचितेन त्रिरात्रं घृतेन षडरात्रमयाचितेन त्रिरात्रमब्भक्षोहोरत्रमुपवसेत् ।।७७।।

(वसिष्ठ ध० सू० ११/७७)

४. येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि।
ताश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनामयेत्।।

(मनु० ११/१९१)

पाराशर ने व्रात्यता में प्रायश्चित विधान स्पष्ट नहीं किया है।

धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के विवेचन से पता चलता है कि व्यक्ति का उचित समय पर उपनयन संस्कार न करने की स्थिति में पाप को भोगना पड़ता है इस पाप से मुक्त होने के लिए वह तीन कृच्छ्र करे जो कि कठोर है उन्हें करे अन्यथा पुनः उपनयन संस्कार करावे जिससे वह शुद्ध हो सकता है।

उपनयन संस्कार मूल रूप से शिक्षा से सम्बन्धित है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य शिक्षित होना चाहिए। इस उद्देश्य से इस संस्कार के पालन में इतने कठोर नियमों का प्रावधान किया गया है। जिससे सभी लोग शिक्षित हो। निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त रहे।

## (५) ऋणों को न चुकाने, में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी से धनादि ऋण लेता है और उसे चुकाने में असमर्थ होता है तो वह व्यक्ति पाप का भागी माना जाता है। दुष्कर्म जन्य पाप से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को प्रायश्चित करना पड़ता है।

धर्मशास्त्र के अनुसार ऋणों को न चुकाने जैसे पाप करके व्यक्ति प्राणायाम से शुद्ध हो सकता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में ऋणों को न चुकाने में प्रायश्चित विधान का वर्णन पृथक रूप से नहीं किया है।

प्राणायाम अर्थात इन्द्रियों पर संयम करके व्यक्ति दुष्कर्म से बच सकता है और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है।

## (६) परिवेदन में प्रायश्चित्त विधान–

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार परिवेदन अर्थात् बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटा भाई शादी करे ले या बड़ी बहन के अविवाहित रहते भाई शादी कर ले तो व्यक्ति पापी माना जाता है।

आपस्तम्ब, बौधायन, गौतम ने परिवेदन के लिए पृथक् रूप में प्रायश्चित विधान का वर्णन नहीं किया गया है।

वसिष्ठ धर्मसूत्रकार के अनुसार यदि कोई परिवेदन करता है तो उस परिविति को बारह रात तक कृच्छ्र व्रत का आचरण करके पुनः विवाह करते हुए प्रायश्चित करना पड़ता है। इस व्रत को नियम पूर्वक करके वह पाप से मुक्त हो

जाता है।[१]

पाराशर के अनुसार बड़े भाई के रहते हुए छोटे भाई के विवाह कर लेने पर परिवित्ति दो कृच्छ्र और कन्या एक कृच्छ्र का आचरण करे। कन्यादान करने वाला कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र व्रत का आचरण करे तथा चान्द्रायण व्रत करे।[२]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि स्मृतिकार एवं सूत्रकार दोनों ने ही कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत का विधान बताया है यदि मनुष्य इसको करता है तो वह परिवेदन जैसे पाप से मुक्त हो जाता है।

व्रत एक ऐसा प्रायश्चित विधान है जिस कर्म को करता हुआ व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर संयम करके तथा दुष्कर्मों में प्रेरित न होकर जब वह नियम पूर्वक व्रत का आचरण करता है तो वह व्यक्ति शुद्ध माना जाता है क्योंकि शास्त्रकारों ने व्रतादि क्रियाओं को तथा इनके पालन करने वाले व्यक्ति को पवित्र माना है तथा जब व्यक्ति व्रत को नियम से करता है तो वह दुष्कर्मों से हटकर पवित्र कर्म में लीन होकर अपने आप को शुद्ध कर लेता है।

## (७) नास्तिकता में प्रायश्चित्त विधान—

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जो व्यक्ति ईश्वर में आस्था नहीं रखता वह नास्तिक कहलाता है।

स्मृतिकार कहते है कि नास्तिक व्यक्ति को पापी माना जाता है। इस पाप से मुक्त होने के लिए भी व्यक्ति को प्रायश्चित करना पड़ता है। प्राणायाम एक ऐसा प्रायश्चित साधन है जिसे करने से व्यक्ति सभी अर्थात् प्रकीर्णक पापो से मुक्त हो जाता है।

षट्त्रिशन्मत का कथन है कि नास्तिकों को वस्त्र सहित जल में प्रविष्ट हो जाना चाहिए।[३]

---

१. परिवितिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत तां चैवोपयच्छेत्।

(वसिष्ठ २०/७)

२. द्वौ कृच्छ्रौ परिवितेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चान्द्रायण चरेत्।।

(पारा० ४/२६)

३. बौद्धान्पाशुपतांश्चैव लौकायतिकनास्तिकान्।
विकर्मस्थान् द्विजान स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत्।।

(प्राय० प्रक० पृ० ११० एवं स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० ११८)

याज्ञवल्क्य के अनुसार नास्तिक व्यक्ति को प्राप से मुक्त होने के लिए बारह रात्रि कृच्छ्र व्रत करने चाहिए।[१]

वसिष्ठ ने भी याावल्क्य के कथन का समर्थन किया है।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि कृच्छ्र अतिकृच्छ्र व्रत करने से तथा प्राणायाम को नियमपूर्वक करने से व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

## (८) जो व्यक्ति अयज्ञीय हो, उनके पुरोहित करने में प्रायश्चित्त विधान–

प्रमुख धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार जो व्यक्ति यज्ञ करने के अधिकारी न हो, ऐसे व्यक्तियों को पुरोहित बनना या यज्ञ कर्म कराने में सहायक हो ऐसे व्यक्ति को भी पापी माना गया है। अतः उस व्यक्ति को पाप से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है।

आपस्तम्ब, बौधायन, वसिष्ठ ने अपवित्र व्यक्तियों के पुरोहित बनने में प्रायश्चित विधान का वर्णन पृथक रूप से नहीं किया है।

गौतम के कथनानुसार जो व्यक्ति यज्ञ करने के अधिकारी न हो उनका पुरोहित बनने में व्यक्ति पाप से युक्त माना जाता है। अर्थात् पापी माना जाता है। यदि ऐसे लोगों के लिए वैदिक मन्त्रों का करें, जिनके लिए उनका प्रयोग वर्जित हो तो उन प्रयुक्त मन्त्रों में एक सहस्र शब्द हो तो ऐसे व्यक्ति को एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने पर पाप से मुक्ति मिलती है।[२]

मनु के अनुसार जिनका यज्ञ नहीं करना चाहिए अर्थात् जिनका यज्ञ कराना निषिद्ध है। निषिद्ध का यज्ञ कराने पर या उनका पुरोहित बनने पर, इस व्यक्ति को जप और तप करने ही पाप से मुक्ति मिलती है।[३] अथवा ब्राह्मण तीन सहस्र गायत्री जपकर तथा एक मास तक गोशाला में केवल दुग्धाहार कर असत्य

---

१. नास्तिकः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा विरमेन्नास्तिक्यान्नास्तिकवृतिस्त्वतिकृच्छ्रम् इति।

(याज्ञ० पृ० ५७७)

(वसिष्ठ ध०सू० २१/२९-३०)

२. प्रतिषिद्धमन्त्रयोगे सहस्रवाकश्चेत्।।

(गौ० ध० सू० ३/४/३३)

३. यद् गार्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्।
तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च।।

(मनु० ११/१९३)

प्रतिग्रह के दोष से छूट जाता है।[1] जो पात्र अशुद्ध है अर्थात् जो यज्ञ के अधिकारी नहीं है एक दिन में सम्पन्न होने वाले याज्ञ ईषस्य तथा तीन कृच्छ्र व्रत के आचरण से एतत जन्य पाप से मुक्त होता है।[2]

याज्ञवल्क्य के अनुसार जो सावित्री पतितों का यज्ञ कराता है वह प्राजापत्य प्रवृति तीन कृच्छ्र व्रतों का आचरण करें।

शातातप ने इस प्रसंग में उद्दालत व्रत का वर्णन किया है। यदि ज्ञानपूर्वक इच्छा अनुसार किया है तो तीन मास तक अज्ञानपूर्वक किया है तो एक मास तक इस व्रत का आचरण करे। यम ने इस प्रसंग में कहा है स्नेह वश या अर्थालोप के कारण शूद्रो का यज्ञ कराता है उसको कृच्छ्र व्रत का आचरण करना चाहिए।[3]

याज्ञवल्क्य के अनुसार व्रात्य को यज्ञ कराने वाला व्यक्ति पाप से मुक्त होने के लिए तीन कृष्छ्र व्रत का आचरण करे।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति यज्ञ करने के अधिकारी न हो ऐसे व्यक्तियों का यज्ञ आदि कर्म कराने वाले व्यक्ति भी पापी माने जाते है। इस दुष्कर्म जन्य पाप से मुक्त होने के लिए सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने वेद मन्त्रों तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके, कृच्छ्र व्रत करे, सावित्री आदि जप से इन सभी पवित्र कर्मों को करके व्यक्ति पाप से छुटकारा पा सकता है यदि वह पाप से मुक्त होना चाहे तो वेद मंत्रों का उच्चारण करे। जो पवित्र माने गये है उससे अपने चित्त की शुद्धि कर सकता है।

## (९) कुटिलता में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार जो व्यक्ति बात को साधारण रूप

---

१. जपित्वा त्रीणि सवित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्येतऽसत्प्रतिग्रहात्।।

(मनु० ११/१९४)

२. व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति।।

(मनु० ११/१९७)

३. पूर्वोधः सुतवर्णस्य ब्राह्मणों या प्रवर्तते।
स्नेहात अर्थप्रसंगात वा तस्य कृच्छ्रो विशोधनम्।।

(याज्ञ० ५८८)

में न कहकर घुमा फिरा कर कहे या ठीक ढ़ंग से वर्णित न करे ऐसी क्रिया को सूत्रकार एवं स्मृतिकारों ने कुटिलता माना है। अगर व्यक्ति कुटिल है तो भी वह पापी माना जाता है। इस पाप से छुटकारा पाने के लिए उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

धर्मशास्त्र के अनुसार जिन पाप के प्रायश्चित्त का वर्णन स्पष्ट तथा पृथक् रूप से नहीं किया है ऐसे पापों से मुक्त होने के लिए प्राणायाम नामक प्रायश्चित्त साधन पाप के अनुसार करके व्यक्ति शुद्ध हो सकता है। अर्थात् पाप से मुक्त हो सकता है।

धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने कुटिलता में प्रायश्चित्त का वर्णन पृथक तथा स्पष्ट रूप से नहीं किया है।

## (१०) केवल स्वनिमित्त भोजन बनाने में प्रायश्चित्त विधान–

प्रमुख धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति केवल अपने लिए ही भोजन पकाता है तो वह व्यक्ति भी प्रकीर्ण पापी माना जाता है। प्रकीर्णक होने पर वह प्रायश्चित्त को करके ही पाप से मुक्त हो सकता है।

धर्मशास्त्र के अनुसार व्यक्ति पाप के अनुसार प्राणायाम करके अपने को शुद्ध कर सकता है। क्योंकि सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने केवल स्वनिमित्त भोजन बनाने में प्रायश्चित विधान स्पष्ट रूप से नहीं किया है।

## (११) असत्य बोलने में प्रायश्चित्त विधान–

आपस्तम्ब के अनुसार असत्य भाषण करना भी वर्जित कहा है। यदि व्यक्ति असत्य भाषण करता है तो तीन दिन तक दूध, मसाले और नमक के भोजन का परहेज करे। इससे वह शुद्धि को प्राप्त कर सकता है।[1]

गौतम के अनुसार दोष देकर भर्त्सना करने पर, झूठ बोलने पर व्यक्ति की तीन दिन-रात का व्रत करने से पाप से निवृत्ति होती है।[2]

मनु के अनुसार असत्य कहने वाले व्यक्ति को कुष्माण्ड मन्त्र **'यद्देवा देवहेडनम्'** से वा वरुण देवता को **'उदुत्तमं वरुणपाशम'** मन्त्र से अथवा जल है।

---

१. अनाक्रोश्यमाक्रुश्याऽनृतं वोक्त्वा त्रिरात्रम क्षीराक्षारलवणभोजनम्।
(आप० ध० सू० १/९/३)

२. आक्रोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः।।
(मनु० ३/५/२७)

देवता जिसका ऐसे **'आपो हिष्ठा मयो भुवः'** मन्त्र से विधि पूर्वक अग्नि में हवन करें।[१]

याज्ञवल्क्य के अनुसार ईर्ष्या वश दूसरे पर झूठे ही दोष कहने वाला तथा वास्तविक दोष को भी कहने वाला इन दोनों को दूना दोष लगता है। मिथ्या दोष कहने वाला न केवल दुगने दोष से युक्त होता है अपितु जिस पर दोष लगता है उसके सभी पाप उसे लग जाते है।[२] जो असत्य भाषण करता है वह एक मास तक जल पीकर रहे जप करता रहे और इन्द्रियों का सम्यक् रूप से संयम रखे।[३]

पाराशर के अनुसार झूठ बोलने पर दाहिने कान का स्पर्श करे। इस क्रिया को करने पर भी व्यक्ति पाप से मुक्त हो सकता है।[४]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति को असत्य भाषण नहीं करना चाहिए। क्योंकि असत्य भाषण से भी व्यक्ति पापी माना जाता है। मंत्र से इन्द्रियों पर संयम करे, जल पीकर, तथा क्षमा स्वरूप कान स्पर्श करके वह व्यक्ति गलती का एहसास करता हुआ पाप से मुक्त हो जाता है।

## (१२) जाति भ्रशंकर कर्मों में प्रायश्चित्त विधान—

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जाति भ्रंश करने वाले भिन्न कर्मों का वर्णन इस प्रकार किया है मनु स्मृति के अनुसार ब्राह्मण को (डण्डा या थप्पड़ आदि से) पीड़ित करना (मारना) न सूंघने योग्य (लहसुन, प्याज, विष्ठा आदि) वस्तु तथा मद्य को सूंघना, कुटिलता और गुदा या मुख में मैथुन करना ये (प्रत्येक कर्म)

---

१. कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद् घृतमग्नौ यथाविधि।
उदित्यृचा वा वारुण्या तृचेनाब्दैवतेन वा।।

(मनु० ८/१०६)

२. मिथ्याभिशंसिनो दोषो द्विः समो भूतवादिनः।
मिथ्याभिशस्तदोषं च समादत्ते मृषा वदन्।।

(याज्ञ० ३/२८४)

३. महापापोपपापाभ्यां योऽभिशंसेन्मृषा परम्।
अब्भक्षो मासमासीत स जापी नियतेन्द्रियः।।

(याज्ञ० ३/२८५)

४. क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाऽनृते।
पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्।।

(पारा० ७/३७)

मनुष्य की जातिभ्रष्ट करने वाले है।[१] धूर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जाति भ्रंशकर कर्मों के लिए प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है मनु स्मृति के अनुसार जाति भ्रंशकर कर्मों में से किसी एक को ज्ञानपूर्वक करने वाला मनुष्य सान्तपन कृच्छ्र तथा अज्ञानपूर्वक करने वाला प्राजापत्य व्रत को करे।[२]

याज्ञवल्क्य के अनुसार गदहे से खींची जाने वाली सवारी अथवा ऊंट गाड़ी पर चढ़ने से निवस्त्र स्नान करके तथा दिन में स्त्री संभोग जैसे जातिभ्रंश कर्म करके जल में प्रवेश करे। प्राणायाम करने एवं स्नान करने से पाप से शुद्धि होती है।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि यदि कोई व्यक्ति जाति भ्रंशकर कर्मों को करता है वो व्यक्ति पापी माना जाता है। क्योंकि वह व्यक्ति अपने को जाति से संबंधी उचित क्रियाओ को करके उनका उल्लंघन करता है। व्रत आदि जो पवित्र क्रिया है जिसमें मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर संयम कर लेते है तथा इनमें मन की शुद्धि हो जाती है इन्हीं क्रियाओं से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है।

## (१३) संकरीकरण तथा अपात्रीकरण कर्मों में प्रायश्चित्त विधान—

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार संकरीकरण तथा अपात्रीकरण कर्मों की गणना इस प्रकार है मनु के अनुसार गधा, कुत्ता, मृग, हाथी, अज, भेड़, मछली, सांप और भैंसा, इनमें से प्रत्येक को मारना भी मनुष्य को वर्णसङ्क्र् करने वाला है।[४] मनु के मत से जिससे दान नहीं लेना चाहिये उससे लेना, व्यापार, शूद्र की सेवा

---

१. ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः।
जैहभ्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्।।

(मनु० ११/६७)

२. जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया।।

(मनु० ११/२४)

३. प्राणायामी जले स्नात्वा खरयोनोष्ट्रयानगः।
नग्नः स्नात्वा च भुक्त्या च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम्।।

(याज्ञ० ३/२९०)

४. खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहियहिषस्य च।।

(मनु ११/६८)

और असत्य बोलना (प्रत्येक) मनुष्य को अपात्र करने वाला होता है।[१]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में इन दुष्कर्मों से मुक्ति के लिए अनेक प्रायश्चित्तों कर्मों का विधान किया गया है। इनका वर्णन चतुर्थ अध्याय में प्रस्तुत है।

मनु के अनुसार ज्ञानपूर्वक संकरीकरण तथा अपात्रीकरण कर्मों में से किसी एक कर्म को करने वाला एक मास तक चान्द्रायण व्रत करे और अपात्रीकरण कर्मों में से किसी एक कर्म को करने वाला तीन दिन तक गर्म यवागू (लपसी) खावे।[२]

संकरीकरण एवं अपात्रीकरण कर्मों में प्रायश्चित्त विधान का वर्णन चतुर्थ अध्याय में विस्तार से किया गया है। उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्रतादि पवित्र क्रियाओं को करके मनुष्य का चित शुद्ध हो जाता है और चित की शुद्धि होने से व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

## (१४) सूर्योदय व अस्तकाल में सोने में प्रायश्चित्त विधान—

आपस्तम्ब के मतानुसार व्यक्ति को सूर्योदय तथा सूर्य के अस्त होने के समय नहीं सोना चाहिए। यदि कोई सूर्य के उदय होने पर सोता रहे तो वह पापी माना जाता है और उस पाप की निवृति के लिए उस व्यक्ति को उस दिन उपवास करते हुए मौन रहकर दिनभर खड़ा रहना चाहिए।[३]

आपस्तम्ब के कथनानुसार यदि सूर्यास्त के समय व्यक्ति सोता रहे तो बिना भोजन किए हुए मौन रहकर बैठे हुए ही रात्रि व्यतीत करे। दूसरे दिन स्नान करे और स्नान के बाद बोलने पर वह शुद्ध हो जाता है।[४]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार सूर्य उदय व अस्त काल में सोने में

---

१. निन्दितेभ्यों धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम्।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्।। (मनु ११/९९)

२. संङ्करापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम्।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यवकैस्त्रयहम्।। (मनु० ११/१२५)

३. स्वपन्नभ्युदितो नाश्वान्वाग्यताऽहस्तिष्ठेत्।। (आप० २/५/१४)

४. स्वपन्नभिनिम्रुक्तो नाश्वान् वाग्यतो रात्रिमासीत्
श्वोभूत उदकमुपस्पृश्य वाचं विसृजेत्।। (वही २/५/१३)

प्रायश्चित विधान इस प्रकार है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार सूर्य उदय के समय सोते रहने पर ब्रह्मचारी दिनभर मौन रहकर उपवास करते हुए खड़ा रहे और सूर्यास्त के समय सोने पर रात्रि भर गायत्री मंत्र का जप करता हुआ एक ही स्थान पर खड़ा रहे।[१] इस प्रायश्चित्त को करने पर व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

स्मृतिकारों ने प्रस्तुत पाप से मुक्त होने के लिए पृथक रूप से प्रायश्चित्त वर्णन नहीं किया है।

उपर्युक्त विवचेन से ज्ञात होता है कि खड़ा होकर व्यक्ति को थकावट होगी और न बोलने से परेशानी दोनों कि ऐसी क्रिया है जो दैनिक कर्मों में सहायक होती है तथा इन क्रियाओं से व्यक्ति परेशान होकर अपने दुष्कर्म से जन्य पाप से मुक्त हो जाता है।

## (१५) जलादि को मलमूत्र से दूषित करने में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जल आदि को मलमूत्र आदि से दूषित करने पर अनेक प्रायश्चित्तों का वर्णन इस प्रकार है। मनुस्मृति के अनुसार मल-मूत्र त्याग करने के वेग से मनुष्य जलरहित हो (पास में जल नहीं ले) कर या जल में मल-मूत्र त्याग करके वस्त्र सहित स्नान कर गांव के बाहर गौ का स्पर्श कर मनुष्य शुद्ध होता है।[२]

धर्मसूत्रकारों एवं पराशर, याज्ञवल्क्य स्मृतिकारों ने पृथक् रूप से जल आदि को मल-मूत्र से दूषित करने में प्रायश्चित्त वर्णन नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति पाप से मुक्त होता है कि उसे प्रायश्चित्त करना ही पड़ता है चाहे वह महापातक हो या प्रकीर्णक जल जिस पर सृष्टि की रचना सहायक है। जल पंचतत्वों में से एक है। जिस पर मनुष्य है ही नहीं अपितु, संसार के सभी प्राणी निर्भर है ऐसे तत्व को अपवित्र करके अर्थात् मल-मूत्र से दूषित करके व्यक्ति पापी नहीं होगा तो और क्या व्यक्ति को गौ जैसे पवित्र

---

१. सूर्याभ्युदितो ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुञ्जानाऽभ्यस्तमितश्च रात्रिं जपन्सावित्रीम्।।
(गौ० ध० सू० ३/५/२१)

२. विनादि्भरप्सु वाप्यार्तः शरीरं सन्निवेश्य च।
सचैलो वहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति।।
(मनु ११/२०२)

जानवर का स्पर्श एवं जल में स्नान करने से या जल के त्याग करने पर, जल से विहीन होकर ही पाप से मुक्ति मिलती है।

## (१६) जल आदि में नग्न स्नान करने में प्रायश्चित्त विधान–

मनु के अनुसार जल में नग्न स्नान करना वर्जित है यदि कोई व्यक्ति जल में नग्न स्नान करता है तो वह पापी माना जाता है। वह व्यक्ति प्राणायाम करके शुद्धि को प्राप्त होता है।[1]

याज्ञवल्क्य के अनुसार जल में नग्न स्नान करने पर व्यक्ति अशुद्ध माना जाता है। इस अशुद्धि से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को जल में प्रवेश करके प्राणायाम करने एवं स्नान से शुद्धि मिलती है।[2]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि सूत्रकारों ने जल आदि में नग्न स्नान करने में प्रायश्चित्त विधान स्पष्ट नहीं किया है। व्यक्ति प्राणायाम, अर्थात् इन्द्रियों को वश में करने से ही पाप से मुक्त हो सकता है।

## (१७) वृक्ष आदि के काटने में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों के अनुसार जो व्यक्ति वृक्षों को काटता है वह भी पापी माना जाता है। धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों के अनुसार पापी व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है।

वसिष्ठ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति 'आम' , 'पनस' आदि वृक्ष गुल्म, लता को यज्ञों एवं कृषि के उपयोग में लाने के अतिरिक्त काटता है तो वह पाप का भागी होता है इस पाप से मुक्त होने के लिए वह पापी व्यक्ति वैदिक मंत्रों का जप करे। इस प्रायश्चित्त विधान से वह पाप से मुक्ति पा सकता है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार वृक्ष गुल्म, लता और विरवा काटने पर पापी मनुष्य के लिए अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त विधान इस प्रकार है। याज्ञवल्क्य के अनुसार (बिना यज्ञ कार्य के) वृक्ष, गुल्म, लता और विरवा आदि काटने पर

---

१. उष्ट्रयानं समारूहा खरयानं तु कामतः।
स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुध्यति।।

(मनु० ११/२०१)

२. प्राणायामी जले स्नात्वा खरयानोष्ट्रयानगः।
नग्नः स्नात्वा च भुक्त्वा च गत्वा चैव दिवा स्त्रियम्।।

(याज्ञ० ३/२९०)

गायत्री आदि ऋचा का सौ बार जप करें।[१]

मनु ने भी इसी प्रकार कथन किया है कि फल देने वाले (आम, जामुन, आदि के) पेड़, गुल्म (गुडूची आदि), वल्ती पेड़ की डालियों पर चढ़ी हुई लता और फूली हुई (कद्दू काशी फल आदि) बेल के काटने पर सावित्र्यादि ऋक् शत का जप करे।[२] इस प्रायश्चित्त को करके पापी पाप से मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि वृक्ष आदि के काटने जन्य पाप से मनुष्य जप आदि क्रिया करके व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

## (१८) औषधियों को व्यर्थ काटने में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों के अनुसार जो व्यक्ति औषधियों को व्यर्थ में काटतें है वह व्यक्ति पापी माने जाते है।

धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकार कहते है कि फल वाले वृक्षों को, गुल्म के गुड़ची आदि लताएं जो औषधि में प्रयोग की जाती है उन्हें काटने पर व्यक्ति पापी माना जाता है। उसे पाप से मुक्त होने के लिए उस प़र युक्त कूष्माण्ड आदि के छेदन जन्य प्रायश्चित्त हेतु[३] उदुम्बर (गुलर) आदि मोहवा आदि वृक्ष के छेदन में घृत प्राशन से अभिमुख हो जाता है। कर्षण से उत्पन्न वन आदि औषधि तथा वन में स्वयं नीवार आदि का निष्प्रयोजन छेदन में क्षुब्ध से व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।

इन उपायों से ज्ञान-अज्ञान में औषधियों वृक्ष लता आदि के छेदन जन्य पाप से व्यक्ति घृत प्राशन से, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र व्रत को करने से व्यक्ति पाप से मुक्त हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्रत आदि को नियम पूर्वक करके

---

१. वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम्।

(याज्ञ० पृ० ५६४ ३/२७६)

२. फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरूधाम।।

(मनु० ३/१४२)

३. फलदानामाम्रादीनां वृक्षणां, गुल्मानां कुब्जकादीनां, वल्लीनां गुहूच्यादीनां, लतानां वृक्षशाखासक्तानां, पुष्पितानां च वीरूधां कूष्माण्डादीनां प्रत्येकं छेदने पाप प्रमोचनार्थ सावियादि ऋकृशतं जपनीयम्।

(मनु० पृ० ४५२)

औषधि आदि को व्यर्थ में काटने से जन्य पाप से मुक्त हो सकते है।

## (१९) आक्रोश में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार आक्रोश करने पर पापी को प्रायश्चित करने के विधान इस प्रकार है। गौतम के मत से पापी व्यक्ति आक्रोश करने पर तीन दिन रात का व्रत करे।[१] और यदि आक्रोश सत्य हो तो मनु के वरुण सूक्तों का उच्चारण करते हुए होम करें।[२]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार व्यक्ति अगर जिस व्यक्ति के ऊपर किसी पकार आक्रोश नहीं करना चाहिए ऐसे पूज्य व्यक्ति पर आक्रोश करने वाला, (छोटी बात पर) असत्य भाषण करने वाला तीन दिन तक दूध मसाले और नमक का भोजन का परहेज करे।[३] अगर वह पाप कोई शूद्र वर्ण वाला व्यक्ति करता है तो वह सात दिन तक उपवास करें।[४] इसी प्रकार पापी स्त्रियों को भी शूद्र वाला ही प्रायश्चित्त करना चाहिए। जिसने वह पाप से मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि मसाले आदि के त्याग से भी मनुष्य का चित शुद्ध हो जाता है क्योंकि कहा गया है कि "जैसा खाये अन्न वैसा होता है मन" से स्पष्ट होता है कि सादे भक्षण से मनुष्य का मन पवित्र रहता है।

## (२०) स्वप्नदोष में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार स्वप्न दोष में प्रायश्चित विधान इस प्रकार है। याज्ञवल्क्य के अनुसार स्वप्न दोष होने पर **"यन्मेऽद्य रेतः पृथिवीमस्कन् पुनर्मामैत्विन्द्रियम्"** इन मंत्रों से वीर्य का अभिमन्त्रण करे और उससे दोनो छाती, और भौहों के मध्यभाग का कनिष्ठिका अंगुली द्वारा स्पर्श करे।[५] पापी व्यक्ति इस

---

१. आक्रोशनृंतहिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः।

(गौतम ध० सू० ३/५/२७)

२. सत्यवाक्ये वारुणीमानवीर्भिर्होमः।।

(गौ० ध० सू० ३/५/२८)

३. अनाक्रोश्यमाक्रुश्याऽनृतं वोक्त्वा त्रिरात्रमक्षीराक्षारलवण भोजनम्।

(आप० ध० सू० १/९/३)

४. शूद्रस्य सप्तरात्रमभोजनम्।।

(आप० ध० सू० १/९/४)

५. यन्मेऽद्य रेत इत्याभ्यां स्कन्नं रेताऽभिमन्त्रयेत्।
स्तनान्तरं भ्रुवोर्मध्यं तेनाऽनामिकया स्पृशेत्। (याज्ञ० ३/२७८)

प्रायश्चित को करने से पाप से मुक्त हो जाता है।

गौतम के अनुसार यदि कोई व्यक्ति भय या रोग के कारण (बिना ज्ञान के) अथवा स्वप्न दोष में वीर्य स्खलन होने पर तथा सात दिन तक अग्निकर्म एवं भिक्षाचरण करेन पर ब्रह्मचारी घृत का होम करे अथवा **'रेतस्य'** आदि मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि में दो समिधाएं रखे। इससे पापी पाप से मुक्त हो जाता है।[१]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति जाग्रतावस्था में ही नहीं बल्कि स्वप्न में भी पाप कर सकता है इनसे मुक्त होने के लिए व्यक्ति उंगलि एवं मन्त्रों के उच्चारण से, अग्निकर्म से, भिक्षाचरण से, घृत होम आदि के करने से पाप से मुक्त हो जाता है।

## (२१) जल में अपनी छाया को देखने में प्रायश्चित्त विधान–

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के अनुसार जल में पड़ी हुई अपनी छाया को देखने का प्रायश्चित इस प्रकार है। याज्ञवल्क्य के अनुसार जल में पड़ी हुई अपनी छाया को देखकर **'तेज इन्द्रियम'** मंत्र का जप करें।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि मन्त्रों आदि के उच्चारण से वाणी ही नही बल्कि व्यक्ति का मन तथा अन्तःकरण भी शुद्ध होता है। और चित्त की शुद्धि होने पर व्यक्ति दुष्कर्म करनके लिए प्रेरित नही होता और दुष्कर्म जन्य पाप से शुद्ध हो जाता है।

**–इति पंचमोध्याय–**

---

१. रेतः स्कन्दने भये रोगे स्वप्नेऽग्नीन्धनभैक्षणचरणानि सप्तरात्रकृ (त्रंकृ) त्वाऽऽज्यहोमः समिधो वा रेतस्याभ्याम्।।

(गौ० ध० सू० ३/५/२०)

ओ३म्

# उपसंहार

# उपसंहार

**प्रथम अध्याय में** वैदिक संहिताओं एवं प्रमुख धर्मसूत्रों व स्मृतियों में प्रायश्चित के स्वरूप का वर्णन किया गया है। प्रायश्चित शब्द के विविध अर्थों में वैदिक साहित्य में दो शब्द प्रयुक्त हुए है। प्रायश्चित्ति एवं प्रायश्चित्त दोनों का अर्थ भी एक ही है। प्रायश्चित्ति शब्द प्रायश्चित्त शब्द से अधिक प्राचीन है। अनेक प्रायश्चित ग्रन्थों में प्रायश्चित शब्द का अर्थ 'प्रयत' अर्थात् पवित्र एवं 'चित्त' का अर्थ 'नाश कर देता है'। अर्थात् मन की शुद्धि ही प्रायश्चित शब्द का अर्थ है।

वैदिक संहिताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रायश्चित तीन प्रकार के होते है व्यक्तिगत, सामाजिक एवं न्याय परिषद् सम्बन्धी। कुछ ऐसे अपराध जिनकी जानकारी न तो समाज को होती है न ही राज्य व्यवस्था को। इस अपराध ा से सम्बन्धित व्यक्ति ही शास्त्र मर्यादा अनुसार उसका प्रायश्चित ईमानदारी से करके उस अपराध या पातक से उपरति प्राप्त करने में अपना कर्त्तव्य समझता है। वैदिक संहिताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रायश्चित व्यवस्था राज्य के ओर से संचालित थी। आगे चलकर यह प्रायश्चित दण्ड के रूप में विकसित हुआ। वैदिक संहिताओं में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ने माना है कि प्रायश्चित न करने से पापी को भविष्य में दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है। प्रायश्चित्त अर्थात् पाप के अनुसार उसका दण्ड भुगतने से ही मनुष्य पाप से मुक्त हो सकता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायश्चित के सम्बन्ध में कहा है कि चाहे पाप अवगत हो या अनवगत, उसका प्रायश्चित अवश्य ही करना पड़ता है। प्रायश्चित का उद्देश्य ही है कि समस्त वर्णों की स्त्रियों की तथा पुरुषों की प्रतिष्ठा एवं मर्यादा बनी रहे और समाज में सभी शान्ति पूर्वक रह सकें।

विभिन्न आरण्यकों में भी दुष्कर्म जन्य पाप से निवृत्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रायश्चित को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रायश्चित न करने पर मनुष्य को पाप से मुक्ति नहीं मिलती।

उपनिषदों के विवेचन से ज्ञात होता है कि नियमानुसार विधि विधान पूर्वक दृढ़ निश्चयी होकर प्रायश्चित का आचरण किया जाये वही प्रायश्चित्त पापशोधक होता है।

प्रमुख धर्मसूत्रों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में प्रायश्चित्तों के जन साधारण में बड़ी महत्ता थी। यदि शिष्ट उचित पापों में विहित प्रायश्चित को जानते हुए उचित निर्णय नहीं देते थे तो पापी के प्रायश्चित के उपरान्त शेष पाप उन्हें भोजना पड़ता है।

प्रमुख स्मृतिकारों के अनुसार पापकृत्य के फलस्वरूप सम्यक् प्रायश्चित न करने से परम भयावह कष्टकारक यातनाएं किसी भी समय, जन्म या योनि में भोगनी पड़ती है। प्रायश्चित के आचरण से व्यक्ति का अन्तः करण शुद्ध होकर पुनः सन्मार्गोंन्मुख होता है। एवं पाप जन्य कष्टों से मुक्त होता है।

**इस अध्याय** में प्रायश्चित्त विधान सम्बन्धी साधनों का विवेचन किया गया है। जो कर्मवासना या बन्धन का कारण बनते है ऐसे संस्कारों को दूर करना ही, मन को परिष्कृत करना ही **अनुताप** नामक प्रायश्चित्त साधन का लक्ष्य है।

**दूसरा प्राणायाम** चितवृत्ति को शान्त करने में श्रेष्ठ साधन है। इसके अनुष्ठान से दूषित वृत्तियां शान्त होकर, चित्त निर्मल होता है।

**'तप'** नामक साधन से अर्थात् तप साधनों के अनुष्ठान से व्यक्ति **'मनसा वाचा कर्मणा'** पवित्र होकर पाप से मुक्त होता है।

**'होम'** नामक कर्म से व्यक्ति का चित्त एकाग्र होता है। इससे सृष्टि में सभी देवताओं का, प्राकृतिक शक्तियों का तर्पण होता है। ब्राह्मण वर्णों में उत्तम होम करने से ही सभी पाप से मुक्त हो जाता है।

**'जप'** नामक प्रायश्चित्त से बिना जाने किये गये पापों का मार्जन प्रार्थना के रूप में वैदिक वचनों के 'जप' करने से हो जाता है। किन्तु अगर पाप ज्ञान पूर्वक होत्ते है उनका मार्जन प्रायश्चित्त से ही होता है। जप उच्चभूमि पर परमात्मा का ध्यान है और उसकी एकता का प्रयत्न है।

**दान** नामक प्रायश्चित्त साधन पाप का क्षय करने वाला होता है। जीविकावृत्ति के लिये या वृत्ति के भरण पोषण से परेशान व्यक्ति जब कोई पाप कर बैठता है तो वह दान नामक कर्म से पवित्र हो जाता है। दान तभी दुष्कर्म के फल से मुक्त करता है जब दान कर्त्ता व दान प्राप्त करने वाले दोनों ही व्यक्ति उचित हो। दान देने वाले को श्रद्धापूर्वक दान करना चाहिए।

**व्रत** नामक प्रायश्चित्त साधन अर्थात् पाप से मुक्ति दिलाने में किस

प्रकार सहायक है इनका विवेचन सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने विस्तार पूर्वक किया है। चान्द्रायण व्रत का विधान मुख्यतः आहार नियंत्रण पर है। निराहार से चित्त शुद्धि एवं विषय निवृत्ति होती है। इस प्रकार यह व्रत प्रायश्चित्त कर्म में परम सहायक है।

**देवकृच्छ्र व्रत** २१ दिनों तक चलता है। दूध, दही, घी, शाक, यावक (जौ की लपसी) यवागू (मांड) आदि सात दिनों तक सेवन करने पर प्रायश्चित्त में सहायक होता है। इसी प्रकार प्रायश्चित्त में अनेक प्रकार के कृच्छ्र व्रतों का स्वरूप प्रायश्चित्त कर्म में सहायक है। कृच्छ्र व्रत करने वाला पतित व्यक्ति पवित्र एवं अपने वर्ण का कर्म करने योग्य बन जाता है। कृच्छ्र व्रत **'सान्तपन'** नामक चाण्डाल तक को शुद्ध कर देता है। ऐसा शास्त्रकारों का मत है।

**—इति उपसंहार—**

# संकेत सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अर्थवेद भाष्य | — | अथर्व. भा. |
| 2. | अथर्ववेद संहिता सायण भाष्य | — | अथर्व. सं. |
| 3. | अथर्ववेद हिन्दी भाष्य | — | अथर्व. हि. भा. |
| 4. | अमर कोष | — | अमर. |
| 5. | आपस्तम्ब धर्म सूत्र | — | आप. ध. सू. |
| 6. | आपस्तम्ब धर्मसूत्र ध्वनितार्थ कारिका त्रिकाण्डमण्डल | — | आप. ध. ध्वनि. |
| 7. | आपस्तम्ब गृह्य सूत्र | — | आप. गृ. सू. |
| 8. | आपस्तम्ब प्रायश्चित्तशतद्वयी | — | आप. प्राय. |
| 9. | आपस्तम्ब स्मृति | — | आप. स्मृति |
| 10. | आश्वालायन गृह्य सूत्र | — | आश्व. गृ. सू. |
| 11. | ईशादिदशोपनिषद् | — | ईश. उप. |
| 12. | ईषदोपनिषद् | — | ईष. उप. |
| 13. | ऋग्वेद संहिता | — | ऋग्. सं. |
| 14. | ऋग्वेद सायण भाष्य | — | ऋग्. सा. भा. |
| 15. | ऋग्वेद भाष्य | — | ऋग्. भा. |
| 16. | ऐतरेय ब्राह्मण सायणभाष्य सहित | — | ऐत. ब्रा. |
| 17. | ऐतरेय आरण्यक | — | ऐत. आ. |
| 18. | काठक संहिता | — | का. सं. |
| 19. | कात्यायन स्मृति | — | का. स्मृति |
| 20. | कौषतकि गृह्यसूत्र | — | कोष. गृ. सू. |
| 21. | गौतम धर्मसूत्र | — | गौ. ध. सू. |
| 22. | गोपथ ब्राह्मण | — | गो. ब्रा. |
| 23. | ताण्डय ब्राह्मण | — | ता.ब्रा. |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 24. | तैत्तिरीय ब्राह्मण | – | तै. ब्रा. |
| 25. | तैत्तिरीय आरण्यक | – | तै. आ. |
| 26. | धर्मशास्त्र का इतिहास | – | धर्म. का इति. |
| | **तृतीय भाग** | **–** | **तृ. भा.** |
| 27. | पतित संसर्ग प्रायश्चित्त | – | पतित सं. प्राय. |
| 28. | पाराशर स्मृति | – | पारा. |
| 29. | प्रायश्चित्तकदम्बसारसंग्रह | – | प्राय. कदम्ब. |
| 30. | प्रायश्चित्तेन्दु शेखर<br>प्रायश्चित्त सार संग्रह | – | प्राय. सा. सं. |
| 31. | प्रायश्चित्तेन्दु शेखर | – | प्राय. शेखर |
| 32. | प्रायश्चित्तौधसार | – | प्राय. औ. |
| 33. | प्रायश्चित्तादर्श | – | प्राय. ता. |
| 34. | प्रायश्चित्तकदम्ब | – | प्राय. कदम्ब |
| 35. | बौधायन धर्मसूत्र | – | बौ. ध. सू. |
| 36. | बौधायन धर्मसूत्र | – | बौ. ध. सू. |
| 37. | मनुस्मृति | – | मनु. |
| 38. | मार्कण्डेय पुराण | – | मार्क. पुरा. |
| 39. | याज्ञवल्क्य स्मृति | – | याज्ञ. |
| 40. | यजुर्वेद | – | यजु. |
| 41. | वसिष्ठ धर्मसूत्र | – | व. ध. सू. |
| 42. | श्री वसिष्ठ धर्मशास्त्रम् | – | वसि. ध. सू. |
| 43. | वाचस्पत्यम् | – | वाच. |
| 44. | विष्णू धर्मसूत्र | – | वि. ध. सू. |
| 45. | शतपथ ब्राह्मण | – | शत. ब्रा. |
| 46. | शब्दकल्पद्रुम (शब्दकोष) | – | शब्द कल्प. |
| 47. | शांखायन श्रौतसूत्र | – | शां. श्रौ. सू. |
| 48. | षड्विंश ब्राह्मण | – | ष. विं. ब्रा. |
| 49. | संस्कृत साहित्य का इतिहास | – | सं. सा. इति. |
| 50. | सामवेद भाष्य | – | साम. |




न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन
5824, शिव मंदिर के पास, न्यू चन्द्रावल,
जवाहर नगर, दिल्ली - 110007
दूरभाष : 91-11-23851294, 65195809
ई मेल : newbbc@indiatimes.com


ISBN 81-8315-053-5
9788183150538